हिन्दी एकांकी

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

हिन्दी एकांकी

संपादन

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2143-9

पहला संस्करण 1973 (शक 1895)

दूसरी आवृत्ति 1997 (शक 1919)

रु. 30.00

HINDI EKANKI (Hindi)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली - 110 016 द्वारा प्रकाशित

भूमिका

यह एकांकी संग्रह है। पर एकांकी भी नाटक की ही एक शैली है। इससे पहले मुझे नाटक की बात कहनी चाहिए।

प्रतिभा के सहज और उन्मुक्त प्रयोग से श्रेष्ठ साहित्य निर्मित होता है। कविता, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि सभी साहित्यिक सृजन श्रेष्ठ और शक्तिशाली हार्दिक आवेगों के परिणाम हैं। पर इन सब विधाओं की पृथक-पृथक टैक्नीक है, जिसे अपनी रूचि और शक्ति के अनुसार लेखक अपनाता है। एक पुरानी संस्कृत कहावत है—'**काव्येषु नाटकं रम्यम्।**' (काव्य—अर्थात सृजनात्मक साहित्य—में नाटक सब से अधिक रमणीय है।)

भारतीय साहित्य में नाटक की पुष्ट परंपरा है। कालिदास, भवभूति, दिग्नाग, भास, विशाखदत्त आदि के नाटक सदियों से विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्राचीन नाटकों में गिने जाते हैं और गिने जाते रहेंगे। उस युग में भी छोटे नाटक लिखे जाते थे, पर उन्हें कोई पृथक नाम नहीं दिया गया था, छोटे होते हुए भी व एकांकी नहीं थे।

'नट्' धातु से 'नाटक' शब्द बना है। इसी 'नट्' धातु से 'नृत्य' शब्द भी बना है। कला के इन दो पूर्णतः पृथक माध्यमों के नामों की एक ही धातु से व्युत्पत्ति, मेरी राय से, विशेष अर्थपूर्ण है। नृत्य लिखा नहीं जाता, किया जाता है। नाटक लिखा जाता है और खेला जाता है। दोनों का सीधा संबंध मंच से है, रंगमंच भी उसे आप कह सकते हैं। इस तरह नाटक साहित्य का भी अंग है और दर्शनीय कला का भी। भारत के कथाकलि, उड़ीसी, मणिपुरी आदि नृत्यों तथा विदेशों के समूह नृत्य बैले, पैंटोमाइम आदि का आधार नाटक होता है, और उनकी लिपि भी लिखी जाती है। इस तरह नृत्य और नाटक, कला के दो पृथक माध्यम होते हुए भी एक-दूसरे के बहुत निकट है।

यह बात विशेष रूप से अंकनीय है कि इसी जगह आकर नाटक अन्य सृजनशील साहित्य से पृथक हो जाता है। 'नट्' धातु से उत्पन्न 'नाटक'

शब्द इस पृथकता का स्पष्ट संकेत देता है। दृश्य और श्राव्य (आज के शब्दों में पाठ्य)—नाटक के ये दोनों रूप बहुत समय से स्वीकार किये गये हैं।

भारत में नाटकों की स्वस्थ और पुष्ट परपरा रहते हुए भी पंद्रहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक साहित्य और कला का यह श्रेष्ठ माध्यम भारत की अधिकांश भाषाओं और प्रदेशो में क्यों उपेक्षित हो गया, इसके कारण स्पष्ट हैं। तब राजनीतिक दबावों तथा सामाजिक ऊंच-नीच की भावनाओ से भारत का जनजीवन तथा चिंतन संकुचित हो गया था। विशेषतः उत्तर भारत में नाटक भाणों और नक्कालों आदि तक सीमित रह गया और संगीत तथा नृत्य वेश्यालयों में बदी कर दिये गये। सदियों के बाद जब भारत में नवजागरण की लहर चली, तो साहित्य में भी नव-चेतना आयी। श्रेष्ठ कोटि का नया साहित्य भारतीय भाषाओं में लिखा जाने लगा।

पर नाटक तो सिर्फ लिखने की वस्तु नहीं है। उसके लिए सामूहिक कार्य (टीम वर्क) अपेक्षित है। इससे भारतीय नाटक का विकास उस रफ्तार से न हो सका, जिस रफ्तार से कविता, कहानी और उपन्यास आदि का विकास हुआ। नाटक रंगमच के लिए है और स्वाधीनता से पूर्व भारत में रंगमंच का समुचित विकास नहीं हुआ था। एक तरह का दुश्चक्र बन गया था—रंगमंच नहीं है, तो नाटक लिखे जायें और नये नाटक नहीं है तो रंगमंच का विकास किस तरह हो? स्वाधीन भारत में परिस्थिति बदली है और अब राष्ट्रीय स्तर पर रंगमंच के विकास का प्रयत्न हो रहा है। इसका अच्छा परिणाम भी अभी से दिखायी देने लगा है। भारत की अन्य भाषाओं के समान हिंदी के भी श्रेष्ठ लेखकों का ध्यान नाटक की ओर गया है।

नाटक-विद्या का ही एक अग एकांकी नाटक है। अगर नाटक में त्रयी-एकता आवश्यक है (स्थान, काल और क्रिया की एकता) तो उसी तरह एकांकी मे त्रयी-एकता आवश्यक है। अब रंगमच पर चलचित्रों की सहायता से दूर की या पुरानी घटनाएं भी पृष्ठभूमि के रूप में दिखा दी जाती हैं। उस शैली का प्रयोग एकांकी के लिए भी किया जा सकता है। रंगमंच पर कितने ही नये प्रयोग किये गये है, जिनके द्वारा पुरानी टेक्नीक को बदल दिया गया है या नया रूप दे दिया गया है। वह सब एकांकी अभिनय में भी किया जा सकता है और किया जा रहा है।

बात यह है कि विदेशों में एकांकी का प्रादुर्भाव सिर्फ़ बड़े नाटकों के अभिनय के बीच का समय काटने के लिए हुआ था। लंबे नाटकों में जब अंक समाप्त होने पर पर्दा गिरता था, तो अगले अंक के लिए मंच सज्जा के परिवर्तन में कभी-कभी आधा घंटा तक लग जाता था। टिकट लेकर आये दर्शकों के लिए तो दस-दस मिनट के कई अंतराल भी उबाने वाले सिद्ध होते है। एक अंतराल तो खाने-पीने, अपने को निवृत करने या दोस्तों से मिलने के काम आ सकता है। पर छह अंकों के लंबे नाटकों में बार-बार आने वाले अंतरालों में दर्शक ऊब जाते थे। इन में से लंबे अतरालों में दर्शको का मनोरंजन करने के लिए एकांकी नाटक लिखे और खेले जाने लगे। ये कुछ मिनटो के नाटक परदे के बाहर ही किये जाते थे। अधिक सज्जा की ज़रूरत उन मे नही थी। उनका निर्माण प्रायः प्रचलित चुटकलों और हंसी मजाकों के आधार पर किया जाता था। यह तो एक संयोग की बात हुई कि अक्तूबर 1903 मे लंदन के सुप्रसिद्ध वेस्ट-एंड थियेटर में लूई एन. पार्कर का 'दि मंकीज़ पॉ' (बंदर का पंजा) नाम से जो एकांकी खेला गया, वह दर्शकों को इतना अधिक पसंद आया कि उसके बाद उन्होंने मुख्य नाटक की भी अवज्ञा कर। लूई एन. पार्कर ने वह एकाकी डब्ल्यू. डब्ल्यू. जैकब की एक कहानी के आधार पर लिखा था। इस तरह एकाएक प्रमुख लेखको तथा समझदार दर्शकों व समीक्षकों का ध्यान एकाकी की इस नयी शैली की ओर गया। उसके बाद तेजी से अच्छे-अच्छे और प्रभावशाली एकांकी लिखे जाने लगे। क्रमशः स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि कितने ही अच्छे रंगमंचों पर अब एक पूरे नाटक की बजाये दो या तीन एकांकी खेले जाते है और दर्शक उन्हें बड़े चाव से देखते हैं।

'दि मंकीज़ पॉ' की चर्चा मैंने एक विशेष उद्देश्य से की है। यह एकाकी एक कहानी पर आधारित है। मेरा विचार है कि बहुत-सी ऐसी अच्छी कहानिया है, जिन्हें अच्छे एकाकी का रूप दिया जा सकता है। दूसरी ओर मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि उपन्यास और कहानी एकदम पृथक विधाये है, यद्यपि दोनो की गणना कथा-साहित्य (फिक्शन) मे की जाती है। पर नाटक और एकांकी एक ही विद्या के दो रूप है। दोनों की टैक्नीक एक ही श्रेणी की है।

नाटक और एकांकी में कुछ अंतर तो स्पष्ट ही है। पहले नाटक छह या सात अंकों के नाटक नहीं लिखे जाते थे। संस्कृत साहित्य में भी यही परंपरा थी। अब प्राय: तीन से अधिक अकों के नाटक नहीं लिखे जाते। एकांकी में एक ही अंक रहता है। मेरी धारणा है कि एकांकी दृश्यांतर से बचना चाहिए। बिना सज्जा में परिवर्तन किये, कलातर वताने के लिए, यदि जरूरत हो, तो दो-तीन बार कुछ क्षणो के लिए मंच पर पूर्ण या अर्ध अंधकार किया जा सकता है और आवश्यक हो तो कुछ क्षणो के लिए पर्दा भी गिराया जा सकता है। एकाकी में पात्रों की संख्या भी बहुत कम होनी चाहिये। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि भीड़ का दृश्य भी एकांकी का विषय हो सकता है। पर दर्शक की पूरी सहानुभूति चरित्रों को तभी प्राप्त हो सकती है, जब उन्हें पात्रों की बातें सुनने और उन्हें देखने-समझने का अवसर प्राप्त हो। एकांकी नाटक का कथानक इकहरा होगा, जबकि पूरे नाटक का कथानक गुत्थीला हो सकता है।

हमारे देश में शौकिया रंगमच का विकास अभी प्रारंभ हुआ है। पुराने लंबे नाटकों का समय चला गया है। आज से बीस साल पहले मराठी नाटक इतने लंबे होते थे कि सारी रात खेले जाते थे। एक नाटक मे साठ से भी अधिक गानों की बात मुझे ज्ञात है। आज भारतीय रंगमंच पर एकाकी की आवश्यकता का वह कारण नहीं है, जो इंग्लैड में या बंवई मे आज से दो-एक पीढ़ी पहले था। आज तो एकांकी इसलिए लिखे और खेले जायेंगे कि उन्हीं के द्वारा, उन्हीं की टैक्नीक में, लेखक कुछ कहना चाहता है, और दर्शक उसे देखना चाहता है।

हिंदी में मुख्यत: कालेजों को नाटक सभाओं द्वारा खेले जाने के लिए इस सदी के तीसरे दशक में एकांकी लेखन का कार्य आरंभ हुआ। उसके बाद आकाशवाणी से प्रसारित किये जाने लिये एकांकी नाटकों की मांग हुई। रेडियो के लिए एकांकी लिखे गये और कितनी हीं कहानियों को ध्वनि-एकांकी के रूप में प्रस्तुत किया गया। रेडियो वाले इन्हें रेडियो-रूपक कहने लगे। यशपाल और धर्मप्रकाश आनंद आदि ने कुछ कहानियां पूरी तरह वार्तालाप के रूप में इस ढंग से लिखीं कि वे रेडियो से एकांकी के रूप में प्रसारित की जा सकती थीं और उन्हें मंच पर खेला भी जा सकता था।

फिर मूलत: वे कहानियां ही थीं।

रेडियो प्रेरणा पाकर जो एकांकी हिंदी में आये, वे 'श्राव्य' कोटि में आते हैं। उन से रंगमंच विशेष लाभान्वित नहीं हो पाता। मेरी राय से से श्रेष्ठ एकांकी की परख भी रंगमंच ही है। यों साहित्य की सब विद्याओं में जितनी विविधता रहे, अच्छा है। सभी विधाओं में नये-नये परीक्षण करना भी अच्छा है। पर परीक्षण अपने मे कोई उपलब्धि नहीं है। पिछले सौ बरसों में नाट्य-कला के जो लोक-रूप विशेषत: भारत के देहाती क्षेत्रों में, विकसित हुए थे, भविष्य में उन से भी एकांकी प्रभावित हो सकता है।

हिंदी क्षेत्रों में रंगमंच का विकास हो रहा है। यह रंगमंच उन्नीसवीं सदी के या पारसी शैली के रंगमंच से जरा भी प्रभावित नहीं है। इसकी मुख्य प्रेरणा विश्व का श्रेष्ठ नाटक साहित्य है, जो सही अर्थों में सार्वभौम है। मेरा अभिप्राय नाटक की आत्मा से है, उसकी प्रेरणा से है। जिस तरह विश्व संस्कृति एक बनती जा रही है, प्रभाव विश्व की सभी भाषाओं पर पड़ रहा है। सृजन का स्रोत मूलत: मानवीय भावनाएं प्रारंभ ही से है। पर क्योंकि आज के वैज्ञानिक युग में इस संसार के 137 देश रहन-सहन, व्यवहार और चिंतन की दृष्टि से आपस में निकटतर आते जा रहे हैं, उसके प्रभाव से विश्व की लगभग साढ़े-तीन सौ भाषाओं के साहित्य मे भी समान चिंतन और समान शैली स्पष्टत: दिखायी देने लगे है।

यदि पश्चिम में एकांकी का जन्म-काल सन 1903 को माना जाये, तो उससे बहुत पूर्व हिंदी में एकांकी लिखने का प्रयास किया गया था। भारतेन्दु का 'अंधेर नगरी' एक हास्य-एकांकी कहा जा सकता है। राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र और जयशंकर प्रसाद ने भी एकांकी लिखे थे। यद्यपि भारतेन्दु और प्रसाद के अतिरिक्त उक्त अन्य लेखकों के एकाकी एक तरह से वार्तालाप मात्र ही हैं।

हिंदी में एकांकी 'कर्टन रेजर' के उद्देश्य से बिलकुल नहीं लिखे गये। उन्हें हिंदी में नाटक की एक नयी, सहज और व्यावहारिक शैली के रूप में स्वीकार किया गया है। उनका रूप भारतीय है। पर उन में से बहुतों की आत्मा सार्वभौम है।

इस संग्रह के अधिकांश लेखक हिंदी जगत के जाने-माने व्यक्ति हैं। इन में

से सिर्फ उदयशंकर भट्ट का जन्म पिछली सदी (1897) में हुआ था। शेष नौ लेखक बीसवीं सदी में पैदा हुए। भट्टजी अत्यंत निष्ठावान कलाकार थे। अपनी आयु के अंत तक उनमें ग्राहकता, नयी बातें और शैलियां जानने की इच्छा विद्यमान रही। उनकी रचनाओं के क्रमिक अध्ययन से यह पता चलता है कि साधनों के अभाव में भी, समृद्ध विदेशी भाषाओं से अपरिचित रहते हुए भी, एक लेखक अपनी निष्ठा और मेहनत से कितनी उन्नति कर सकता है। कविता, नाटक, गीति नाटक, एकांकी, उपन्यास—इन सभी विधाओं में उनका क्रमिक विकास आदर के साथ देखा जायेगा।

हिंदी एकांकी के विकास मे रामकुमार वर्मा का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपना पहला एकांकी 1930 में लिखा था। वह भी विशेषतः इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अभिनय के उद्देश्य से। रामकुमार वर्मा के शब्दों में "जीवन की किसी जीवंत परिस्थिति को घनीभूत कर पात्र और घटना के माध्यम से कुतूहल के साथ उपस्थित करना ही एकांकी का लक्ष्य कहा जा सकता है।" वर्माजी कवि है और उनके भीतर का सहज कवि उनके एकांकियों में भी स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। गीतकार कवि की शक्ति और सीमायें उनके एकांकियो में भी हैं।

हिंदी में सर्वप्रथम सेठजी ने ही एकपात्री नाटकों का सूत्रपात किया है। हिंदी साहित्य को यह उन्हीं की देन है। जिस प्रकार के एक-पात्री नाटक आपने लिखे है वैसे अन्य हिंदी के नाटककार ने पहले नहीं लिखे थे। आपके बाद ही इस दिशा में अन्य नाटककारों ने भी इस ओर कुछ प्रगति की है। स्ट्रेन्डबर्ग और ओनील की शैली पर इन्होंने 'प्रलय और सृष्टि', 'शाप और वर', सच्चा जीवन' आदि सफल एक-पात्री नाटक (मोनो ड्रामा) लिखे है। इनके द्वारा पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का सुंदर विश्लेषण हुआ है। इसके अलावा सेठजी ने अपनी कृतियों में 'उपक्रम' और 'उपसंहार' की नयी नाटक शैली का भी प्रयोग किया है।

दूसरी ओर अश्क धरती के लेखक है। लेखक बनने के लिये उन्होंने असाधारण मेहनत की है उपन्यास, कहानी, नाटक, एकाकी, संस्मरण --सभी तरह की चीजें उन्होंने लिखी है। अपनी एक-एक रचना को कई-कई बार और कई रूपों में उन्होंने लिखा है। उनकी रचनाओं में गहरायी और चिंतन

भले ही कम हों, स्पष्टता अवश्य है। 'सौलिये' रंगमंच पर सफलता से खेला जा सकता है। उर्दू प्रथा के गुण और कमजोरियां उनकी रचनाओं में है।

भुवनेश्वर मुख्यत: एकांकीकार थे। पश्चिमी नाट्य-कला और शैली का समुचित अध्ययन उन्होंने किया था। भुवनेश्वर का देहावसान सिर्फ 45 वर्ष की आयु में हो गया। जीवन के अंतिम दिन उन्होंने विक्षिप्त दशा में बिताये। उन्होंने अधिक नहीं लिखा, पर एकांकी के क्षेत्र में मार्गदर्शक-का-सा काम उन्होंने किया। इस तरह हिंदी एकांकी में अपना विशेष स्थान उन्होंने बना लिया था।

विष्णु प्रभाकर एक कहानीकार के रूप में साहित्य जगत मे आये। उन्होंने बाद में उपन्यास भी लिखे। आकाशवाणी की सेवा में रहते हुए उन्होंने रेडियो रूपक लिखने शुरू किये, तो इस माध्यम की अच्छी पकड़ उन्हें उपलब्ध हुई। उन्होंने नाटक और एकांकी भी लिखे। वह साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं और यह प्रयत्न करते है कि उनकी रचनाओं से पाठक श्रेय मार्ग की प्रेरणा प्राप्त करें।

जगदीशचंद्र माथुर ने नाटक और नाट्य-कला के अध्ययन में विशेष दिलचस्पी ली है। इस संबंध मे उनका अध्ययन और चिंतन बहुमूल्य है। नाटक लिखने की शक्ति भी उन में है। पर समय की कमी से वह उतना सृजन नहीं कर पाये, जितना करने की सामर्थ्य उन में है। जगदीशचंद्र माथुर के नाटक और एकांकी रंगमंच के लिये है। व्यावहारिक व्यक्ति होते हुए भी वह भावना प्रधान हैं। 'भोर का तारा' निस्संदेह अच्छी रचना है। पर इसे पढ़कर या रंगमंच पर देख कर पाठक या दर्शक पूछ सकता है कि शेखर ने अपना महाकाव्य आग में क्यों जला दिया? क्या अपनी बरसों की कृति को जलाये बिना वह मातृभूमि की रक्षा के लिये युद्ध में नहीं जा सकता था? जिस तरह आज आन्द्रे मार्लो बंगला देश की सहायता के लिए युद्धोधत हुए थे।

मेरा विचार है कि हिंदी में लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्य संबंधी ज्ञान, चिंतन और मनन असाधारण रूप से समृद्ध थे। नाटक उनका सबसे अधिक प्रिय विषय था। रंगमंच संबंधी जितने अन्वेषण और परीक्षण उन्होंने किये थे, वे उनकी भावी रचनाओं को और भी अधिक उज्ज्वलता देंगे। हिंदी में

शायद ही अन्य कोई ऐसा लेखक हो, जिसे नाटक और रंगमंच में उनके समान गहरी और सहज दिलचस्पी है।

धर्मवीर भारती में असाधारण रचना-क्षमता है। वह अच्छे कवि, अच्छे लेखक और अच्छे नाटककार हैं। कुछ नया देने की सामर्थ्य उनमें है। 'सृष्टि का आखिरी आदमी' उनका एक गीति-एकांकी है।

और सबसे अंत में मैंने अपना एक ध्वनि-एकांकी इस संग्रह में दिया है।

अप्रैल 1973
नयी दिल्ली

—चंद्रगुप्त विद्यालंकार

अनुक्रमणिका

दस हज़ार

—उदयशंकर भट्ट

चरित्र

बिसाखाराम

सुंदरलाल

राजो

राजो की मां

मुनीम

(समय : शाम के पांच बजे)

(सीमा प्रांत के एक नगर में एक मकान। मकान में एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दो दरवाज़े हैं; एक सीढ़ी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग में जाता है। गली की तरफ दो खिड़कियां हैं। भीतर कमरे में एक बड़ी खाट है, जिस पर मैला-सा बिस्तर बिछा हुआ है। पूर्व की तरफ कोने में एक चौकी है। उसके सामने आले में ठाकुरजी का एक सिंहासन है। उसमें कुछ पीतल की मूर्तियां हैं। उन पर गेंदे के फूलों की माला चढ़ी है। आले की कील में एक रुद्राक्ष की माला है। हाथ की लिखी हुई छोटी-छोटी दो किताबें है। कमरे में कुछ तस्वीरें है—एक रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की, जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है, हनुमान माला तोड़ रहे है। दूसरी तस्वीर काली की है। कमरे में एक मोढ़ा रखा है और एक टूटी हुई कुर्सी, जिसका बेत टूटा हुआ है। एक छोटी-सी मेज़ एक कोने में रखी है, उस पर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूंटिया गड़ी हुई है, उनमें एक पर एक पगड़ी और दूसरी पर एक दुपट्टा और एक मैला-सा कोट है। खाट पर लाला बिसाखाराम बेचैनी से लेटा हुआ हैं। उसकी आंखों में बेचैनी है। चेहरा चिपका हुआ, रंग गोरा, बाल बिखरे हुए। मालूम होता है, बड़ी चिंता में है। हाथ में एक चिट्ठी है, जिसे बार-बार उठाकर पढ़ता है, और फिर सिरहाने रख देता है। फिर उठा लेता है, पढ़ता है, और फिर रख देता है। उठकर बैठ जाता है और छत की कड़ियों की ओर ताकता है और धम्म से फिर खाट पर लेट जाता है।)

बिसाखाराम : हाय, क्या जाना था, यह दिन भी देखना पड़ेगा ! हे रामजी ! उबारो महाराज ! बड़ी बिथा आ पड़ी। कोई···कोई उपाय सूझे नहीं है। **(आंखें मींचकर ठाकुरजी को हाथ जोड़ने लगता है, फिर आंखें खोलकर पत्र हाथ में लेकर पढ़ने लगता है)** क्या करूं ? राजो, राजो री !

(भीतर के दरवाजे से चौदह साल की एक लड़की दौड़ती हुई आती है)

राजो : हां चाच्चाजी ! क्या कहो हो ?

बिसाखाराम : अरी, क्या अभी मुनीमजी नहीं आये ? मरा जाऊं हूं । बड़ी मुसीबत है ।

राजो : भाई कब आवेंगे भला ? (**एकदम पास आकर**) बुला लो न भाई को ! कुछ रुपयों की तो बात है । हाय, (**आंखों में आंसू भरकर**) हे भगवान, बड़े नामुराद है ये लोग ! चाच्चाजी, भेज दो रुपया, क्या देखो हो ?

बिसाखाराम : (**बैठकर**) क्या देखूं हूं बेटी ! अपनी किस्मत को रोऊं हूं । रुपया भी कहां धरा है ? अभी अनाज भी तो खरीदना है । कल मुहम्मद बक्स आने-रुपये का सूद देकर दो हज़ार के मांगने आया था, उसको भी तो देना ही है । दस हज़ार के सरकारी बौंड खरीदने हैं, ऐसा मौका कब मिलेगा ? इतना सूद क्या छोड़ा जा सके है बेटी ? ओह ! दस हजार देने पड़ेंगे !

(**एकदम खाट पर धड़ाम से लेट जाता है**)

राजो : (**दौड़कर**) चाच्चाजी, क्या हुआ तुम्हें ? भाभी, ओ भाभी ! देख तो चाच्चा को क्या हुआ ?

(**राजो की मां 'अरी आई' कहती हुई आती है**)

राजो की मां : कह तो दिया, परेसान होने की क्या जरूरत है ? दे दो दस हज़ार । रुपये तो फिर भी मिलते रहेंगे । लड़का तो फिर···हा भगवान, क्या कह रही हूं ? हे रामजी ! (**हाथ जोड़कर आले में रखे सिंहासन की तरफ देखने लगती है**) यों ही करे है । दया करो भगवान !

बिसाखाराम : मुनीमजी नहीं आये ! (**आंख बंद कर लेता है**)

राजो : आते ही होंगे । तुम्हारा कैसा जी है चाच्चा ?

राजो की मां . कहूं तो हूं, फिकर क्यों करो हो ! हे ईश्वर, मेरे लड़के को लौटा दो । मेरा सब कुछ ले लो । मेरे प्यारे बच्चे को मुझे दे दो भगवान ! (**रोने लगती है**)

राजो : (**मां के गले से लिपटकर**) रोवो क्यों है भाभी ? चाच्चा से कह के भाई को बुला ले न !

राजो की मां : (**आंसू पोंछती हुई**) कैसे बुलाऊं बेटी, तेरे चाच्चा को तो रुपये की पड़ी है । ईश्वर ने एक ही लड़का दिया···हा भगवान !

बिसाखाराम : (**आंखें खोलकर**) राजो, मुनीमजी नहीं आये, बेटी ?

राजो : अभी तो नहीं आये ।

बिसाखाराम : न मालुम मुनीम ने खांड का सौदा किया या नहीं ? इस

बखत तो खांड खरीदनी जरूरी है। फिर महंगी हो जायेगी। कैसी मुसीबत है। न जाने इबराहीम से रुपये का तकाज़ा किया या नही ? आज चार साल होने को आये, अभी तक सूद भी नहीं आया। मुकदमा लडना पडेगा। तब कहीं जाकर वह बेईमान रुपया देगा। (**पत्र हाथ में लेकर**) पर इसको क्या करूं ?

(**'राजो, राजो', नाम लेकर मुनीम आवाज़ लगाता हुआ ज़ीने में खट-खट चढ़ता आता है**)

बिसाखाराम : लो, मुनीमजी, आ गये : (**एकदम उठकर बैठ जाता है**) आओ मुनीमजी, आज बडी देर लगायी।

(**राजो और उसकी मां दूसरे दरवाजे से घर में चली जाती हैं**)

मुनीम . जै रामजी की सेठजी ! देर हो गयी। दिन भर का हिसाब-किताब करना था। तेरह आने के हिसाब से खाड के सौ बोरे खरीद लिये है। मुहम्मदबक्स का आदमी आया था। मैंने कह दिया, सेठजी के आने पर फैसला होगा। सुना है, इबराहीम फरार हो गया है। रोकड मिलाते इतनी देर हो गयी है। हां, पठानो की कोई चिट्ठी आयी क्या ?

बिसाखाराम : खांड तो बारह आने चार पाई थी न, फिर तेरह आने क्यों खरीदी ? इबराहीम भाग गया ? यह तो बडी बुरी खबर है मुनीमजी, चार हज़ार नकद है। कैसे छोड़े जा सके है ! चौधरी से नहीं कहलवाया ? वह तो ज़ामिन है न ? सरकारी बौड की कोई चिट्ठी आयी ? रुपये तैयार रखना। बौड तो खरीदने ही होंगे।

मुनीम : पठानों की तरफ से कोई चिट्ठी आयी, सेठजी ?

बिसाखाराम : रोकड़ में कितना बाकी है ? चौधरी के पास अभी आदमी भेजो और तकाज़ा करो। (**खाट पर लेट कर**) सब तरफ मुसीबत है। रुपया लेकर देने का कोई नाम नही लेता। (**आंखें बद करके लेट जाता है**) हे भगवान ! हे रामजी ! कैसा बुरा समै है ! (**उठकर**) मैं जाऊ; अब तबियत देखू या रुपया ? (**बैठ जाता है**)

मुनीम · नहीं सेठजी, बीमार हो जाना ठीक नही है। पठानो ने कुछ नही लिखा सेठजी ? सुदरलाल का ख्याल करना ही चाहिये। न मालूम बिचारे को कैसी तकलीफ दे रहे होगे ! (**सेठ की ओर देखता है**)

बिसाखाराम : लो यह पढ़ो। कैसा दुष्ट है लड़का ! जरा भी लड़ाई नहीं

करी। डोली में नयी बहू की तरह उनके साथ चला गया मेरी छाती पै मूंग दलने ! कहां से लाऊं दस हज़ार ? दस हज़ार ? (**चिट्ठी मुनीम के हाथ देकर**) लो पढ़ो, सब बरबाद कर दिया। भला बाहर गया ही क्यों ? (**लेट जाता है**)

मुनीम : सेठजी, सुंदरलाल का कोई अपराध नहीं है। उगराही को उसे आपने ही तो भेजा था। (**पत्र हाथ में लेकर पढ़ता है**)

बिसाखाराम : बरबाद हो गया मैं तो मुनीमजी ! हां, ज़रा ज़ोर से पढ़ो।

मुनीम : (**चौंककर**) हैं यह तो सुंदरलाल की ही लिखावट है ! लिखता है—'पिताजी अगर मेरी ज़िंदगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ काबुली फाटक के बाहर आज शाम के ठीक आठ बजे दस हज़ार रुपये पहुंचा दो ! पुलिस को या और कोई सहायक लेकर आये तो खान कहता है, लड़के को मरा ही समझो। इन लोगों ने मुझे बड़ी तकलीफ दी है। शायद नरक की कोई भी यातना इससे अधिक नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है, आप मेरी रक्षा करेंगे।

आपका पुत्र,
सुंदरलाल।'

नीचे खान ने खुद पश्तो में लिखा है—

'अम तुमको इत्तला देता है, तुम आज़ बुधवार शाम के आठ बजे दस हज़ार रुपया काबुली फाटक के बाहर पहुंचा दो, नहीं तो तुम्हारा लड़का को मार डालेगा।

अमीरअली खां।

(**मुनीम पत्र रखकर बिसाखाराम की ओर देखने लगता है**)

मुनीम : सेठजी, दस हज़ार की क्या बात है ! आज ही तो बुधवार है। अगर कहें तो मुहम्मदबक्स को न देकर दस हज़ार का इंतज़ाम कर लूं। रुपया तो है ही।

बिसाखाराम : (**उठकर**) आने-रुपये का सूद है मुनीमजी ! (**झपटकर**) अपने घर से निकालो तो मालूम हो। गाढ़े पसीने की कमाई है। दस हजार यों ही जायेंगे ? हे भगवान ! कंगाल कर दिया।

(**राजो और उसकी मां एकदम कमरे में आ जाती हैं**)

राजो की मां : यों ही जायेंगे; सुना तुमने मुनीमजी ? इनकी अकल पर तो

पत्थर पड़ गये हैं। कुछ नहीं सोचते। बस, रुपया, रुपया ! मेरा लड़का ला-दो मुनीमजी ! हाय मेरा सुंदर ! हाय मेरा बच्चा रे !

(**घूंघट किये जमीन पर बैठ जाती है। राजो दौड़कर पिता से लिपट जाती है और निहोरे के ढंग से देखने लगती है**)

बिसाखाराम : भला मुनीमजी ! मैं क्या कहूं कि सुंदर न आवे ? मैं तो खुद चाहूं कि लड़का किसी तरह आ जावे ! मैं क्या सुंदर का बाप नहीं हूं ? तुम्हीं बताओ। लड़के के बिना तो घर सूना-सूना-सा लगे है। पर, दस हजार !

मुनीम : (**सिर हिला कर**) हां, सो तो है ही। यह तो करना ही पड़ेगा।

राजो की मां : आज चार दिन से मैं इनका रूप देख रही हूं। कहूं हूं रुपये के पीछे लड़के को हाथ से न खोओ, रुपया तो हाथ का मैल है। दस हजार क्या बड़ी बात है। पर इन्हें तो न जाने क्या हो गया है ! खांड और सूद से इनका विचार छूटे तब न ! मुनीमजी, मैं तुम्हारे पैर पड़ूं हूं, मेरे सुंदर को ला दो।

मुनीम : माताजी घबराओ मत, सुंदर को घर पर ही समझो।

राजो की मां : घर पर कैसे समझूं मुनीमजी, घबराऊं क्यों नहीं ? इनकी (**पति की ओर इशारा करके**) हालत देखकर तो मेरे जी में ऐसा हो रहा है कि मैं लड़का खो बैठूंगी। कहते हैं, जो होना था, सो हो गया। और लड़का···हाय ! न मालूम इनसे यह कैसे ऐसा कहा गया है। हे भगवान !

राजो : मुनीमजी, मेरे भाई को जल्दी बुला दो। देखो, कई रातों से मां सोई नहीं है। सारी-सारी रात रोती रही है। आंखें सूज गयी है। मेरे भाई को जल्दी से ले आओ मुनीमजी ! (**रोने लगती है**)

राजो की मां : मैं कहूं हूं, मेरा गहना लेकर बेच दो और मेरे लड़के को बचा लो।

मुनीम : घबराने की क्या बात है माताजी, सेठजी को भी तो आपसे कम फिकर नहीं है।

बिसाखाराम : हां, सो तो है ही। मैं भी कब सोया हूं रात में। दिन-रात चिंता लगी रहवी है। सुंदर मेरी आंखों के सामने घूमता रहे है। उसके बचपन की बातें याद आया करे है। इधर इबराहीम रुपया देने में ही नहीं आवे। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीमजी; कितना बने

है उसके ऊपर ? खांड कहां रखवाई है, गोदाम में न ? देखो, तालियां अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम : सेठजी, सुंदरलाल के लिये क्या हुक्म है ? रुपये का इंतजाम करूं ? बहुत थोड़ा वक्त है। (**सेठ की ओर देखता है**) पंद्रह हजार तिजोरी में अभी रखकर आया हूं।

बिसाखाराम : दस हजार ! न कम, न थोड़ा ! अरे और कोई इंतजाम नहीं हो सके है मुनीमजी ! पुलिस को खबर क्यों न कर दो ?

मुनीम : पुलिस भी क्या कर लेगी सेठजी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नहीं है, पर वह कुछ करे तब तो ! सेठजी, मैं तो आपको सलाह न दूंगा कि आप और इंतजाम करें। नहीं तो आप लडके से हाथ धो बैठोगे। न करे ईश्वर !

राजो की मां : तुम किस संसै में पड़े हो मुनीमजी ? मेरा गहना ले जाओ। (**उतारकर सामने रख देती है**) लो, मेरे लड़के को ला दो चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

बिसाखाराम : क्यों सब मेरे प्रान खाये जाओ हो ? गहना भी कौन घर का नहीं है ?

मुनीम : सेठजी ! देर हो रही है, हुक्म दो।

राजो की मां : कह तो रही हूं, यह ले जाओ। पठानों को दे देना।

बिसाखाराम : क्या करूं मैं फिर ? मुनीमजी ! अलीबक्स अपने गहने छुडा ले गया क्या ?

मुनीम : देर हो रही है सेठजी ! काबुली फाटक तक पहुंचना है, क्या हुक्म है ?

(**बिसाखाराम दस हजार का ख्याल आते ही फिर बेसुध-सा होकर लेट जाता है**)

मुनीम : क्या आज्ञा है सेठजी ? इसलिये जल्दी कर रहा हूं कि दुकान से कुछ आदमी साथ ले लूंगा।

राजो की मां : अरे बोल तो दो ! न बोलो। मुनीमजी ! (**झक-झुककर**) ले जाओ रुपया। मैं क्या घर की, दुकान की, कोई भी नहीं हूं ? जाओ, देर न करो। हे भगवान !

मुनीम : जो हुक्म ! (**चला जाता है**)

राजो : (**मां से**) अब भाई आ जायेगा मां !

राजो की मां : हां बेटी, लेने गये है मुनीमजी। भगवान का नाम ले, सुंदर राज़ी-खुशी घर लौटे।

बिसाखाराम : (**एकदम चेतन-से होकर**) मुनीमजी गये ?

राजो : हां, गये चाच्चाजी !

बिसाखाराम : घर बरबाद कर डाला। क्या से क्या हो गया। लड़का कपूत निकला। हाय, कैसे मैंने पैसा कमाया ! दस हज़ार ! हाय राम रे ! (**फिर लेट जाता है**) अरी राजो की मां, मैं मरा !

राजो की मां : कहूं कौन बड़ी रकम है ! घर बच्चा आ जाये तो और हो जायेंगे रुपये। परमात्मा ने सब कुछ तो ··हे भगवान, दया करो ! तुम इतनी चिंता क्यों करो हो ?

बिसाखाराम : चिंता न करूं ? (**बैठकर**) खून की कमाई है, खून की ! आज चालीस साल से लगातार दिन-रात एक करके रुपया कमाया है। (**लेट जाता है**)

राजो की मां : कमाया तो फायदा ! न तीरथ, न जप-तप, न धर्म। कभी हरिद्वार भी न ले गये ! मैं तो तुम्हारा पैसा जानती ही नहीं। चार कोठियां है और हम इसी गली में पड़े सड़ रहे है। आज तीन-चार लाख रुपये के मालिक हो। एक पैसा भी कभी दान नहीं किया। ऐसा रुपया किस काम का ?

बिसाखाराम : (**उठकर**) आग लगा दे घर मे ! मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नही दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (**लेट जाता है**) दस हज़्ज़ार रुपया इस नालायक के···मुनीम कहा गया है राजो ?

राजो की मां : और रुपया होता ही किस लिये है ? इसमें सुदर का क्या अपराध है भला ?

बिसाखाराम : मुनीम कहा गया ? उगराही करने गया होगा। हे रामजी, दया करो !

(**सुंदरलाल और मुनीम का प्रवेश। राजो की मां सुंदरलाल को देखकर फूट-फूटकर रोने लगती है। राजो भाई लिपट जाती है। लड़का दौड़कर पहले बिसाखाराम और फिर अपनी मां के पैर छूता है**)

बिसाखाराम : (**पुत्र को देखकर**) आ गया रे ! बड़ी खुशी हुई।

राजो की मां आज बेटे को देखकर छाती ठंडी हुई। (**उससे लिपट जाती है**) मेरी आखों के तारे !

राजो : मेरे भैया ! (**उसके गले से लिपट जाती है**)

राजो की मां : कैसा दुबला हो गया इतने ही दिन मे !

सुंदरलाल : हां, मां ! भगवान इन राक्षसो के पजे में न डाले। देख मार-मारकर तमाम देह सुजा दी है। (**देह दिखाकर**) हड्डी-हड्डी दुख रही है।

बिसाखाराम : बड़ा अच्छा हुआ बेटा ! कैसे आये ? क्या वैसे ही उन्होंने छोड़ दिया है ? मुनीमजी ! आज उगराही में क्या मिला ?

सुंदरलाल : (**मुनीमजी की ओर देखकर**) दस हजार रुपये दिये थे न ?

मुनीम (**घबराकर**) हा, सेठानीजी ने हुक्म दिया था।

बिसाखाराम : क्या पूरे दस हजार !

(**एकदम धड़ाम तकिये पर गिर पड़ता है। सुंदरलाल, मुनीम, राजो, बिसाखाराम की ओर देखते हैं**)

राजो की मां : (**सुंदरलाल को थपथपाती हुई**) इन्हें नींद आ गयी है बेटा, आओ चलें।

(**पर्दा गिरता है**)

कौमुदी महोत्सव

—रामकुमार वर्मा

चरित्र

सम्राट् चंद्रगुप्त : कुसुमपुर के मौर्य सम्राट्
चाणक्य : सम्राट् चंद्रगुप्त के महामन्त्री
वसुगुप्त कुसुमपुर के समाहर्त्ता
यशोवर्मन कुसुमपुर के अंतपाल
पुष्पदंत कुसुमपुर के कार्यान्तिक
अलका : राजनर्तकी
सैनिक और दौवारिक

(समय : ई. पू. 322)

(बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच मे तुरही का नाद हो उठता है। शंख और घंटों की आवाज भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे यह ध्वनी क्षीण होती है।)

(राज-कक्ष मे समाहर्त्ता वसुगुप्त और अंतपाल यशोवर्मन बाते कर रहे है।)

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है ! ढाल के मध्य भाग की भांति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायेगी। अब तो अंतपाल यशोवर्मन का सदेह दूर हो गया होगा।

यशोवर्मन : वसुगुप्त ! संदेह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। सदेह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है, और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है ? भय का, आशंका का, अमगल का !

वसुगुप्त : : किंतु भय, आशंका और अमंगल तो नही है। नंद वंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गये।

यशोवर्मन : अलग-अलग भले ही हो गये हों पर हैं तो !

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाहलीक राजाओं के साथ महाराज चद्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी ?

यशोवर्मन : देखी, किंतु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते है जिनमे व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नंद के प्रति राजभक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिये जायेंगे।

यशोवर्मन : किंतु आपको क्या ज्ञात नही है कि महाराज नंद के मंत्री राक्षस

की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है ? नंद नहीं है किंतु नंद के मंत्री तो है जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं !

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी पहचानने वाली आंखें है। (**जनरव फिर बढ़ता है**) देखा, यह जनरव बढ़ रहा है ! वातायन बंद कर दो।

यशोवर्मन : हां, बात ही नहीं सुन पड़ती। (**वातायन बंद करते हैं**)

वसुगुप्त : तो सम्राट् चंद्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहां की शासन व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बनकर बिगड़ते है, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है ?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट् चंद्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहुबल का केंद्र ही है?

यशोवर्मन : हां, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट् चंद्रगुप्त के बाहुबल ने ही नंद वंश को समाप्त किया है। नंद वंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चंद्रगुप्त की यश-चंद्रिका से अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

(**नेपथ्य में 'सम्राट् चंद्रगुप्त की जय' का घोष**)

वसुगुप्त : (**उत्सुकता से**) सम्राट् आ गये ? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिए था ? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन।

यशोवर्मन : मैं देखता हू। (**वातायन खोलते हैं। जनरव फिर तीव्रता से सुनायी पड़ता है**) हां, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है ! महाराज ने अंतरंग प्रकोष्ठ सिंहद्वार से प्रवेश कर लिया है; उनका वेश इस समय दर्शनीय है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे है। कहते समय उनकी वाणी मे वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमटकर अंतिम स्वर मे गूंजती है। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षायें वक्र होकर दुहरी हो गयी हैं। घुंघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भांति झुक जाती है। भुजदडों मे शक्ति का संचय है, ज्ञात होता, है जैसे वे राज्य के मेरुदंड हैं। सैनिकों जैसा वेश हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खंग ! बड़ा उत्साहपूर्ण वेश-विन्यास है उनका !

वसुगुप्त : (**प्रसन्नता से**) सचमुच, सम्राट् वीर रस के प्रतीक हैं ! वह दौवारिक आया ।

(**दौवारिक का प्रवेश**)

दौवारिक : महाराज की जय ! सम्राट् का आगमन हो रहा है ।

वसुगुप्त : हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं । तुम जाओ, बाहरी द्वार पर सम्राट् पर पुष्प-वर्षा हो ।

दौवारिक : जो आज्ञा । (**प्रस्थान**)

यशोवर्मन : सम्राट् ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते है । उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्यक्रम की नींव डाली है । यह बहुत कम लोग जानते हैं ।

वसुगुप्त : राजनीति के साथ नारी ! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है ?

(**दबी हुई सम्मिलित हंसी । सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चंद्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदंत के साथ प्रवेश**)

वसुगुप्त और **यशोवर्मन** : (**सम्मिलित स्वर में**) सम्राट् की जय !

चंद्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा । मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए है और वह संन्यासिनी हो गयी है । नगर की शोभा मलिन है जैसे तलवार की झनकार वायु में विलीन हो गयी है । नागरिकों का यह हुल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है । नागरिकों से कहला दो कि वे अब अपने घर जायें ।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् । (**प्रस्थान**)

(**धीरे-धीरे जनरव शांत हो जाता है**)

चंद्रगुप्त : और अंतपाल यशोवर्मन ! जो तेज मैंने ग्रीक सैनिकों के सेवकों में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है । यहां के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है । एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भांति कुसुमपुर को घेरे हुए है । उसे बंधनमुक्त करो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट् । आचार्य चाणक्य की इस नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुंदर और आपकी कीर्ति की भांति निर्मल हो जायेगा ।

(**वसुगुप्त का प्रवेश**)

चंद्रगुप्त सभव है। आर्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति मे ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है जिसमें अराजकता का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो, क्या है ? समस्त नंद वंश चिर-निद्रा मे शयन कर रहा है ।

वसुगुप्त · और उस नद वश की आंखों मे विलासिता का मद अंतिम क्षणों तक रहा है।

चंद्रगुप्त : मुझे इस बात का दुख है किंतु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है । जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रख कर चलता है, वह उस कृपाण को निमत्रण देता है कि वह उसके शरीर दो के टुकड़े कर दे । मैं आचार्य चाणक्य के चक्रव्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तंभ बनाना चाहता हूं ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहुबल मे और आचार्य चाणक्य की नीति मे यह क्षमता है ।

चंद्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उनके प्रति नागरिकों को असतोष तो नही होना चाहिए । तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएं दूर करना चाहता हूं । शासन का मापदंड प्रजा का सतोष और सुख होना चाहिए ।

यशोवर्मन : सम्राट् का कथन सत्य है ।

चंद्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता हूं, कौमुदी महोत्सव । शरद ऋतु की आज पूर्णिमा है । इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न मे इस निर्णय की घोषणा कर दी है । प्रकृति की इस चंद्रमयी निर्मलता मे जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनायें धुल जायें । कौमुदी महोत्सव, इस भांति, कुसुमपुर का महान् राजनीतिक पर्व है ।

वसुगुप्त : सम्राट् ! कुसुमपुर के सिंहद्वार ने अभी तक शृगालों का स्वागत किया है । आपके प्रवेश ने सिंहद्वार का नाम सार्थक किया ।

चंद्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त ? इसी-

लिए मैने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी कर एकत्र करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कहकर अच्छी तरह 'कर' एकत्र कर सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की कृपा है।

चंद्रगुप्त . फिर प्रजा का संतोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है। (**कार्यान्तिक पुष्पदंत को संबोधित करते हुए**) कार्यान्तिक पुष्पदत ! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों मे उत्सुकता है ?

पुष्पदंत : सम्राट् ! जिस समय मे कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुचा है, उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनंद की क्रूरता के उपसंहार मे आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है। सम्राट् ने आर्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-विजय का सूचक है जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

यशोवर्मन : प्रजा-वर्ग मे से कुछ व्यक्ति नंद वश के समर्थक हो सकते है और नद वंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के सबध मे सम्राट् की घोषणा असतोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव मे कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते है। नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा मे परिवर्तन हो सकता है। किंतु हमे यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है। नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी ? अपरिचित व्यक्ति की ओर से आयी हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट् ! आप जैसे उदारमना सम्राट् की ओर से की गयी कल्याण-कामना नागरिकों के हृदय में सम्राट् के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मंदाकिनी प्रवाहित किये विना नहीं रहेगी।

चंद्रगुप्त : ऐसा ही हो ! (**कार्यान्तिक पुष्पदत से**) क्यों कार्यान्तिक पुष्पदंत ! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबंध किया गया है ?

पुष्पदंत सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के सगम पर

एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार में सजाकर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गयी है जिससे शरद-चंद्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम भी दीपों का आलोक-मंडल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जाये।

चंद्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है ! और ?

पुष्पदंत : नगर के काष्ठ-प्राचीर के चौसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप-किरणों की चौसठ तरंगें प्रवाहित हो रही है !

चंद्रगुप्त : यह सौंदर्य रचना सराहनीय है !

पुष्पदंत : सम्राट् ! प्राचीर पर जो पांच सौ सत्तर अलिंद हैं उनमें नगर की उतनी ही बालायें मणिजटित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिंदुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे है।

चंद्रगुप्त : यह तो बहुत सुंदर होगा ?

पुष्पदंत : और सम्राट् ! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप-दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर दीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चंद्रगुप्त : निस्संदेह ! और कार्यान्तिक पुष्पदंत ! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किये जायें, वे राज-कोष से व्यय न होकर मेरे 'चंद्र-कोष' से व्यय किये जायें। यद्यपि इस उत्सव से प्रजा-वर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूंगा।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से सहस्र-सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राणदंड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजाजनों के हृदयों मे अणु मात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननंद के समय में थी।

चंद्रगुप्त : वसुगुप्त ! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षतविक्षत मत होने दो।

वसुगुप्त . मुझसे भूल हुई, सम्राट् ! मैं क्षमाप्रार्थी हूं।

चंद्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदंत ! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

पुष्पदंत · सम्राट् ! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-तोरणों की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होगा जैसे रात्रि में भी सम्राट् की राजधानी में सप्त रंगों के इंद्रधनुष विविध नृत्य-मुद्राओं मे सजे हैं।

वसुगुप्त : और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नंद वंश की राजनर्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ?

यशोवर्मन . यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्तकी की शोभा देखने का नहीं।

वसुगुप्त : नगरी की शोभा देखने के अनन्तर सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे ! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

चंद्रगुप्त . कार्यान्तिक पुष्पदंत ! जाओ और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो ! मेरे 'चंद्र-कोष' से उसे पांच सहस्र पण के पुरस्कार की सूचना भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ का संकेत मुझे तूर्य-नाद से मिलना चाहिए।

पुष्पदंत : जो आज्ञा, सम्राट् ! (**प्रस्थान**)

चंद्रगुप्त नायक वास्तव मे पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर में ऐसी सौंदर्य-रचना संभवतः पहली बार होगी ! क्यों, वसुगुप्त ?

वसुगुप्त : निस्संदेह, सम्राट् ! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ किंतु महाराज नंद ने विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया। यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौंदर्य का कुसुम बन सका।

चंद्रगुप्त : वसुगुप्त ! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी संदेह होने लगता है।

वसुगुप्त : किस संबंध में, सम्राट् ?

चंद्रगुप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

वसुगुप्त : सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट् ! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्टवक्ता है ! सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे।

चंद्रगुप्त : चंद्रगुप्त रणनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त ! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के संबंध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें। इस संबंध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट् !

वसुगुप्त : यशोवर्मन ! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे युद्ध के लिए प्रेरित करते हो !

यशोवर्मन : सम्राट् के सेवक और आचार्य महामंत्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वंद्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हूं, वसुगुप्त ! सम्राट् ! मैं द्वंद्व की आज्ञा चाहता हूं।

चंद्रगुप्त : यशोवर्मन ! यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं ! कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए ! तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मैं क्षमा चाहता हूं। किंतु सत्य की रक्षा हो।

चंद्रगुप्त : अवश्य होगी। और आज कौमुदी महोत्सव मे तो सौंदर्य की ही रक्षा होगी ! हां, तुम राजनर्तकी के संबंध में क्या कह रहे थे ?

वसुगुप्त : सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट् ! कि सम्राट् के विश्राम-क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्तकी के नृत्य की आवश्यकता हो !

चंद्रगुप्त : हां, होनी चाहिए।

वसुगुप्त : तो सम्राट् ! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबंध करा दिया है। वह राजप्रसाद के उत्तर-कक्ष मे वेशभूषा से सुसज्जित है।

चंद्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने वाले वसुगुप्त ! मैं तुम से प्रसन्न हूं। कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे।

वसुगुप्त : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, जहां अठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सहस्रों विद्यार्थी थे। वहां मेरे एक मित्र थे। तुमने भी उनका नाम सुना होगा। प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन।

वसुगुप्त : वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्याससिद्ध शिष्य प्रसिद्ध है, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : हां, मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण पढ़ते थे। पाणिनि के व्याकरण सूत्र भाषा और साहित्य के पूर्व ही चलते थे। उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते है।

वसुगुप्त : आप मुझे आदर देते है, प्रभु !

चंद्रगुप्त · वही आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई। नीति-निष्णात आर्य चाणक्य के समान बुद्धि और अंतर्दृष्टि मे आज समस्त आर्यावर्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामंत्री है।

यशोवर्मन · सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षमता रखती है। राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि मे भी आचार्य चाणक्य निपुण है। चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आये थे। आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा मे ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की।

चंद्रगुप्त . यह मैं जानता हूं। उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्षशिला शासक आम्भीक उन्हे तक्षशिला मे ही रखना चाहता था। किंतु उन्होंने वहां रहना स्वीकार नही किया। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनो एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करेंगे।

यशोवर्मन : और सम्राट् ! उनका कथन अंत में कितना सत्य निकला !

वसुगुप्त : सत्य क्यों न होता ? मानवी हृदय को पहचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण मे उसका संपूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते है। अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र समन्वय उनमें हुआ है।

यशोवर्मन : वे नर-रत्न हैं, सम्राट् ! आपके सहयोग से वे राज्य को निष्कंटक बना देंगे।

चंद्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूं, किंतु कौमुदी महोत्सव के संबंध में भी मै आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका। संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया किंतु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी !

वसुगुप्त · वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अंतर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके

होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट्, राजनर्तकी के नृत्य के संबंध मे क्या निर्णय करते है ?

चंद्रगुप्त : उसका क्या नाम है ?

वसुगुप्त : 'अलका', सम्राट् । वह अनिंद्य सुंदरी और अद्वितीय नृत्यकला की साम्राज्ञी है।

चंद्रगुप्त : मै पहले उसे देखना चाहूंगा ।

वसुगुप्त . अवश्य, सम्राट् ! वह राजप्रासाद के उत्तर-कक्ष मे वेशभूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूं ?

चंद्रगुप्त : ऐसा ही हो ।

वसुगुप्त : जो आज्ञा । मैं उसे अभी सम्राट की सेवा में उपस्थित करता हूं।

(वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान)

चंद्रगुप्त : अंतपाल यशोवर्मन ! आज राजनर्तकी अलका का नृत्य देखकर कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्यकला का परिचय पा सकूंगा ।

यशोवर्मन : मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूं ।

चंद्रगुप्त : निवेदन करो ।

यशोवर्मन : विलासी नंद वंश की राजनीति में यह राजनर्तकी अलका है ।

चंद्रगुप्त : यह राजनर्तकी अलका ?

यशोवर्मन : हां, सम्राट् ! राजनर्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंद वंश के विनाश का कारण बनी और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती ।

चंद्रगुप्त · निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए। गौतम ने अहिल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहिल्या ने अपने सौंदर्य की रक्षा नहीं की थी, फिर क्यों उसने इंद्र को नहीं पहचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बांटने वाले इंद्र की लालसा का भी परिचय चाहिए ? वैसे ही क्या अलका महाराज नंद को नहीं पहचान सकी ? क्या महाराज नंद की आंखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएं विद्युत् बनकर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है किंतु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

चंद्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव को शोभा-संपन्न करने के लिए। और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चंद्रगुप्त ने महाराज नंद के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नंद के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में परिणत करना चाहता हूं।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक है। सम्राट् जानते हैं कि राजनीति मे राजनर्तकी का क्या स्थान है !

चंद्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढंकने के लिए म्यान का होता है। राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्तकी रूपी आवरण आवश्यक है किंतु वह आवरण कृपाण की धार को कुठित नहीं करता। राजनीति की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

यशोवर्मन : सत्य है, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : किंतु महाराज नंद की राजनीति राजनर्तकी से कुंठित हो गयी। तलवार की म्यान बनकर रह गयी, मैं राजनर्तकी को म्यान बनाकर रखना चाहता हूं। **(रुककर)** क्या कारण है, मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारंभ की सूचना तूर्य द्वारा नही सुन पड़ी ?

(वसुगुप्त का प्रवेश)

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजनर्तकी सेवा मे उपस्थित है।

चंद्रगुप्त : उपस्थित करो। वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य मे मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! **(प्रस्थान)**

चंद्रगुप्त : अंतपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमे उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य मेरी मनोहर भावनाये है जिनमे सुख का रहस्य जागता है !

(वसुगुप्त के साथ राजनर्तकी अलका का प्रवेश)

अलका : सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो ! **(अत्यंत सुकुमार भाव से प्रणाम करती है)**

चंद्रगुप्त : (**हाथ उठाकर**) कुसुमपुर की श्री और शोभा की अधिवासिनी बनो। (**यशोवर्मन से**) तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो आज्ञा सम्राट् ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चंद्रगुप्त : (**हंसकर**) आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहां भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गये होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क आज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! (**प्रस्थान**)

चंद्रगुप्त : राजनीति और कविता ! (**राजनर्तकी से**) क्यों राजनर्तकी ! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

अलका : सम्राट् ! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी किंतु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्तकी का राजनीति से क्या संबंध, सम्राट् ! वह तो राज्य की अनुचरी मात्र है।

चंद्रगुप्त : (**हंसकर**) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों में अनुचरी स्वामिनी बन जाती है, राजनर्तकी ! महाराज नंद तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नंद पर मोहित थीं ?

अलका : सम्राट् मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती, वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

चंद्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो —रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार मे ?

अलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही !

अलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट् ! जिस समर्पण में भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है, और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता !

चंद्रगुप्त : पर महाराज नंद तो हृदय का व्यापार करते थे और उस व्यापार में अपना सारा साम्राज्य हार गये ! क्या यह बात सत्य नहीं है ?

अलका : सत्य है, सम्राट् ! किंतु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है।

चंद्रगुप्त : पुरुषों के प्रति तुम्हारी वहुत हीन दृष्टि है, राजनर्तकी !

अलका : उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियो के प्रति हीन दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते है।

चंद्रगुप्त : किंतु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनायी जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है।

अलका : सम्राट् राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है, सम्राट् ! मै क्या निवेदन कर सकती हूं !

चंद्रगुप्त : किंतु राजनर्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है।

अलका . हा, सम्राट् जब वह पैरों से ठुकराई जाती है। किंतु सेविका का यह अधिकार नही।

चंद्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति मे अधिकार का आडबर नहीं होता, उसमे शक्ति की विद्युत् होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत् है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तडपकर नंद जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।

अलका . तब तो मुझे विद्युत् की भांति ही पृथ्वी मे विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : किंतु राजनर्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि मे विलीन हो जाये। राजनर्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।

अलका : यह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट् ! ऐसे फूलो का क्या सौंदर्य जो किसी शव पर बिखेर दिये जाते है। आज आपके चरणों पर गिरकर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊंगी।

चंद्रगुप्त : निराशा की बातें न करो, राजनर्तकी ! तुम जानती हो आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनंद-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजित करना है।

अलका . सम्राट् की जो आज्ञा, किंतु आज से मै राजनर्तकी का पद त्याग दूंगी और आपके चरणो की धूल मे शयन कर अमर हो जाऊंगी।

चंद्रगुप्त . राजनर्तकी ! तुम्हारा यह वार्तालाप महाराज नंद से नहीं हो रहा,

सैनिक चंद्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परंपरा के लिए छोड़नी है, राजनर्तकियों की परंपरा के लिए नहीं। किंतु मैं तुमसे प्रसन्न हूं। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारंभ करो, जिससे कुसुमपुर का वायु-मंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बनकर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुंचा दे।

वसुगुप्त : अलका ! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट् को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन के समस्त विषाद को भूल जाये।

चंद्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त !

वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है ! सम्राट् तो सैनिक हैं। सैनिक को विषाद कैसा ! मैं तो यही कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हित चिंतन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है…

चंद्रगुप्त : ठीक है। राजनर्तकी, नृत्य प्रारंभ हो !

अलका : जो आज्ञा सम्राट् की ! **(प्रणाम कर नृत्य प्रारंभ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है)**

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गयी कली,
और नभ से सध्या ने उतर,
लगाया आंखों मे अंजन !
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !

(थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अंत में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं)

चंद्रगुप्त : बहुत सुंदर, राजनर्तकी अलका ! तुम जितनी सुंदर हो, उतना ही सुंदर तुम्हारा नृत्य है। यह लो अपना पुरस्कार !

(चंद्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश)

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जायेगा, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : **(आश्चर्य से रुककर)** महामंत्री चाणक्य !

चाणक्य : सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथ मे नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय मे कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शीतल भस्म हो गयी है कि उसमें कुसुमों की क्यारिया सजायी जाये।

चंद्रगुप्त : महामंत्री, चंद्रगुप्त ने कुसुमो की क्यारियों मे नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है। उसने नूपुरों की झंकार मे नहीं, तलवारो की झनकार में अपने जीवन का सगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चंद्रगुप्त के क्षणिक मनो-विनोद मे उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया ? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

चाणक्य : और सम्राट् चंद्रगुप्त ! यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अंत हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

चंद्रगुप्त : आर्य, विश्राम के क्षणो की सीमा क्या और कितनी है, यह जानने के लिए चंद्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक

चाणक्य : **(बीच ही में)** ··नहीं है। यही समझकर मे अपने साथ सैनिक लाया हूं। **(पुकारकर)** सैनिको ! राजनर्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो !

(सैनिक नेपथ्य से निकलकर आगे बढ़ते हैं)

वसुगुप्त : सम्राट्, राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिये !

चंद्रगुप्त : महामंत्री, वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं !

चाणक्य : किंतु इस समय वे बंदी है। सैनिको, दोनों को नियंत्रण में लो। यदि कोई विरोध हो तो शस्त्र-प्रयोग हो !

वसुगुप्त : **(करुण स्वर में)** मै निर्दोष हू, मै निर्दोष हू, सम्राट् ! महामंत्री ! मै निर्दोष हूं।

अलका : **(अत्यंत करुण स्वर में)** मेरा स्पर्श कोई न करे। मै नारी हूं।

नारी की मर्यादा सुरक्षित हो, सम्राट् ! नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! मैं स्वयं नियत्रण मे होती हूं। हाय, नारी नियंत्रण में, सदैव नियत्रण में, जीवन-भर नियंत्रण में ! (**विह्वल हो जाती है**)

चंद्रगुप्त : (**आगे बढ़कर**) आर्य चाणक्य…

चाणक्य : कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चंद्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है। सैनिको ! दोनों को नियत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में जाओ।

सैनिक : जो आज्ञा !

(**दोनों को बंदी कर सैनिकों का प्रस्थान**)

चंद्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामंत्री ! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढाकर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें, यह कैसी राजनीति है ! आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर…

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव ?

चंद्रगुप्त : हां, कौमुदी महोत्सव। क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

चाणक्य . वह सुनने योग्य नही थी।

चंद्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहें है, महामंत्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राज-घोषणा है।

चाणक्य : वह राज-घोषणा प्रारंभ होने से पूर्व ही समाप्त हो गयी।

चंद्रगुप्त : (**आश्चर्य से**) समाप्त हो गयी ! किसने यह साहस किया ?

चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने !

चंद्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नही सुन पड़ा ! तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी ?

चाणक्य : नहीं। मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।

चंद्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूं।

चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता।

चंद्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चंद्रगुप्त या चाणक्य ?

चाणक्य : चंद्रगुप्त।

चंद्रगुप्त : फिर सम्राट् चंद्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है ?

चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक के हठ की तरह है।

चंद्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा चाहिए।

चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।

चंद्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामंत्री !

चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : (**क्रुद्ध होकर**) महामंत्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिंगारी को फूंक मारकर लपट में परिवर्तित कर दिया ? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जलकर भस्म हो सकती है !

चाणक्य : मुझे इसकी चिंता नहीं है, सम्राट ! गर्व मेरे अंतःकरण का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किंतु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि चाणक्य के गर्व की चिंगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी। हा, अपमान के हल्के झोंके से ही वह दावाग्नि बनकर तुम्हारे वैभव के नंदन वन को क्षण-भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नंद वंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

चंद्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! सैनिक चंद्रगुप्त विलासी नंद नहीं है जो पतन के गर्त के मुख पर खड़ा होकर हल्की-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चंद्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आंधियों के झोंके एक कण-भर भी विचलित नहीं कर सकते।

चाणक्य : मौर्य चंद्रगुप्त ! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भांति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाये तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्रतल में चला जायेगा और तब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लौटने के लिए आयेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

चंद्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामंत्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए है ? और जहां महामंत्री चाणक्य नहीं हैं, वहां किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामंत्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा मांगकर

संसार में चली है और क्या चंद्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर ही विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही दूर करता हूं। महामंत्री चाणक्य ! तुम महामंत्री पद से मुक्त किये गये।

चाणक्य : मौर्य ! लो अपना शस्त्र ! (फेंक देते हैं) यह कलंक इसी समय दूर करता हूं। राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चंद्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूं ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नंद वंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है ? जिस चंद्रगुप्त को अपना आत्मीय समझकर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया, उसी चंद्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूं ! वाह रे ब्राह्मण ! ब्रह्म-ज्ञान में जीवित रहने वाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं ही पी रहा हूं। किंतु चंद्रगुप्त ! मुझमें कालकूट को भी पी जाने वाले नीलकंठ की शक्ति है। समझते हो ?

चंद्रगुप्त : समझता हूं, चाणक्य ! (शस्त्र उठाते हुए) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है। आज मैं समस्त राजनीति अपने बाहुबल में केंद्रित कर कुसुमपुर का शासन करूंगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूंगा।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने नवीन समाहर्त्ता और राजनर्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमंत्रण दो।

चंद्रगुप्त : मेरे आनंदोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य ! तुम यही कहो ! ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

चाणक्य : आत्म-चिंतन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय ! वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है—वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिये हुए है ! शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भांति करता है जैसे एक ही उछाल में पतंगा दीप-शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआं अपने पीछे छोड़ जाओ !

चंद्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो ! राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आंखों की पुतलियां काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामंत्री की विशेषता····

चाणक्य : महामंत्री मत कहो, मौर्य ! मैं अब तुम्हारा महामंत्री नहीं हूं। मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूं। मैं केवल एक ब्राह्मण हूं। वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बांधी गयी जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नंद वंश का विनाश कर दिया। अब उसके *सामने केवल दो ही मार्ग है। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोलकर मौर्य* वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भांति अपनी बाहुओं को फैलाकर नक्षत्रो के नेत्रों से विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शांति से सींचे। तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु के झकोरों में झूमकर सामगान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चंद्रगुप्त : यह तपोवन नहीं है, आर्य ! और चंद्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुंड में हिंसा करो या कुश-कंटक चरने वाले हरिणों को क्षमा करो, किंतु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्तकी अलका पर लगाये हुए लांछन का निराकरण करना होगा ! और यदि यह लांछन असत्य निकला तो राज्य का दंडविधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अंतिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामंत्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्घाटन के लिये बाध्य नहीं हूं।

चंद्रगुप्त : जो ब्राह्मण-सत्य के उद्घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से संबोधित करूं ?

चाणक्य : सत्य का उद्घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूं। किंतु इस उद्घाटन के अनंतर मैं एक क्षण भी यहां नहीं ठहर सकूंगा। यह वातावरण अभिशाप बनकर मेरे रोम-रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चंद्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाये !

चाणक्य : (**पुकारकर**) सैनिक !

(**सैनिक का प्रवेश**)

सैनिक : आज्ञा महाराज !

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका को उपस्थित करो !

सैनिक : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

चाणक्य : चंद्रगुप्त प्रजा के सस्कार जल्दी नही छूटते। इस समय भी महाराज नंद से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर मे विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं। राजमंत्री राक्षस कुसुमपुर के बाहर रहकर भी कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों मे षड्यंत्रों का जाल जयकार के छद्मवेश, में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव मे असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो ! चंद्रगुप्त मै अपने निस्पृह नेत्रों से सब-कुछ देख रहा हूं और तुम देखकर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता मे हलाहल पान करने जा रहे हो ! मैं फिर यही कहना चाहता हूं···

(**सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश**)

अच्छा ! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्तकी अलका !

सैनिक ! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो।

(**सैनिक का प्रणाम कर प्रस्थान**)

(**वसुगुप्त को संबोधित करते हुए**) समाहर्त्ता वसुगुप्त ! मुझे दुख है कि मैंने तुम्हें सैनिको के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूं कि तुम सम्राट् चंद्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो !

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूं, महामंत्री ! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भांति नहीं देख सकते थे !

अलका : (**करुण स्वर में**) और नारी का अपमान आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ ! मैं अपमानित हुई हूं, सम्राट् !

चंद्रगुप्त : (*दृढ़ता से*) *निस्संदेह ! मै दोनों के अपमान का प्रतिकार करूंगा।*

चाणक्य : (**वसुगुप्त से**) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता ! और (**राजनर्तकी से**) राजनर्तकी तुम्हें भी सम्राट् की बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है; किंतु (**वसुगुप्त से**) मैं जानना चाहता

हूं, समाहर्त्ता ! राजनर्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है ?

वसुगुप्त . मैं राजनर्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामंत्री ! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला ।

चाणक्य : तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता !

वसुगुप्त · कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूं । मै वहां का अतपाल था ।

चाणक्य : तो तुम कुसुमपुर मे कब से निवास करते हो ?

वसुगुप्त : मैंने कहा न महामंत्री ! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूं ।

चाणक्य : सम्राट् चंद्रगुप्त ने तुम्हे कुसुमपुर मे पाया था अमरावती मे ? उन्होंने तुम्हे अपना समाहर्त्ता बनाने में कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान मे रखा होगा ?

वसुगुप्त : मै कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामन्त्री ! मै अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूं ।

चाणक्य वर्ष मे कितनी बार आया करते हो ?

वसुगुप्त : मै कह नहीं सकता ।

चाणक्य . (**कठोर स्वर मे**) प्रश्न की अवहेलना नही हो सकती । ठीक उत्तर दो ।

वसुगुप्त : महाराज नंद के प्रमुख उत्सवों मे आया करता था ।

चाणक्य : गत वर्ष वसंतोत्सव मे सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अंतपाल !

वसुगुप्त : हां, महामंत्री !

चाणक्य : वसंतोत्सव मे राजनर्तकी अलका ने नृत्य किया था । तुमने उसे देखा था ?

वसुगुप्त : हां, महामंत्री ।

चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो ?

वसुगुप्त . हां, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मै अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्तकी का परिचय मिला !

वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नही करता !

चाणक्य : (हंसकर) बड़े राजनीतिज्ञ हो ! अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमंत्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

वसुगुप्त : महामंत्री मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूं।

चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्तकी को नहीं जानते थे ?

वसुगुप्त : (**चंद्रगुप्त से**) सम्राट् ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिये।

चंद्रगुप्त : मैं रक्षा करूंगा। पहले महामंत्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो।

वसुगुप्त : मैं उत्तर देने में असमर्थ हूं, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव-पान कर लिया है। इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं।

चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव-पान करने के लिए दूंगा, जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो।

वसुगुप्त : मैं अधिक आसव-पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूं, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव-पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता। अब कहते हो, मैं अधिक आसव-पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूं !

वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने मे असमर्थ हूं।

चाणक्य : बार-बार राजनीति ! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव-पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है ! हां, तुम्हारी नहीं, मेरी है। समाहर्त्ता ! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूंगा। कविता की बातें कहूंगा। कविता की बातें कर सकते हो ? उत्तर दो, जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिये हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है ?

वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामंत्री !

चाणक्य : तुम नहीं जानते, मैं जानता हूं। जो आसव वन्य कुसुमों की सुगंधि लिए हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुंदरियां अपने हाथों से पान कराती हैं, ऐसी सुंदरियां जिनके नेत्रों में आसव है। वे तुम्हारे

आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढालकर उसे और भी मादक बना देती है ।

वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में ही पारंगत है, महामंत्री !

चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं मे कविता कहां ! किंतु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूं । एक बात और पूछूं ? सुंदरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में ?

वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री !

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ! जिसमें तुम पारंगत हो । अमरावती के अंतपाल और महाराज नंद के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है । महाराज नंद के वसंतोत्सव में 'अनंग क्रीड़ा' का आयोजन हुआ था ?

वसुगुप्त : हां, महामंत्री !

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे । तब तो तुम जानते ही होगे कि सुंदरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है । होती है न, समाहर्त्ता ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो !

वसुगुप्त : हां, महामंत्री !

चाणक्य : तो जो आसव सुंदरियां अपने अधरो से लगाकर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो !

वसुगुप्त : हां, महामंत्री !

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नही पूछना । तुमसे इतने प्रश्न पूछकर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मै तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूं । और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किये गये मादक आसव का एक घूंट···

अलका : (**विह्वल होकर**) क्षमा कीजिये महामंत्री ! मैं आसव का स्पर्श नही करूंगी । आज तक न मैंने आसव-पान किया है और न पान कराया है । मैं क्षमा की भीख मांगती हूं, महामंत्री !

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव मे पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं । (**पुकारकर**) सैनिक ! (**सैनिक का प्रवेश**) आसव का एक चपक उपस्थित करो ।

सैनिक : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

अलका : (**बिलखकर**) महामंत्री, मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मै राजनर्तकी बनकर नारी भी नहीं रह पायी। मैं संसार की सबसे बड़ी विडंबना हूं, मै पाप की कालिमा हूं, मैं रौरव की ज्वाला हूं, ! मैं···मैं···

चाणक्य : नहीं देवी ! तुम महाराज नंद की राजनर्तकी हो ! अनिंद्य सुंदरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हा, मुझे दुख है कि तुम्हारा जीवन··· (**सैनिक चषक लेकर आता है**) क्या ले आये चषक ? हां, मै अपने साथ ही तो लाया था आसव और चषक ! लो तुम इसका पान करो, राजनर्तकी !

अलका : महामंत्री ! मुझे आसव-पान न कराओ, मुझे विष दे दो ! भयानक हलाहल दे दो ! उससे शांति मिलेगी ! मेरी जिह्वा पर सर्प-दंशन चाहिए, सर्प-दंशन, ! सर्प-दंशन, महामंत्री !

चाणक्य, सर्प-दंशन तुम्हे नहीं चाहिए, राजनर्तकी ! किसी और को चाहिए। (**सैनिक से**) सैनिक ! बलपूर्वक यह आसव राजनर्तकी को पान कराओ ! (**सैनिक राजनर्तकी को बलपूर्वक आसव-पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई सांस में मदिरा-पान करने की आवाज**) बस रहने दो ! (**सैनिक राजनर्तकी के अधरों से चषक हटाता है**) अब यह आसव राजनर्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिये। सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिये। मैं यह आसव-पान नहीं करूंगा, नहीं करूंगा !

चाणक्य : सैनिक ! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ !

(**सैनिक बलपूर्वक आसव-पान कराते हैं। घुटते कंठ की आवाज।**)

वसुगुप्त : (**लड़खड़ाते शब्दों में**) ओह ! घोर···हलाहल···आग की···ज्वाला ! सर्प दंशन···सर्प··दंशन···महामंत्री···चाणक्य ! तुम राज मंत्री···राक्षस···विजयी···हुए। कौमुदी···महो···त्सव···नहीं···हो···सका। अलका···मुझे···क्षमा। कौमुदी···महो··त्सव···कौमुदी···म··हो··त्स··व·· (**प्राण छूट जाते हैं**)

चंद्रगुप्त : ओह विषकन्या ! राजनर्तकी विषकन्या है ! अधरों से स्पर्श किया गया आसव···हलाहल···बन गया ! समाहर्त्ता···

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चंद्रगुप्त ! अब अलका··

अलका : सम्राट् ! क्षमा कीजिये ! महामंत्री, प्राणों की भिक्षा दीजिये ! मैं निर्दोष हूं, मै निर्दोष हूं ! सम्राट् ! मैं आपके चरण चूम-कर ··· (**चरणो पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है**)

चाणक्य : पीछे हटो ! पीछे हटो चंद्रगुप्त ! (**चद्रगुप्त पीछे हटते है**) यह तुम्हारे पैरों में अपने दात चुभाकर तुम्हें मृत्यु-मुख में ढकेल देगी। यह इसका अंतिम प्रयोग है। नारी रूप में भयानक सर्पिणी विषकन्या ! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चंद्रगुप्त को विषकन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी। सैनिको ! राजनर्तकी को बंदी करो। इसका प्रयोग शत्रु पर किया जायेगा। (**सैनिक राजनर्तकी को बंदी करते हैं**) समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्तकी अलका विषकन्या ! इस सत्य का उद्‌घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है और इस उद्‌घाटन के अनतंर मैं एक क्षण भी यहां नहीं ठहर सकूंगा ! मेरा मार्ग छोड़ दो। हटो ! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चंद्रगुप्त ! अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अंतिम सस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनो साथ-साथ करो और अपना राज्य संभालो ! (**प्रस्थान**)

चंद्रगुप्त : (**विह्वल स्वर में**) आर्य चाणक्य ! महामंत्री चाणक्य ! चंद्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जायेगा, चंद्रगुप्त नष्ट हो जायेगा। महामंत्री चाणक्य ! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा ! (**चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं। उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनायी पड़ती है**) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !···कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!!

शाप और वर

—सेठ गोविंददास

(पूर्वार्द्ध)

चरित्र

एक पत्नी

एक पति

शाप और वर

—सेठ गोविंददास

(स्थान : पत्नी का सूतिका-गृह)

समय : संध्या

(सूतिका-गृह) आधुनिक ढंग का एक कमरा है। दीवालों में कई दरवाजे और खिड़कियां है, लेकिन पीछे की दीवाल के सब दरवाजे और खिड़कियां बंद हैं। दाहिनी और बांई दीवालों के सिरे की केवल एक-एक खिड़की कमरे की हवा साफ रखने के लिए खुली हुई है । दीवालें क्रीम डिस्टेंपर रंग से रंगी हुई हैं और उस पर ग्रे रंग की लाइन है। दीवालों पर कुछ चित्र भी लगे हुए है। छत से विजली की बत्तियां झूल रही हैं, जिन पर सुंदर शेड है । बिजली की बत्तियों मे इस वक्त रोशनी नहीं है। जमीन पर संगमरमर का फर्श है। और उस पर कोई बिछावन नहीं है । पीछे की दीवाल के नजदीक आधुनिक ढंग का एक बड़ा-सा पलंग है, जिस पर अत्यंत श्वेत शैय्या है । इसी पलंग के निकट सफेद रग का लोहे का बना हुआ आधुनिक ढंग का एक छोटा-सा पलना है। पलने पर जाली की मच्छर-दानी है, जिसके कारण उसके अंदर क्या है, यह स्पष्ट दिखायी नहीं देता। पलंग के नजदीक एक ओर एक टेबिल है, जिस पर दवा की कई शीशियां, थरमामीटर आदि रखे हुए हैं। एक सुंदर टाइम-पीस घड़ी भी रखी है। पलंग के निकट ही दूसरी ओर दो कुशनदार कुर्सियां रखी है। कुर्सियों पर दो मखमली तकिये है। कुर्सियों के बीच में रेशमी मेजपोश से ढकी हुई एक छोटी-सी टेबिल है। टेविल पर फूलों से भरा हुआ एक गुलदस्ता रखा है। दाहिनी तरफ की दीवाल के निकट लकड़ी की एक अड़गनी रखी है, जिस पर कुछ कपड़े टंगे हैं। पलंग पर एक स्त्री लेटी हुई है। वह बिलकुल सीधी लेटी है और गले तक उसका शरीर एक भूरे रंग के बेशकीमत कवल से ढका हुआ है। उसकी दोनो भुजायें कंबल से बाहर है। उसके मुख और भुजाओं को छोड़कर उसके शरीर का और कोई हिस्सा दिखायी नही देता। स्त्री की उम्र 30 वर्ष के करीब है। वह गौर वर्ण की साधारणतया सुंदर स्त्री है उसके पलंग के नजदीक दो कुर्सियो में से एक कुर्सी पर एक पुरुष बैठा हुआ है। पुरुष की अवस्था लगभग 32-33 साल की है। वह गेहुंए

रंग का, मामूली कद का और शरीर का साधारणतया सुंदर व्यक्ति है। बटर-फ्लाई मूंछे हैं और पोशाक अंग्रेजी फैशन की है। स्त्री की मुख-मुद्रा से अत्यधिक शोक के साथ क्रोध और निराशा टपक रही है। वह पुरुष की तरह दृष्टि लगाये उससे कुछ कह रही है। उसकी आवाज़ में क्षीणता है, पर क्षीणता के साथ ही एक विचित्र प्रकार की दृढ़ता भी है। क्षीणता और दृढ़ता दो विरोधी चीजों से भरी हुई यह आवाज ऐसी है, जिसके उत्तर में कोई आवाज निकालना असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन बात अवश्य है। पुरुष बिना हिले-डुले तथा बिना कुछ कहे बैठा हुआ चारों ओर केवल देख रहा है। उसके देखने का ढंग ऐसा विचित्र है कि सब कुछ देखते हुए भी जान पड़ता है कि वह कुछ नहीं देख रहा है। उसके बैठने और देखने के ढंग तथा उसकी मुख-मुद्रा से केवल शून्यता का भाव दृष्टिगोचर होता है। उसकी आंखों की पुतलियां इधर-उधर चक्कर लगा रही है और ऊपर का ओंठ नीचे के ओंठ पर इस प्रकार बैठा हुआ है जैसे किसी डिब्बी का ढक्कन हो।)

स्त्री : हां, आज सुनना ही होगा, जाने के पहले जी भर कह तो लूं। शायद इसीलिए अभी तक बची हुई भी हूं। **(कुछ रुककर)** बारह वर्ष के एक युग में नहीं सुना, पर आज सुनना ही होगा, चुपचाप, बिना किसी तरह की बाधा के सुनना होगा। बारह वर्ष की तपस्या और घृणित तपस्या के बाद कदाचित् इतना फल मिलना बहुत ज्यादा नहीं है।

(पुरुष जो सामने की दीवाल की तरफ देखता था, स्त्री की ओर देखने लगता है और एक लंबी सांस लेता है।)

स्त्री : इसमें भी कष्ट होता है? लंबी सांस मुंह से निकलती है? कष्ट होता हो तो हो, लम्बी सांस बार-बार निकले, पर सुनना तो अवश्य होगा।

(पुरुष और ध्यान से स्त्री की तरफ देखने लगता है और उसके होंठों पर रूखी मुस्कुराहट एक रेखा-सी आकर विलीन हो जाती है।)

स्त्री : ऐसी रूखी···ऐसी···निर्जीव···ऐसी क्षण-भंगुर मुस्कुराहट! रस से भरी, जीवन से व्याप्त और सदा ही टिकने वाली मुस्कुराहट की आशा से, और उस मुस्कुराहट पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की अभिलाषा से, तुम्हारे घर में पैर रखा था। **(कुछ रुककर)** विवाह के पहले मां, बाप, सहेलियां, पड़ोसी और पड़ोसिन न जाने क्या-क्या सोचते थे। पिता तो इस संबंध

के सबब से विचारते कि उनका जीवन ही सफल हो गया; मां के नेत्रों में यह सोच-सोच कर कि मैं कैसे बड़े घर में जा रही हूं, अगणित बार आंसू छलछला आते; सहेलियों मे किसी को खुशी और किसी को ईर्ष्या; और पडोसी पडोसिन तो कहते कोई ऐसा भी सुख है जो मुझे न मिलेगा। मेरे भावी सातों सुखों की कल्पना और उन सुखों का वर्णन कर उस मेरे सुख-संसार की कैसी सुदर सृष्टि मेरे चारों तरफ की जाती। (कुछ रुककर) मैं भी विचारती सचमुच मैं बडभागनी हूं। इस देश मे करोड़पति से ज्यादा धनवान अरबपति तो होते नहीं; करोडपति घर में आ रही थी। सुना था तुम बड़े सुदर हो, शिक्षित भी। फिर भला मन मे जीवन की किसी कमी की संभावना हो सकती थी? (कुछ रुककर) मेरे बाप का घर तुम्हारे घर-सा संपन्न तो न था, पर वे भी भूखे न थे। मुझे अच्छी तरह पढ़ाया-लिखाया था। कभी-कभी पहाड़ो और बड़े-बडे शहरो की सैर भी करायी थी। मैं प्राय· कालिदास और वर्डस्वर्थ के प्राकृतिक वर्णन पढा करती। कभी-कभी भवभुति और शैली की प्रेम-भावनायें। कभी सूरदास की प्रेम-यमुना में गोते लगाने लगती और कभी तुलसीदास की कर्तव्य-गंगा मे। रवींद्र बाबू तो मेरी समझ में न आते, लेकिन माइकेल की पंक्तियों का हिंदी अनुवाद तो मुझे कठस्थ हो गया था। गालिब और जौक के भाषानुवाद भी मैंने देखे थे और पंत और महादेवी भी मेरे अध्ययन के बाहर न रहे थे। जीवन-यापन में मैंने न जाने क्या-क्या सोचा था। कैसी अपनी दुनियां बनायी थी। हम दोनों किस तरह रहेंगे, किस-किस ऋतु में किस-किस प्रकार हमारा आहार-विहार होगा, उषा और संध्या, चांदनी रातों और अंधेरी रातों मे हम क्या-क्या करेंगे, इस सबका मैंने एक चार्ट बनाया था, चार्ट! कभी पहाडो पर, कभी समुद्र के किनारे, कभी बड़े-बड़े शहरों और कभी उपवनों तथा उद्यानो मे हमारी कामनाये किस तरह सजीव रूप धारण करेंगी इसकी मैं कल्पना किया करती थी। सारी सृष्टि हमारी पद-वंदना करेगी और समस्त संसार के रहते हुए भी मेरे लिए सिर्फ तुम और तुम्हारे लिए केवल मै रहूंगी, यह विचार मेरे विश्व की नींव थी, नीव! (कुछ रुककर) क्या-क्या सोच कर आयी थी, पर हाय! यहा आते ही मेरी कुसुमित कृषि पर पाला पड़ गया। ऐसा पतझड़ हुआ कि उसके बाद आने वाले वसंत के कभी दर्शन ही न हुए। (फिर कुछ रुककर) कारण?·· कारण केवल एक -- तुम··· वैसे न निकले जैसाकि मैंने सोचा था।

(पुरुष कुछ भय की मुद्रा से सामने की दीवाल के एक चित्र की तरफ देखने लगता है मानो निर्जीव चित्र उससे कुछ पूछ रहा हो।)

स्त्री : देखो, इधर देखो, अभी तो मैंने शुरू ही किया है। अभी तो न जाने मुझे कितना कहना है। एक युग का इतिहास है न ? इन पर तो एक पुराण लिखा जा सकता है, पुराण !

(पुरुष फिर से स्त्री ओर देखने लगता है।)

स्त्री : तुम्हारा प्रेम··· तुम्हारा प्रेम पाती, तभी तो मेरी दुनिया की रचना होती। वे मनोरम पर्वत, वह क्षीरसागर, वे खुशनुमा बगीचे, वे जीवनमय नगर, वे परिवर्तनशील ऋतुयें, वे सुंदर चांदनी रातें तो तब बनतीं न जब प्रेम का वह छोटा-सा अंकुर उगता, प्रणय की वह छोटी-सी बूंद पाती। नेह करना, उसमें निमग्न हो जाना यह तो दूर रहा, तुमने प्रेम की एक दृष्टि तक न फेंकी। उपेक्षा··· ऐसी उपेक्षा !···विराग···ऐसा विराग !

(पुरुष उठना चाहता है।)

स्त्री : कभी नहीं, हरगिज नहीं। तुम नहीं जा सकते। **(गिड़गिड़ाकर)** बिना मेरी सुने आज भी चले जाओगे ?

(पुरुष बैठ जाता है, परंतु बैठते-बैठते वह अपना सिर और हाथ इस प्रकार हिलाकर बैठता है मानो इसके चारों ओर कई कीड़े-मकोड़े इकट्ठे हो रहे हैं अथवा भिनक रहे हैं, जिन्हें वह हटाकर बैठ रहा है।)

स्त्री : तुम्हारे प्रेम से रहित यह सपन्न गृह मुझे श्मशान-सा प्रतीत होने लगा। इसका धन, सोने-चांदी के निर्जीव टुकड़े, इसके रत्न और मणियां नंगे पैरों में चुभने वाले पत्थरों के नुकीले खंड और सारा वैभव चिता की लपटें···!

(पुरुष लंबी सांस लेता है।)

स्त्री : हां, क्षण-क्षण, सेकिंड-सेकिंड पर लो, भरो ये आहें, पर···पर अब ये बुझी हुई है, सर्वथा बुझी हुई ! **(कुछ रुककर)** हां, तो, मेरा संसार चाहे एक 'रहित' शब्द से भर गया हो, पर तुम्हारा ऐसा न था। मेरे उस शून्य संसार में भी तुम, सिर्फ तुम थे, पर तुम्हारे विश्व में दुनिया की कौन-सी ऐसी चीज, जो न हो। धन से चाहे मेरे इच्छित प्रेम के सदृश वस्तु न खरीदी जा सकती हो, लेकिन लालसा तो प्रचुर परिणाम में ली जा सकती है। उसे तृप्त करने लिए तुम्हारे होने वाले विलास और विहार, उसमें रमण करने वाली रमणियां ! **(कुछ रुककर)** जब··· जब मैं यह सब हाल सुनती तब···तब···मेरी···मेरी हालत;

मेरी···मेरी जलन···उस जलन से उठी हुई तुम्हारी इन लंबी सांसों से कही··· कही···भयानक भस्म करती हुई सासों-रूपी लू, अंधड ! (फिर कुछ ठहरकर) सास-ससुर -कभी-कभी पहाड़ों पर ले गये, पर तुम से अलग उन पहाड़ों की बर्फ से ढकी चोटियां सूर्य की किरणों से चमकने के कारण ज्वालामुखी-सी दिखायी दी। कभी-कभी उनके साथ समुद्र के किनारे पर भी गयी, पर तुम्हारे बिना समुद्र डरावने जलचरों से भरा हुआ उनका भयानक आलय दीख पड़ा। कभी-कभी बंबई, कलकत्ता, दिल्ली आदि शहरों को भी वे ले गये, पर तुम से पृथक् वे सब ऐसे सूने मालूम पड़े मानों नाटक, सर्कस, सिनेमा आदि निर्जीव पुतलियों के खेल। तुम जो मेरे सच्चे जीवन थे, उनसे इन सब चीजों में जीवन भर सकता था। प्राणों के बिना शरीर मुर्दा ही रहेगा और क्या होगा? (कुछ रुककर) तुम्हें रिझा सकने में अपने को असमर्थ पाकर अब मैं अपने भाग्य को कोसने लगी। इस जन्म मे तो कोई पाप न किये थे, पूर्व-जन्म के पापों को याद किया। पर···पर···भाग्य और पूर्व-जन्म है भी या सिर्फ दुखियो को दिलासा दिलाने की चीजें? यह शका उठी, बार-बार उठने लगी, और फिर···फिर तो तुम पर क्रोध की उत्पत्ति हुई। अब···अब एकाएक ख्याल आया मैं भी तुम्हारे समान गुलछर्रे क्यों न उड़ाऊं मैं···मैं···भी···

(पुरुष के मुख पर क्रोध के भाव झलकने लगते हैं और वह दांतों से नीचे के ओंठ को काटता है।)

स्त्री : (घृणा से मुस्कुराकर) क्रोध आता है? मेरी भावना-मात्र पर क्रोध! क्यों न आयेगा? स्त्री तो अन्य सांपत्तिक वस्तुओं के समान पुरुष की खरीदी हुई चीज़ है न? फिर जीवन रहते हुए भी तुम पुरुष उसे निर्जीव मानते हो। उसके हृदय मे काम की उत्पत्ति पाप है; क्रोध का प्रादुर्भाव अक्षम्य; पर क्यों ···आखिर क्यों? मैंने···मैंने तो तुम्हारे सदृश···सिर्फ तुम्हारे सदृश जीवन बिताने की बात सोची थी; तुम से निराश होकर और···और तुम्हारा ऐसा जीवन देखकर और सोचती भी क्या?···मेरी भावना पर क्रोध आता है, तो तुम्हारी कृतियों पर मुझे कितना क्रोध आता होगा, इसे···इसे भी सोचो।

(पुरुष एकाएक खड़ा हो जाता है।)

स्त्री : (हाथ से बैठने का इशारा करते हुए) घबड़ाओ नहीं, बैठो, बैठो, मेरी भावना विचार तक ही रह गयी।

(पुरुष फिर बैठ जाता है और कुर्सी के हत्थे पर हाथ फेरने लगता है।)

स्त्री : जज, जूरी या असेसर के सदृश तुम मुंह मत बनाओ। मैंने स्वयं ही अपनी भावना का तुम्हारी इच्छानुसार ही फैसला कर लिया। हिंदू···निगोड़े हिंदू संस्कार जो थे। रामायण जो पढ़ी थी, पुराण जो सुने थे, उन सब पर जो श्रद्धा थी। सबने मिलकर अपनी अदृश जंजीरों से मन और बुद्धि को जो जकड़कर रख छोड़ा था। फिर समाज···पतित समाज की बदनामी का जो भूत था। पुरुष···पुरुष चाहे कुछ ही क्यों न करें पर स्त्री···स्त्री···? जो कुटुंब, जो घर मेरे जीवन के जीव को नष्ट करने वाला प्रलय था, उसी कुटुंब ···उसी घर के सम्मान···सम्मान का जो पिचाश था।···मैं···मैं वैसी न हो सकी, जैसे तुम थे। **(कुछ रुककर)** जैसे-जैसे वक्त बीतता गया, मेरे दुख बढ़ते गये। और इस दुख को और प्रज्ज्वलित कर दिया संतान होने के लिए होने वाले अनुष्ठानों के यज्ञों में डाली हुई घी की आहुतियों ने। फिर भी जब संतति न हुई और उन दयालु सास-ससुर की दृष्टि भी फिरी तब···तब तो मुझे जीवन एक विलक्षण विडंबना जान पड़ने लगा। संतान न होने में मेरा दोष, तुम्हारा नहीं? सास कई दफा कहतीं मुझे—बांझ, पत्थर, खुड़पगी! कुछ दिनों के बाद ससुरजी भी कहने लगे—'मा के जब एक ही लड़की है कोई लड़का नहीं, तो हमारा वंश ही इस बांझ से कैसे बढ़ेगा। यह अपनी मा से एक कदम और आगे बढ़ गयी है।' मुझ पर ही नहीं मा-बापों पर भी प्रहार हुए **(फिर कुछ ठहरकर)** तब···तब जानते हो मेरे मन में क्या उठा?

(पुरुष स्त्री की तरफ देखते हुए, बोलने के लिये उद्यत दीख पड़ता है। स्त्री चुप हो जाती है। किंतु जब बोलने और न बोलने के बीच का संघर्ष भर दीख कर उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकलता तब स्त्री फिर बोलने लगती है।)

स्त्री : मुंह से शब्द नहीं निकलता। कैसे निकलेगा? मेरे मन में यह उठा कि संतान न होने में किसका कुसूर है, मेरा या तुम्हारा, यह तो मैं बहुत जल्दी सिद्ध कर सकती हूं। महाभारत में विचित्रवीर्य और चित्रांगद का दोष उनके मरने पर वेदव्यास ने सिद्ध किया था। पांडु और धृतराष्ट्र नियोग से पैदा हुए थे। उन रानियों तथा व्यास मुनि को किसी ने पापी न कहा। मैं तुम्हारे जीते-जी ही किसी आधुनिक महर्षि को ढूंढ़, बांझनी के दोष से मुक्त हो, तुम्हारी वंश-वृद्धि कर दूं।

(पुरुष एकाएक खड़ा हो इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगता है मानो उसे अपना ही शरीर अद्भुत जान पड़ता है।)

स्त्री : बैठो, बैठ जाओ। पर मैं अपने विचार को कार्य-रूप में परिणत न कर सकी। उसी समय अपने मां-बाप की कातरता के कारण तुम्हे दया आ गयी। शायद संपत्ति के उत्तराधिकार की इच्छा भी संतति की अभिलाषा का सबब हो'। तुमने मेरे पास आना शुरू किया। कहती हूं, बैठ जाओ।

(पुरुष जो अब खड़ा था बैठने का उपक्रम करता है। पर बैठने के पहले कुर्सी पर से चिपके हुए तकिये को ठीक करता है।)

स्त्री : जिस संग के बिना मुझे सारा संसार सूना लगता था अब तुम्हारा वह साथ भी मुझे कोई आनंद न दे सका। इस चिपके हुए तकिये को तो तुम ठीक कर सके पर मेरे चिपके हुए हृदय को नहीं; जानते हो, कारण ?

(पुरुष फिर बोलने का प्रयत्न है। स्त्री चुप हो जाती है। पर जब पुरुष के ओंठ हिलकर रह जाते हैं, शब्द नहीं निकलता, तब स्त्री फिर बोलने लगती है।)

स्त्री : न बोल सकोगे। अच्छा सुनो, मैं ही कारण बताती हूं। मुझे तुम्हारे आने-जाने से इसलिए आनंद न आया कि मैं जानती थी कि तुमने क्यों आना आरंभ किया है। तुम्हारे मां-बाप और तुम से जो बातें हुई थीं उनकी भनक भी मेरे कानों मे पड़ चुकी थी। मुझे मालूम था तुम आते हो बिना किसी तरह से प्रेम के मेरी हड्डियों, मांस और खून से एक पुतला उत्पन्न कराने, जिसकी तुम्हारे वंश का नाम के लिए, तुम्हारी संपत्ति, तुम्हारे वैभव के उत्तराधिकार के लिए जरूरत है;···उस कुटंब, उस घर जिसके लिए मेरे हृदय में स्नेह और अनुराग के अवशेष का अवशेष भी शेष नहीं था। उस समय ···उस तुम्हारे आने से मेरे हृदय में विरक्ति, महान् विरक्ति की उत्पत्ति हुई।

(पुरुष आश्चर्य से दरवाजे की तरह मुंह खोल स्त्री की तरफ देखता हैं।)

स्त्री : **(ठठाकर हंस)** आश्चर्य होता है ?···क्यों न हो ? पुरुष हो न पुरुष।···मुझे मरुभूमि बना, उस पर प्रणय की वर्षा बरसाये बिना, उससे तुम फसल चाहते थे ? तुम्हारी मशीन-सी मुद्रा मुझे उसका एक पुर्जा बना सकती थी, सच्ची स्त्री नहीं। जब यह पुर्जा न चला, मशीन जाम हो गयी, तब नये पुर्जे लाने की बात चली। तुम्हारा दूसरा विवाह ! ऐसे पतित, ऐसे अधम, ऐसे राक्षस के हाथ में एक और आत्मा, एक और हृदय देकर उसके विनाश का यह विकट आयोजन ! धनवानों में संतति की यह चाहना और उसके लिए यह हृदय को कंपा देने वाला बलिदान ! समाज में अनेक सुकुमार हृदयों के

सुशील युवक कंवारे रह जाते हैं, लेकिन धनवान की पत्नी रहते हुए भी उसकी और शादियां हो सकती है। क्यों नहीं ? संपत्ति के उत्तराधिकारी को उत्पन्न करने वाली स्त्री भी एक जीवित संपत्ति ही तो है। धन से वह खरीदी जा सकती है न ! रे पतित समाज, मानो जीव जड़ के लिए है जड़ जीव के लिए नहीं। मेरे सदृश नारी का बलिदान करने के बाद और किसी कोमलांगी अबला की आहुति की इस राक्षसी यज्ञ के लिए इस राक्षसी इच्छा ने मुझे कंपा दिया और इसी कारण···शायद इसी कारण उसी समय मुझे गर्भ रह गया।

(पुरुष कुछ शांति से कुर्सी से टिककर बैठता है।)

स्त्री : मेरी इस बात से शाँति मिली। क्यों नहीं ? समझते होगे इससे मुझे भी शांति मिली होगी, पर ठहरो, सुनो, पहले मेरे एकाएक हो जाने वाले आदर और प्रतिष्ठा का हाल, फिर मेरी भावनाओं का वृत्त सुनना **(कुछ रुककर)** बांझ सुंदर कूख वाली हो गयी। पत्थर कुसुम से भी अधिक कोमल हो गया। खुड़पगी के पैर लक्ष्मी के चरण बन गये। सास-ससुर के मन में मेरे आदर का ऐसा ज्वार उठा कि जिसमें भाटा था ही नहीं। हर दिन, हर घड़ी, हर मिनट और हर सेकिंड यह ज्वार उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। रोज डाक्टर और लेडी डाक्टर मुझे देखने आते। मेरी तंदरुस्ती ठीक रहे इसके लिए दुनिया के परदे पर ऐसी कौन-सी चीजें है जो न मंगायी जा सकें। यूरोप और अमेरिका को न जाने कितनी तरह की दवायें और कितने प्रकार के भोज्य पदार्थों का आर्डर गया; वे चीजें हिंदुस्तान में न मिल सकती थीं न; और मिलतीं भी तो पुरानी, वैसी फ्रेश नहीं जैसी सीधी विलायतों से आ सकती थीं। नित्य नवीन पकवान, नये-नये नमकीन, न जाने कितने स्वादिष्ट पदार्थ मेरे भोजन के लिए बनाये जाने लगे; सुबह कुछ, तो दोपहर को कोई तथा शाम को और ही। मेरे से शून्य तुम्हारे हृदय में भी मेरे प्रति अनुराग की शायद झांझ-सी बज उठी।

(पुरुष कुछ प्रसन्नता से स्त्री की ओर देखता है। वह कुछ बोलना भी चाहता है पर मुख से कोई शब्द नहीं निकलता और अंगुलियां कुर्सी के हत्थे पर चलने लगती है।)

स्त्री : (रूखी हंसी हंसकर) यह सुनकर प्रसन्नता होती है इसी प्रसन्नता के कारण अंगुलियां नाच उठी है; अंगुलियां क्यों न नाचें, कम-से-कम एक

बार मेरे लिए तुम्हारे हृदय मे अनुराग की उत्पति हुई, यह मेरे मुंह से सुनकर प्रसन्नता हो सकती है। (कुछ रुककर) स्त्री को संतान की कितनी चाह होती है, माता बनने का कितना चाव होता है, यह मैने सुना और पढ़ा था, लेकिन जानते हो सास, ससुर और तुम्हारा यह उत्साह देखकर मेरा क्या हाल हुआ ?

(पुरुष गम्भीरता से स्त्री की ओर देखता है।)

स्त्री : उसकी प्रतिक्रिया। अब तक तुमने, तुम्हारे मा-बाप ने मेरी सारी सद्भावनाओं को कुचलकर उनका सहार कर डाला था। यह धन, यह वैभव मेरे हृदय पर बोझ के रूप में रखे थे। तुम्हारे कुटुंब का गौरव, बंश की प्रतिष्ठा मुझे विडबना जान पड़ती थी। मुझसे इन सब के उत्तराधिकारी की उत्पत्ति हो यह मेरे आनंद तथा उत्साह का नहीं बल्कि क्लेश एव उन्माद का विषय था। मैं सबका नाश चाहती थी, रक्षा नही।

(पुरुष कांप उठता है।)

स्त्री : कांपते हो, कांपो, कांपो बराबर कापो, तुम्हारा कंपन देखे यह समाज और संसार। (कुछ रुककर) मुझ मृतक को जीवित संतान की साध ही न रह गयी थी। जैसे-जैसे वह मेरे पेट में बढने लगी, मुझे ऐसा लगने लगा मानो तुम्हारी मां ने मुझे जो पत्थर शब्द से सबोधित किया था, वह पत्थर मेरे पेट में बढ़ रहा है।

(पुरुष फिर खड़ा होकर टहलने लगता है। इस बार वह इस तरह की चाल से टहलता है मानो उसे अपना शरीर ही संभालना कठिन हो रहा है।)

स्त्री : (अत्यंत तीक्ष्ण स्वर में) बैठ जाओ !

(पुरुष पर उसके इस छोटे-से वाक्य का इतना असर पड़ता है कि वह सिटपिटा कर तत्काल बैठ जाता है।)

स्त्री : प्रसव का समय आया। आह! कितनी भीषण पीड़ा, और उस वक्त जब डाक्टरों ने कहा कि मेरे प्राण बचाना हो तो बच्चे को सिर तोड़कर निकालना होगा और बच्चे को बचाना हो तो पेट चीरने से मेरी जान जायेगी, तब···तब तुम सब कैसे फुटबाल से उछल पड़े। पहले तो यही चाहा कि दोनों किसी तरह बच जायें। धनवान किसी चीज को पकड़ने के बाद छोड़ना थोड़े ही चाहते हैं और छोड़ते है तो उससे बड़ी अन्य कोई वस्तु प्राप्त कर, या प्राप्त करने की अभिलाषा से। अंत में···अंत मे निर्णय हुआ—मेरा

पट चीरा जाये। अधमो ! पतितो ! बच्चे की इतनी नारकीय चाह ! संपत्ति के उत्तराधिकारी की यह घृणित लालसा ! मैंने पेट चिरवाने से इन्कार कर दिया। तब···तब···कुछ फुसफुस सलाह हुई। यह कहकर कि बच्चा सिर तोड़कर ही निकाला जायेगा मुझे धोखा देकर बेहोश किया गया। जब मुझे होश आया तो मालूम हुआ मेरा पेट चीरा गया है। डाक्टर, और डाक्टर तो पुरुष थे, वह लेडी डाक्टर भी, स्त्री होने पर भी, एक बच्चे के लिए, न जाने कितने रोज़ पैदा होते और मरते है, ऐसे बच्चे के लिए, एक पढ़ी-लिखी, सभ्य और सुसंस्कृत स्त्री के पेट चीरने के लिए खरीद ली गयी। (कुछ रुककर) इतना मैं जानती हूं कि जो खिलवाड़ एक स्त्री के भावों और शरीर से किया गया वह किसी पुरुष की आत्मा व देह से न किया जा सकता था। (कुछ रुककर) होश आने पर जो पहला स्वर मैंने सुना वह तुम्हारी मां का था। 'लड़की हुई है' उस स्वर में कैसी वेदना भरी थी और वह वेदना कैसी विडंबना थी ! 'लड़की हुई है' मानो भूकंप हो गया है ! आग बरसी है ! बिजली गिरी है ! समुद्र की छोल के सबब उसकी लहर ने इस घर के उत्तराधिकार का प्रलय कर दिया है। मेरा एकाएक पैदा हुआ सम्मान क्षणमात्र में धूल में मिल गया था। मेरी मां के भी मैं लड़की ही हुई थी मेरे और क्या हो सकता था। पत्थर, कंकर, लकड़ी, कोयला नहीं हुआ, यही ताज्जुब की बात थी ! लड़की इतनी तिरस्कृत वस्तु है, इतनी बुरी कि कोई उसकी तरफ आंख उठाकर ही न देखता था। पर···पर···मेरी हिफाजत हो रही थी। मैं बांझ न रह गयी थी न···शायद अब की बार लड़का जन दूं। मेरा खुद का कोई मूल्य नहीं। मैं लड़का जनने की मशीन हो जाऊं तो मेरा आदर हो सकता था ! इसीलिए मेरी हिफाजत हो रही है। पर···पर···मैं जा रही हूं, जा रही हूं। बुखार बढ़ रहा है।

(पुरुष घबड़ाकर खड़ा हो जाता है।)

स्त्री : नहीं, इतनी जल्दी नहीं, कुछ वक्त लगेगा और जल्दी भी चली गयी तो तुम्हारे नजदीक बैठे रहने के कारण भुतनी बनकर उसी समय तुम्हें दबोच न लूंगी। भुतनी हुई और तुम्हारे सिर पर ही चढ़ना चाहा तो भागने से भी न बचोगे। (डांटकर) बैठ जाओ !

(पुरुष हड़बड़ाकर बैठ जाता है। उसके मुंह का रहा-सहा रंग भी उड़ जाता है।)

स्त्री : जानते हो, इस वक्त मुझे सब से प्रिय कौन लगता है ? (**कुछ रुककर, पलने की ओर अंगुली से संकेत कर**) वह बच्ची, क्यों जानते हो ?

(**पुरुष उसकी ओर देखता है, पर इस प्रकार मानो बहुत दूर पर किसी को देख रहा है। उसकी बातें सुनता है, पर अब इस प्रकार मानो किसी बहुत दूर से आने वाले शब्द को सुन रहा है।**)

स्त्री : मुझे इस बच्ची पर इसलिए प्रेम है कि इस पर किसी का अनुराग नहीं; इसकी किसी को चाह नहीं। आज मातृ-भावनायें मेरे हृदय मे उत्पन्न हो रही हैं। इसे मैं अपना दूध पिला, अपने आंसुओं से इसे सींच इसे बलवान और पवित्र बनाना चाहती हू। (**कुछ रुककर**) पर ··पर मैं जानती हूं मैं इसके लिए न बचूंगी।···मुझे तुम्हे, तुम्हारे मां-बाप को, इस धन-वैभव को इस कुटुंब को, किसी को छोड़ने का दुख नहीं है। हा, इस बच्ची को छोड़ने का अवश्य दुख है। तुम सबने मिलकर न जाने कितने पहले मेरे हृदय, मेरी आत्मा का तो खून कर ही दिया था, बच्चे की लालच मे आज मेरे पेट को चिरवा मेरे शरीर का भी खून किया है। (**रुककर**) जाते-जाते भगवान से अनुरोध करती हूं हिंदू जाति में पैदा न होऊं, होऊ भी तो संपन्न घर में नहीं, सपन्न घर में होऊ तो धनवान कुटुंब में ब्याही न जाऊं, और यह सब भी होना हो तो पढ़ी-लिखी, सुसभ्य और सुसंस्कृत न होकर बच्चे पैदा करने की मशीन-भर होऊ; अधिकांश श्रीमानों के घर की स्त्रियों की यही हालत देखी, जो मेरी है; और अगर पढ़ी-लिखी, सभ्य और सुसंस्कृत होऊं तो धार्मिक, सामाजिक और कौटुंबिक बंधनों को न मानने वाली। जैसे तुम धनिक पुरुष हम स्त्रियो का खून कर उनके शवो पर तांडव करते हो वैसा ही मैं तुम्हारे शरीरों का रक्त बहा उन पर नाच करूं, प्रलय नृत्य ? (**हांफते हुए कुछ रुककर**) गरीब शायद सुख से रहते हैं। औरतों को मजदूरियनों के सदृश घर का काम अवश्य करना पड़ता है, पर पुरुषों को भी इस तरह से गुलछर्रे उड़ाने को तो नहीं मिलते। उनमें पति-पत्नी का प्रेम सास-ससुर का बहू पर प्रेम, वहां शायद यह तांड़व जो तुम श्रीमान् करते रहे हो, नहीं होता। उत्तराधिकार की यह चिंता भी नही रहती अगर मेरे सदृश किसी को प्रसव-पीड़ा होती तो अस्पताल में उसके बच्चे का सिर तोड़ा जाता, महल में मेरे सदृश पेट न चिरता। (**कुछ रुककर**) साथ ही भगवान से एक अनुरोध करती हूं। मेरी जगह एक तो किसी की भीषण आहुति होवे ही नहीं,

और अगर होना ही हो तो मेरे स्थान पर जो आवे वह कुसुम या कली न हो; एक सूखी-साखी डाली, ऐसी डाली हो जिसमें विद्या की सुरभि न हो, संस्कार की कोमलता नहीं। यह तो श्मशान है, यहां तो मुर्दा चाहिए, (**फिर कुछ रुककर क्षीण स्वर में**) जीता-जागता मनुष्य नहीं। हर तस्वीर में लाइट और शेड दोनों रहते है, पर मेरे जीवन की तस्वीर मे लाइट का नामोनिशान नहीं। फिर उसके सारे रंगों को पानी की झड़ी के सदृश निकलते हुए मेरे आंसुओं ने बहा दिया है। मैं न कुछ देख सकी, न सुन सकी, न कह सकी। मेरी आंखें, कान और जीभ सदा ही ठंडे रहे, बर्फ के सदृश ठंडे, नहीं, नहीं, मुर्दे की तरह निश्चेष्ट। मैने जीवन के घंटे, दिन, महीने, नहीं वर्ष···हा, वर्ष के वर्ष बेकाम पन्नों के सदृश फाड़-फाड़ कर फेंके हैं; और मेरा ऐसा जीवन तुम्हारे उपहास की वस्तु रहा है। किसी का मर्मांतक दुख यदि दूसरे के उपहास की वस्तु हो जाये, तब···तब तो···

(गुलदस्ते से एक फूल गिरता है पुरुष उसे उठाकर वापस गुलदस्ते में लगाता है।)

स्त्री : (अत्यंत रूखी मुस्कुराहट से क्षीण स्वर में) गिरा हुआ फूल चाहे तुम गुलदस्ते में वापस रख सको पर यह···यह गिरा हुआ जीवन···

(स्त्री एकाएक इस प्रकार चुप हो जाती है, मानो स्वयं ही अपनी आवाज से डर गयी हो। कुछ सैकिंड निस्तब्धता।)

स्त्री : (एकाएक तेज स्वर में) देखो···देखो···शायद मैं जा रही हूं। सुनो···सुनो जाते-जाते शाप···हां, शाप देती हूं। तुम्हारा वंश निर्वंश हो जाये। कोई जीव इस जड़ मे गड़ने के लिए उत्पन्न न हो। यह सोना, चांदी ये हीरे, मोती, यह निर्जीव वैभव, यह सारा हृदय, भावनाओ और आत्मा से हीन आयोजन,···(**अत्यंत क्षीण स्वर में**) यदि सब कुछ···सब कुछ होते हुए भी मैं धर्म के अनुसार सती···सती रही हूं, तो···मेरे···शाप···शा···प··· से···भस्म···भस्म···भ···

(स्त्री आंखें बंद कर लेती है। उसी वक्त पलने में से रोने की आवाज आती है। पुरुष जिसके मुख पर हवाइयां उड़ रही हैं, घबड़ाकर जल्दी से उठ, हर चीज को पकड़, सहारा लेते हुए, जिससे कहीं गिर न पड़े, दरवाजा खोल बाहर जाने लगता है।)

(यवनिका)

(उत्तरार्द्ध)

चरित्र

एक पत्नी

एक पति

स्थान

एक गांव

(स्थान : पत्नी का सूतिका-गृह)

समय : सध्या

(सूतिका-गृह देहाती मकान का एक कोठा है, किंतु साफ-सुथरा। दीवालें छुई मिट्टी से पुती हुई स्वच्छ है। उन में कुछ छोटे-छोटे दरवाजे और छोटी-छोटी खिड़कियां हैं। सबकी चौखटे और किवाड़ देहाती ढंग के बने हुए है, परंतु उन पर तेल-पानी पोतकर उन्हे स्वच्छ रखा गया है। सब दरवाजे और खिडकियां बद है। छत पर बोरे सी कर ठीक ढग से उनकी चांदनी बांधी गयी है, जिसके सब तरफ लाल तूस की झालर है। जमीन गोबर से लिपी हुई है। जमीन पर और मूज की रस्सी से बिनी हुई साधारण पायों की एक साफ-सुथरी खाट है, जिस पर एक स्वच्छ बिस्तर बिछा हुआ है। इस खाट के पास लकड़ी के एक बड़े से पटे पर सूतिका संबंधी कुछ सामान रखा हुआ है। लकड़ी के पटे के पास ही एक मिट्टी की अंगीठी में आग के कुछ अंगारे जल रहे है। खाट के नजदीक ही जमीन पर एक लाल रंग की छपी हुई छोटी-सी जाजम बिछी है, परतु खाट और जाजम के बीच मे एक हल्दी की मेड़ बनी हुई है, जिससे जाजम पर बैठने वाले को सूतिका-गृह की छून न लग जाये। खाट पर एक स्त्री लेटी हुई है। वह करवट लिये हुए है, जिससे उसकी दृष्टि जाजम की ओर है। गले तक उसका शरीर एक साफ-सुथरी लाल रंग की रजाई से ढका है। उसका मुख तथा उसकी दोनो भुजाएं रजाई के बाहर हैं। उसकी पीठ की तरफ एक दूसरी छोट रजाई से ढंका हुआ उसका नवजात शिशु सोया है, लेकिन उसका सारा शरीर और मुख रजाई से ढके रहने के कारण वह दिखायी नहीं देता। स्त्री की उम्र करीब 30 वर्ष की है। उसका रंग गेहुंआ है और वह साधारण सुंदर है। जाजम पर एक पुरुष बैठा है। पुरुष की अवस्था लगभग 32-33, साल की है। वह भी गेहुंए रंग का, मामूली कद और शरीर का, साधारणतया सुदर व्यक्ति है। वह सफेद रंग की मिरजई और धोती पहने है तथा गले मे लाल चौखाने का एक गमछा डाले हैं सारे वस्त्र स्वच्छ हैं। एक पीतल की दीवट मे जलती हुई कुछ बत्तियों से दृश्य प्रकाशित

है, विशेषकर स्त्री और पुरुष के मुख। स्त्री की मुख-मुद्रा से अत्यधिक प्रेम दृष्टिगोचर होता है; साथ ही जान पड़ता है कि अश्रुभरे नेत्रों के खुले रहने पर भी मानो वह स्वप्न देख रही हो। वह पुरुष की तरफ दृष्टि लगाये कुछ कह रही है। उसकी आवाज क्षीण होने पर भी उसमें भारीपन है। यह भारीपन उमड़ते हुए आंसुओं को रोकने का प्रयत्न करने के कारण आ गया है। वह आंसुओं को निगलने का निरंतर प्रयत्न कर रही है। इस प्रयत्न में आंखें, मुख और गले के बीच में एक विचित्र प्रकार का तांता-सा बंध गया है। वह धीरे-धीरे, पर हर शब्द पर जोर देकर इस प्रकार बोल रही है, जिससे बोल सके, बोलने की ताकत और साहस कहीं दोनों ही रास्ता न ले लें। पुरुष के मुख पर शोक और कातरता का साम्राज्य है। वह कुछ न बोलकर अत्यधिक भावुक दृष्टि से स्त्री की ओर देख रहा है। उसकी दृष्टि से भास होता है मानो उसका हृदय खिचकर आखों में आ गया है।)

स्त्री : हां, आज अंतिम···अंतिम बार मेरी बातें सुन लो, नाथ! उसकी बोली जिसे तुम प्राणों से भी अधिक प्यारी कहते थे; जिसका शरीर और मुख साधारण से साधारण होने पर भी तुम्हें ससार में सबसे ज्यादा सुंदर दीखता था; जिसका स्वर कोई विशेषता न होने पर भी तुम्हें जगत के सारे शब्दों से अधिक मधुर जान पड़ता था।

(पुरुष की आंखों में आंसू छलछला आते हैं। वह अपने नेत्र पोंछता है)

स्त्री : यह क्या···यह क्या करते हो, प्राणपति, तुम इस तरह रंजीदा होगे तब तो मेरी बोली समय के पहले ही रुक जायेगी। एक···एक बार और तुम से सब कुछ कह लेने की साध भी मन-की-मन में ही रह जायेगी। प्रेमी ही वे प्राणी है, जो एक ही किस्से को, एक ही घटना को, बारंबार बिना उसकी नवीनता नष्ट किये कह सकते हैं। फिर ऐसे···ऐसे अवसर पर तो··· **(चुप हो कातर दृष्टि से पुरुष की तरफ देखते हुए कुछ देर बाद)** क्या मुझे मेरी आखिरी इच्छा न पूरी करने दोगे ?

(पुरुष गला साफ कर कुछ तनकर बैठ जाता है।)

स्त्री : हां, यों···यों, नाथ। इस समय वीर बन जाओ। सब सुन लो। तुमने सदा ही मेरी सारी इच्छाओं को पूर्ण किया है। इस अंतिम अभिलाषा को भी पूर्ण कर लेने दो। **(कुछ रुककर गला साफ करते हुए)** प्राणनाथ, आज···आज बारह वर्षों का पूरा युग, वह सारा समय, जो तुम्हारी शरण मे

आने के बाद बीता, मेरे सामने सिनेमा के दृश्यों के सदृश घूम रहा है। बारह वर्ष पहले इसी बसंत ऋतु में जब पहाड़, वन, उपवन, बगीचे और खेत आदि नये-नये पत्तों, नवीन-नवीन फूलों, नवजात फलों से लहरा रहे थे, तब मेरी मंगनी और उसके कुछ दिन बाद ही मेरा विवाह आप से हुआ। आस-पास के गावों के किसानों में दूर-दूर तक तुम्हारा घर प्रसिद्ध था। कृषक युवकों में जितने तुम सुंदर और सुशिक्षित थे, कोई नहीं। मैं भी न जाने क्यों सुंदर मानी जाती थी।

(पुरुष रूखी मुस्कुराहट के साथ सिर हिलाता है।)

स्त्री : (रूखी मुस्कुराहट से) तुम्हारी दृष्टि में तो मैंने अभी कहा ही, दुनिया में सबसे ज्यादा सुंदरी मैं हू ही। **(कुछ रुककर)** मां ने बड़े दुलार से पालकर हृदय की कली को किसी ओर से भी मुरझाने न दिया था, और बाप ने चौथी तक पाठशाला में पढवाया हो, इतना ही नहीं, वे पंडित थे, दूर-दूर तक उनकी-सी संस्कृत और भाषा कोई न जानता था, अतः उन्होंने स्वयं घर पर मुझे संस्कृत और भाषा के साहित्य का साधारण ज्ञान भी करा दिया था। संगीत की भी थोड़ी-बहुत शिक्षा दी थी।

(पुरुष गमछे से सिर और गले का पसीना पोंछता तथा गमछे के एक छोर से कान साफ करता है।)

स्त्री : (उसी तरह की रूखी मुस्कुराहट से) अपने कानों को तो छोड़ दो। मैंने कहा कि मेरा स्वर ही तुम्हें संसार के समस्त स्वरों से अधिक सुरीला जान पड़ता है। **(कुछ रुककर)** कैसी-कैसी अभिलाषाओं से मां-बाप ने मुझे तुम्हें सौंपा था। कन्यादान के समय स्वयं पंडित होने के कारण पिता ने किस शुद्ध और संगीतमय उच्चारण से दान का संकल्प बोला था। हम दोनों के एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों की किस दृढ़ता के साथ प्रतिज्ञायें करायी थीं। **(कुछ रुककर)** नाथ, कह नहीं सकती मैंने अग्नि के सम्मुख की हुई उन प्रतिज्ञाओं का कहां तक पालन किया। हां, तुमने···तुमने उनका अवश्य अक्षरशः पालन किया है।

(पुरुष दाहिने हाथ के नाखून बाईं हथेली पर घिसता है और एक विचित्र प्रकार की दृष्टि से स्त्री की ओर देखता है।)

स्त्री : (उसी प्रकार मुस्कुराकर) तुम्हें मुझ में कोई दोष कहां दीखता है? भगवान ही निर्दोष है, जब मैं यह कहती हूं, तब तुम हमेशा जो उत्तर देते हो, वह मैं कभी भूल सकती हूं? तुम कहते हो 'एक और व्यक्ति निर्दोष है, पहले

कभी-कभी पूछ भी लेती थी—'कौन' ? और उसका उत्तर मिलता था 'तुम'। इसी कारण अब बहुत दिन से पूछना ही छोड़ दिया। (कुछ रुक) हृदयेश्वर, उस···उस संकल्प के समय, उन···उन प्रतिज्ञाओं के वक्त मेरी सहेलियों ने जो गीत गाया था वह···वह न जाने कितने · कितने बार कानों में गूंजा है, और आज···आज तो इस तरह गूज रहा है, जैसा पहले कभी गूंजा ही था। (फिर कुछ रुककर) मैंने···मैने तुम्हें उस समय पहले-पहल देखा था, घूंघट के भीतर से, और इतने पर भी दृष्टि को कोई देख न ले, इसलिए कनखियों से···बड़ी जल्दी-जल्दी तुम्हें किस तरह देखा था ? तुम्हारी अस्पष्ट और धुंधली झांकी से ही मेरा रोम-रोम किस प्रकार खडा हो गया था, हृदय में कैसी···कैसी गुदगुदी-सी मच गयी थी ? वह···वह·· घटना मेरे जीवन की एक निधि···अटूट निधि रही है। (फिर कुछ रुककर) बिदा के समय मा, बाप अपने पैतृक घर और वहा के वायु-मंडल को छोडने मे कष्ट अवश्य हुआ था, नेत्रो मे आंसू भी बहुत बहाये थे, किंतु चलते वक्त बहली में मेरे टूटते हृदय के लिए एक अपूर्व अवलब के सदृश दाहिनी ओर तुम जो आ बैठे।··· जैसे-जैसे तुम्हारा गाव, तुम्हारा घर, नजदीक आने लगा, मेरे हृदय में एक नयी स्फूर्ति, एक नये उल्लास की लहर पर लहर उठने लगी। जिस गाव में, जिस घर मे तुम पैदा हुए हो, पाल-पोस कर बड़े किये गये हो, शिक्षा पाये हो, उसके देखने के लिए चित्त लालायित हो उठा। ससुरजी के दर्शन मैं कर चुकी थी। उन्हें देखकर मर्यादायुक्त एक पूज्य भावना से मन का एक-एक कोना भर गया था। अब सास के दरश के लिए हृदय उत्कंठित हो चला। (कुछ रुककर) बार-बार इच्छा होती तुमसे पूछू कि अब तुम्हारा गाव कितनी दूर है, पर पहले कभी तुम से बोली तो थी नहीं, अत: जबान ऐंठ कर रह जाती।···जब बहली एक गांव की तरफ मुड़कर धीमी चाल से चलने लगी तब जान पड़ा कि तुम्हारा गांव आ गया। उसी गाव में तुमने जन्म लिया है, वडे हुए हो, पढ़े हो, इस भावना ने हृदय को व्याप्त कर लिया। उस गाव की हर चीज मे न जाने कितनी सुदरता और पवित्रता दिख पडने लगी। उसकी रज के परमाणु और वृक्षों की पत्तियो मे भी सौंदर्य और विशुद्धता झलकने लगी। तुम्हारे घर के पास आकर जब बहली रुकी, और स्त्रियों ने एक मधुर गान के द्वारा जब मेरा स्वागत किया, तब उस गान की कैसी प्रतिध्वनि मेरे हृदय में हुई। सास ने जब मेरी आरती और मझ पर मे पानी उतारा और मैंने उनके

पैर छुए, तथा उन्होंने मुझे हृदय से लगाया…उस…उस समय, नाथ मुझे जिस सुख, जिस आनंद का अनुभव हुआ था वह क्या कभी मैं भूल सकती हूं ? …ससुरजी के दर्शन के वक्त मर्यादायुक्त पूज्य भावनाओं का हृदय में प्रादुर्भाव हुआ था। उस समय जिस भावना का उदय हुआ वह पूज्य तो थी लेकिन उसमें कोई मर्यादा नहीं थी। जिस वक्षस्थल से सास ने मुझे लगाया था सास का वह वक्षस्थल सागर के सदृश आकाश के समान सीमा-रहित जान पड़ा। (कुछ रुककर) और…और उसके बाद उसी दिन को वह सुहागरात' 'वह सुहाग'

(पुरुष के नेत्रों में फिर आंसू छलछला आते हैं।)

स्त्री . नहीं, नहीं'' नहीं, नहीं, एक आंसू भी तुम्हारी आंख से टपक गया तो मेरी जबान रुक जायेगी, मेरी आखरी…आखरी हवस पूरी न हो सकेगी। **(कुछ रुककर कातर दृष्टि से पुरुष की तरफदेख ते हुए)** अच्छा जाने दो, जाने दो सुहागरात की बात न कहूंगी, वह तुम जानते हो, वह मूक सुख की तरह हृदय में रख आगे बढ़ती हूं। **(फिर रुककर)** जो अभिलाषायें लेकर आयी थी, वे एक-एक पूरी हुई, प्राणेश, इतना…इतना ही नहीं, जो सोची भी न थी वे नयी-नयी उमगें हृदय में उठने और पूरी होने लगीं मैं पूजनीय सास की आंख की पुतली हो गयी और पूजनीय ससुरजी की सर्वस्व। और तुम्हारी · तुम्हारी· तुम्हारी तो न जाने क्या-क्या…

(पुरुष हाथ पर हाथ रख एक लंबी सांस लेता है।)

स्त्री : यह दीर्घ निश्वास…यह सास इस' 'इस समय मेरी सास निकाल देगी।

(पुरुष तनकर बैठ जाता है।)

स्त्री · हां, यों…यों, इस समय सास, इस वक्त हिम्मत रखो, हृदय-निधि। **(कुछ रुककर)** सास बूढ़ी हो चली थीं, फिर भी मुझे घर का काम न करने देतीं। कितनी मुश्किल से मैने उनके हाथ से घर के कामों को छीना। जब… जब मै कोई काम करती, वह कहतीं --'थक जायेगी बहू थक जायेगी' और उनका वह कोमल कथन मुझ में काम करने का नया उत्साह भर देता। जब ससुरजी आते और मुझे कोई काम करते देख लेते तो बोल उठते --'इसके खाने-खेलने के दिन हैं, काम के नहीं।' तब उन वाक्यों से मुझ पर मानो नये' 'एक नये जीवन की वर्षा हो जाती। और तुम…तुम्हारी तो सदा मेरे पास ही दौड़ने की इच्छा रहती, रात को ही नहीं, दिन दुपहरी मे भी। 'तुम युवक

हो गये थे, बालक नहीं रहे थे, पर बच्चों की-सी सीटी बजाया करते, सास की दृष्टि बचा आंख का इशारा करते दरवाजे और खिडकियां खोलकर, उनकी दरारो में से देख-देखकर, उन्हें थप-थपाकर अपने कोठे में मुझे बार-बार बुलाने को न जाने क्या-क्या करते। कई दफा किसी तरह मै आती और जब दो-चार बाते कर जल्दी जाने लगती तब मेरी साडी का छोर पकड़ किस दीनता से तुम मेरी तरफ देखते।···तुम्हारी वह दृष्टि···वह अनुपम दृष्टि···

(पुरुष सिर घुमा दूसरी ओर देखने लगता है।)

स्त्री : (कातरता से) इस तरफ देखो, प्राणेश, इस ओर।

(पुरुष झटके से सिर हिला फिर स्त्री की ओर देखने लगता, तथा और तनकर बैठ जाता है।)

स्त्री मैने ही कह-कह कर तुमसे घर का काम कराना और ससुरजी को आराम दिलाना आरंभ किया। तुम्हारे और मेरे इन बढते हुए कामो के सबब हमारा वियोग-काल भी बढ़ता जाता, पर फल यह होता कि इस वियोग के रात को जब हम मिलते तब वह मिलन ! और जब वह चांदनी रातों में होता तब···तब तो क्या पूछना था। ज्योत्स्ना का आनंद पहले तो हम अपने छोटे से कोठे मे ही लेते, लज्जा हमे उससे बाहर कब निकलने देती। हम खिडकी खोल देते और चंद्रिका की एक-एक किरण हमारे हृदयो मे नवीन-नवीन उमग की एक-एक लहर उठाकर हमारे कोठे में धस पडती। उन किरणों के नाच में हमारे हृदयों में उल्लास की लहरों की थिरक ! (कुछ रुककर) कुछ दिन बाद हम बाहर भी घूमने लगे। उस समय की कभी-कभी की तुम्हारी तान और मुझ पर जोर डालकर गाने का अनुरोध कर मुझसे गवाना। मेरे गान में तुम्हारे मन-मयूर का वह नृत्य ! चादनी तो हर महीने आती, पर झूले तो साल भर मे एक ही महीने के लिए और होली तो वर्ष भर मे एक ही दिन को। गांव के ये त्योहार ! सावन की कजली और होली की धमार ! और उस सारे सुख के आराध्य देव तुम··

(पुरुष एकाएक खड़ा होकर घूमने लगता है। उसकी चाल से मालूम होता है मानों उसे अपना शरीर ही भार-स्वरूप हो गया है। स्त्री चुपचाप उसकी ओर देखने लगती है। उसकी मुद्रा से जान पड़ता है मानो कुछ कहने के लिए वह शब्दों को ढूंढ़ रही है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।)

स्त्री : मै जानती हू, प्राणनाथ, मै तुम्हे आज बहुत कष्ट दे रही हू, परंतु···

परंतु आज···आज तो यह तुम्हें सहना ही होगा **(कुछ रुककर)** बैठो प्राणेश, बैठो, हृदय-धन।

(पुरुष फिर चुपचाप बैठ जाता है और एक हाथ से दूसरे हाथ की अगुलियां मरोड़ने लगता है।)

स्त्री : बिहार के साथ हमें आहार और वस्त्रों की भी कमी न रही। गायो का दूध, भैसों का दही, छाछ, मक्खन और घी। बाजरे, ज्वार, जौ और गेहूं की रोटिया, राहर, मूंग और उड़द की दाल, हमारे कछवाहो की हरी-हरी तथा ताजी-ताजी साग-भाजी। पूस और माघ के चने तथा गेहूं के एव कुंआर और कार्तिक के ज्वार तथा मके के होले। इस खाने के साथ ही मोटे पर सादे तथा स्वच्छ वस्त्र। उन वस्त्रों मे भी कभी-कभी अगणित रगों की रंगरलिया।। सावन की चुनरी और वसंत की वसंती धोती, दिवाली पर लाल साडी में सास द्वारा लगाये गये पतले-से गोटे की सुनहरी कांतिमय लीक। क्या कोई जमीदार या लखपति अथवा करोडपति साहूकार हमारे सुख-सा सुख भोगेगा। **(कुछ रुककर)** दुख हमे न हुए हो यह नहीं। सुख और दुख तो चक्र के सदृश घूमते ही रहते है, पर दुख-चक्र मे भी तो हमारे प्रेम की धुरी हमे सभाले रहती थी। जब सास गयी तब मुझे जान पडा सारे घर मे अधकार हो गया। जब ससुरजी गये तब भान हुआ सारा संसार अंधकार से ढक गया। फसलें भी बिगडी, कभी-कभी आर्थिक सकट भी आये, पर मेरे लिए तुम और तुम्हारे लिए ··तुम्हारे लिए··· **(वह रुक जाती है)**

(पुरुष के अब आंसू नहीं रुकते, पर वह जल्दी से उन्हें पोंछकर स्वस्थ होने की कोशिश करता है और प्रयत्न में अपने नीचे के होंठ को दांतों से चबाता है कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

स्त्री : **(धीरे-धीरे)** सास के बाद मुझे और ससुरजी के पश्चात तुम्हें घर के काम बढ़ गये। दिन मे हमे फुरसत ही न मिलती, पर रात तो हमारी थी। और दिन को दिन को भी··· उषाकाल मे ही तुम खेत पर अवश्य चले जाते, पर मै तुम्हे ही याद कर सब कुछ करती। दुहनी के वक्त गायों और भैसो के थन में से निकली हुई दूध की एक-एक धारा मे मुझे तुम्हारे प्रेम की धारा ही तो दीखती। उसके बर्तन मे गिरते हुए शब्द मे मुझे तुम्हारे प्रणय का ही स्वर तो सुनायी देता। दही भाने के समय मठे से निकलते हुए नवनीत में तुम्हारे नेह ही की स्निग्धता तो दृष्टिगोचर होती। आटे पीसने और दाल

दलने के वक्त चक्की की घनघोर आवाज में, मुझे मेघ-गर्जना के समय तुम्हारा प्रेमालिगन याद आता। रोटी बनाते समय उसके फूलते वक्त मुझे वसंत के कुसुम-संसार का विकसन और उस काल का तुम्हारे चुबंन का स्मरण आता। बर्तन मांजने में भी मुझे सुख होता, क्योंकि मजे और चमकते हुए उन बर्तनों मे तुम्हारे लिए ही तो भोजन बनेगा, यह मैं कहां भूलती। और इन बर्तनों में भोजन बना, थाली मे सजा, दूध और मक्खन के साथ उसे लेकर जब मैं खेत पर उस सामग्री को तुम्हे खिलाने लाती, तब···तब तुम्हें उसे खाते देख, तुम्हारी उस समय की प्रेम-मुद्रा के दर्शन कर, मुझे मालूम होता कि मेरा सारा जन्म सफल हो गया है। **(कुछ रुककर)** सध्या को जल्दी-जल्दी तुम्हारा कोठा झाड़ती। झाडू का झरम्भर तक मेरे हृदय में प्रेम की झंकार उत्पन्न करता। खेतों से आये हुए मिट्टी लगे तुम्हारे पैरों में धोने के बाद फिर से कहीं धूल का स्पर्श न हो जाये यह विचार उस कोठे की अत्यधिक स्वच्छता का कारण था। और रात···रात को जब अपने थके हाथों से भी तुम्हारे थके चरण चापती तब मेरे हाथ और थकना तो दूर रहा, दिन भर की थकान न जाने कहा चली जाती। वह···वह···

(पुरुष फिर एकाएक खड़े होकर किसी नशीली चीज पिये हुए व्यक्ति के सदृश जल्दी-जल्दी घूमने लगता है। वह बार-बार अपनी आंखे पोछता है। पुरुष के मुख का रंग हर पल परिवर्तित होने लगता है, कभी उस पर प्रकाश आता है और कभी अंधकार।)

स्त्री : **(धीरे स्वर में)** अब बहुत देर···बहुत देर कष्ट न दूगी, प्राणेश ! बुखार भी बढ़ रहा है।

(पुरुष घबडाकर खड़े हो स्त्री की तरफ देखता है।)

स्त्री : **(क्षीण स्वर में)** बैठो, प्राण प्यारे, थोड़ी···थोड़ी-सी बातें और सुन लो।

(पुरुष बैठकर अपने दोनों हाथों से बलपूर्वक ऐसे जोर से हृदय को दबाता है मानो वह शरीर से निकलकर भागने वाला है।)

स्त्री : हम दोनों को कोई गुड्डा-गुड्डी कहता था और कोई बच्चा-बच्ची। क्यो न हो ?···जिस अवस्था मे बच्चो की सरलता, उनका भोलापन, उनकी शुद्धता चली जाती है, प्रेम के कारण हमारी अवस्था गयी ही नहीं। और जहां तक हम दोनों का संबंध है वहा तक तो हमें अपना साथ सदा ही सुहागरात

के प्रथम मिलन के संग-सा जान पड़ा। हम दोनों एक-दूसरे के लिए दूल्हा और नवोढ़ा दुल्हन-से ही रहे। (धीरे-धीरे) कहने को तो न जाने अभी कितना है, बारह वर्षों में कभी हमारी बातें खत्म हुई ? यह कहानी शायद समाप्त नहीं हो सकती। पर···पर समय···समय कदाचित् अधिक नहीं। (कुछ रुककर) एक दुख अवश्य रह गया, नाथ, सास-ससुर को मैं एक संतोष न दे सकी। उनकी नाती देखने की बड़ी इच्छा थी। उसकी किलकारियों को सुन उससे अपने मस्तक को निमग्न करने के लिए, तथा उसके धूल-धूसरित पैरों से अपने कपड़े मैले कर अपनी गोद भरने के लिए वे बड़े लालायित थे। मेरी भी माता बनने की इच्छा दिनोंदिन अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। सास ने कई मनोतियां मानी थी, कई जंत्र मेरे शरीर पर बांधे थे। ससुरजी ने कई अनुष्ठान कराये थे। पर जब उन्होंने देखा कि उनकी यह इच्छा पूर्ण न कर सकने के कारण मुझे दुख रहता है, तब उन्होंने उस सबंध मे बात करना ही छोड़ दिया। इतना ही नहीं, सास ने उल्टा न जाने क्या-क्या कहकर मुझे बहलाना शुरू किया···उनकी वह इच्छा अब पूरी हुई। वे पुण्यात्मा थे। स्वर्ग में होंगे। वहा उन्हे आनंद पहुंचा होगा। (कुछ रुककर) मुझे ··तुम्हारे इस अंश को उदर में बढ़ाते हुए जो सुख हुआ, मुझे इस बढते भार से जो आनदं मिला, उसे मैं शब्दों में क्या कहूं। माता होने की भावनाओं ने भी मुझे जो मोद दिया, मेरे मन में जो उत्साह बढ़ाया, उसका वर्णन भी मैं नहीं कर सकती। ···मेरे पेट में इसने जब फरकना आरंभ किया तब मुझे जान पड़ने लगा मानो विश्व की सारी चेतनता मुझ में फरक रही है। इसने जब घूमना शुरू किया तब मुझे भास होने लगा मानो त्रिलोकी मेरे उदर में घूम रही है। प्रसव-पीड़ाओं मे मुझे एक तरफ अगर दर्द का अनुभव हुआ, तो दूसरी ओर मेरे हृदय में हर्ष की हिलोरें उठीं। इसका मुख देख, और···और वह···वह तुम···तुमसा देख···

(उसके आंसू बहने लगते हैं।)

(पुरुष के भी अब चौधारे आंसू बहते हैं। वह दोनों हाथों से जोर से अपना बाहिना घुटना पकड़े हुए है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।)

स्त्री : (अत्यंत क्षीण स्वर में) तुमने मेरे इलाज में क्या कसर रक्खी, प्राणनाथ, ? डाक्टर, वैद्य, हकीम सबसे घर भर दिया। पर·· पर जिसका जाने का समय आ जाता है, उसे कौन रोक सकता है ?···सभी को जाना है, प्राणपति।· कोई पककर जाता है, कोई कच्चा ही, कोई जल्दी जाता है, कोई

देर से। मुझे तो हर्ष है कि मैं युवावस्था में जा रही हूं। (**विचारते हुए**) युवावस्था की मृत्यु इसलिए अच्छी होती है कि हृदय के पथराने और जबान तथा दृष्टि के धोखेबाज होने के पहले ही व्यक्ति इस बुरी दुनिया से उठ जाता है। मुझे जाने का दुख नहीं, तुम्हे छोड़ने का दुख है। मैं तो सुहागिन जा रही हूं।···जाते-जाते भगवान् से प्रार्थना करती हूं कि मुझे जन्म-जन्म तुम-सा पति, तुम्हारे मां-बाप से ही सास-ससुर तथा तुम्हारे घर-सा ही घर मिले। और···और, हृदय-निधि, तुमसे·· तुमसे एक वर···एक वरदान मांगती हूं। वह···वह तुमने न · न दिया तो उस···उस सुख से न जा सकूंगी, जिससे तुम्हारे साथ रही हूं।

(**पुरुष रोते-रोते उत्सुकता से स्त्री की ओर देखता है और अपने सिर को दोनों हाथों पर रख लेता है।**)

स्त्री : वर दो, नाथ, घर सूना न रक्खोगे; अपना जीवन अकेला न चलाओगे, इस शिशु को माता-विहीन न रहने दोगे।···स्वर्ग जा रही हूं, हृदयेश, स्वर्ग, नरक क्यो जाऊँगी ? स्वर्ग से तुम्हारा विवाह देखूंगी। उसे देखकर मुझे और मेरे सास-ससुर को जो सुख होगा उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते। 32-35 वर्ष की अवस्था में संन्यास तो नही लिया जा सकता, अरे शास्त्र तो 75 वर्ष की उम्र में वाणप्रस्थ होने की आज्ञा देते है। ··(**अत्यंत क्षीण स्वर से मानो वह अपने-आप से बात कर रही है। रुककर**) तुम अकेले··· अकेले रहे तो मुझे स्वर्ग ··स्वर्ग मे भी तुम्हारी···चिंता·· लगी रहेगी···कौन तुम्हें···खिलायेगा···पिलायेगा कौन···खेत पर·· तुम्हारी···रोटी ले जायेगा ? कौन रात को·· तुम्हारे···पैर···चापेगा ? (**आंखें खुली रखने का प्रयत्न करते हुए, जो बंद हो रही हैं**) कौन···कौन इ···स·· बच्चे···क···का···प ···पा ··ल··न··क··रे··वर··व···

(**स्त्री की आंखें बंद हो जाती हैं सांस एकदम बढ़कर रुकने-सी लगती है। पुरुष जल्दी से उठ उस हल्दी की मेड़ को उलांघ, स्त्री की खाट के निकट पहुंच उसे ध्यान से देख फूट-फूटकर रो पड़ता है और उसके शरीर लिपट जाता है। उसी समय उसके रुदन में उसका साथ देता है उसका नवजात शिशु।**)

(**यवनिका**)

(**समाप्त**)

चरित्र

वसंत
मधु
सुरो
चिन्ती
मंगला

[स्थान : नयी दिल्ली]

(परदा वसंत के ड्राइंग-रूम में उठता है। ड्राइंग-रूम न बहुत बड़ा है, न छोटा। बहुत सजा हुआ भी नहीं है। वसंत अढ़ाई सौ मासिक पाता है। पर नयी दिल्ली के अढ़ाई सौ···लेकिन वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए टेलीफोन लगा है, इसलिए कमरा भी सजा है—बायीं दीवार के साथ एक मेज़ लगी है, उस पर कागज़-पत्रों के अतिरिक्त टेलीफोन रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाज़ा है, जो अंदर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अंगीठी है किंतु आग शायद इसमे नहीं जलती, क्योंकि अंगीठी का कपड़ा अत्यन्त सुंदर है; उस पर सजावट की चीज़ें भी रखी हुई हैं—वैसी ही जैसी मध्यमवर्गीय घरों में होती हैं—लेकिन वे बिखरी नहीं हैं और करीने से लगी हुई है। दो पीतल के गुलदान दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अंगीठी के दोनों कोनों पर रखे हुए हैं। इसी अंगीठी के कपड़े की लंबी झालर को छूता हुआ एक रेडियो सैट, नीचे एक छोटी-सी मेज़ पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिज़ाइन अंगीठी के कपड़े से मैच करता है और मधु की सुरुचि का पता देता है।

अंगीठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेंडर लटक रहा है—जिससे कि मेज पर बैठे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेंडर को एक नज़र देखने से मालूम होता है कि नवंबर का महीना है।

अंगीठी के बराबर एक दरवाज़ा है, जो रसोई में जाता है।

इस दरवाज़े से ज़रा हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेंत का कोच का सैट है। इसके आगे एक तिपाई है। सैट की गद्दियां सुंदर और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अंगीठी के कपड़े से मैच करता है।

सामने, दीवार के बायीं ओर कोच से ज़रा हटकर एक दरवाज़ा है, जो स्नान-गृह को जाता है।

बायीं दीवार के साथ श्रृंगार की मेज़ लगी है, जिससे वसंत और मधु दोनों अपने टायलेट का काम लेते हैं। इससे ऊपर खूटियों पर तौलिये टंगे हैं। मेज़ के दोनों ओर एक-दो कुर्सियां पड़ी हैं।

दायीं दीवार के इधर को एक दरवाज़ा है, जो बाहर जाता है।

तौलिये

—उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

परदा उठाते समय हम वसंत को शृंगार की मेज़ पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं। वास्तव में वह हजामत बना चुका है और तौलिये से मुंह पोंछ रहा है। तभी रसोई के दरवाज़े से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है।)

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया! मैं कहती हूं आप···

वसंत : (**मुंह पोंछते-पोंछते रुककर**) ओह! ये कम्बख्त तौलिये! मुझे ध्यान ही नहीं रहता! बात यह है (**हंसता है**) कि मदन के तौलिये छोटे हैं और हजामत···

मधु : (**चिढ़कर**) और हजामत के तौलिये जैसे हैं। जी! ज़रा आंख खोलकर देखिए, हजामत के तौलिये कितने रंगीन हैं। बीसियों तो धारियां पड़ी हुई हैं उनमें और मदन के कितने सादे और···

वसंत : लेकिन रोएदार तो···

मधु : (**व्यंग्य से**) दोनों हैं। जी! आखें बद करके आदमी दोनों का अतर बता सकता है। मैं कहती हूं···

वसंत : (**निरुत्तर होकर**) वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था। लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो। कहा है; मुझे दिखायी नही दिया।

मधु : (**खूंटी पर टंगा हुआ तौलिया उठाकर**) यह तो टगा है सामने, फिर भी···

वसंत : मैंने ऐनक उतार रखी है, और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया···

(**खिसियानी हंसी हंसता है।**)

मधु : जी, आपकी दुनिया! न जाने आप किस दुनिया मे रहते है। अब तो ऐनक नही! ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखायी देता है···

(**मुंह फुला धम से कौच में धंस जाती है और चुपचाप स्वेटर बुनने लगती है। वसंत हजामत का सामान रखता है; फिर अचानक उसकी ओर देखकर।**)

वसंत : यह तुमने फिर मुंह फुला लिया। नाराज हो गयी हो?

मधु : (**व्यंग्य से हंसकर**) नहीं, मैं नाराज़ नहीं।

वसंत : तुम्हारा ख्याल है कि मैं इतना मूर्ख हूं जो यह भी नही पहचान सकता?

मधु : (**उसी तरह हंसकर**) मैं कब कहती हूं।

वसंत : **(सामान वैसे ही छोड़कर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए)** मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेने की निपुणता तुम्हें प्राप्त नहीं। तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी समस्त भावनाएं, तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती है। पर मैंने तुम्हें अंधेरे में नहीं रखा। अपने संबंध में, अपने स्वभाव के संबंध में, सब कुछ बता दिया था। मैंने अपने सब पत्ते···

मधु : मेज़ पर रख दिये थे। **(उसी तरह व्यंग्य से हंसकर)** मैं कब इकार करती हूं ?

वसंत : तुम्हारी यह हंसी कितनी विषैली है ! इसी तरह विष घोल-घोलकर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।

मधु : **(चुप रहती है।)**

वसंत · मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊं कि मैं स्वयं सफाई का बड़ा समर्थक हूं ?

मधु : **(हंसती है)** इसमें क्या संदेह है ?

वसंत : और मुझे स्वयं गंदगी पसद नही।

मधु : **(सिर्फ हंसती है।)**

वसंत : पर मैं तुम्हारी तरह 'अरिस्टोक्रेटिक'[1] (Aristocratic) वातावरण में नहीं पला और मुझे नजाकतें नही आती। हमारे घर मे सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे।

मधु : आप मुझे 'अरिस्टोक्रेट' कहकर मेरा उपहास करते है। मैं कब कहती हूं, दस-दस तौलिये हों ?

वसंत दस और किस तरह होते है। नहाने का अलग, हजामत बनाने का अलग, हाथ-मुंह पोंछने का अलग, और फिर तुम्हारे और मदन के···

मधु : **(पहलू बदलकर)** लेकिन मैं पूछती हूं, इसमें दोष क्या है ? जब हम खरीद सकते है तो क्यों न दस-दस तौलिये रखे। कल, परमात्मा न करे, हम इस योग्य न रहें; मैं आपको दिखा दूं कि किस तरह गरीबी में भी सफाई रखी जा सकती है—तौलिये न सही, खादी के अंगोछे सही, कोई पुरानी-धुरानी पर उजली चादर या धोती के टुकड़े सही—कुछ भी रखा जा सकता है। लेकिन जिस तौलिये से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे कोई अपना शरीर कैसे पोंछ सकता है ?

---

[1] अरिस्टोक्रेटिक—कुलीन।

वसंत : मैं कहता हूं, हम छह भाई एक ही तौलिये से बदन पोंछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी···

वसंत : हममें से किसी को कोई बीमारी नहीं हुई।

मधु : पर चर्म-रोग···

वसंत : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं···और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता। रोग बढ़ता है कमज़ोरी से। जब हमारे शरीर में रोग से लोहा लेनेवाले कीटाणु कम हो जाते है, तब ! चूहा सैदनशाह की बात जानती हो ?

मधु : चूहा सैदनशाह···

वसंत : शिकार करने के विचार से कुछ अफसर चूहा सैदनशाह गये। उनमे अमेरिका के राकफैलर ट्रस्ट के कुछ डाक्टर भी थे। लंच के समय उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी। बैरे ने आकर बताया कि गाव में कोई कुआं नही। लोग जोहड़ का पानी पीते हैं। डाक्टरो को विश्वास न आया; क्योंकि जोहड़ का पानी मैला-कीचट था। ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हों, और चूहा सैदनशाह के जाट हृष्ट-पुष्ट, लंबे-तड़ंगे···

मधु : तो क्या आप चाहते हैं, हम जोहड़ का पानी पीना शुरू कर दें ? **(हंसती है)**

वसंत : **(उठकर कमरे में घूमता हुआ)** तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हसी बिखेर सकती हो, **(उसके सामने रुककर)** लेकिन तुम्हें मालूम हो कि अमेरिका के डाक्टर वहीं रहे। एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण किया। मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुकाबला करने वाले लाल कीटाणु, रोग की मदद करने वाले कीटाणुओं से कहीं ज्यादा हैं। तब उन्होंने वहा के लोगों की खुराक का निरीक्षण किया। पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत-सी बीमारियों के कीटाणुओं को मारने की शक्ति है। बीमारी का मुकाबला इन नजाकतों और नफासतों से नही होता, बल्कि शरीर मे ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सके। **(फिर घूमने लगता है)**

मधु : **मैंने चूहा सैदनशाह** की बात सुन ली। मैले तौलियो से शरीर मे लाल **कीटाणु फैलें या श्वेत**, मुझे इससे मतलब नहीं। मैं तो इतना जानती हूं कि बचपन ही से मुझे सफाई पसद है। मामाजी···

वसंत : **(मेज के कोने का सहारा लेकर)** तुमने फिर अपने मामा और

मौसा की कथा छेड़ी। माना वे विलायत हो आये हैं, किंतु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो वे कहते हैं, वह वेदवाक्य है। उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे। उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूल से तौलिया पेश कर दिया। **(मधु के पास जाकर)** उन्होंने दांत निपोर दिये—**(नकल उतारते हुए)** "मैं किसी दूसरे के तौलिये से हाथ नहीं पोंछता।"—और वे अपने रुमाल से हाथ पोंछने लगे। मैं पूछता हूं, अगर वे तौलिये से हाथ पोंछ लेते तो उन्हें कौन-सी बीमारी चिपट जाती ?

मधु : अब यह तो···

वसंत : और तुम्हारे मामाजी··· **(वापस जाकर फिर मेज़ पर बैठ जाता है)** तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मैं उनके यहां गया। रात वहीं रहा। दूसरे दिन मुझे सीधे दफ्तर आना था। कहने लगे हजामत यहीं बना लो। मैंने कहा—"मैं एक दिन छोड़कर हजामत बनाता हूं, मुझे कोई ऐसी जरूरत नहीं।" जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—"अच्छा बनाये लेता हूं!" तब वे एक निकृष्ट-सा रेज़र ले आये और कहने लगे, **(नकल उतारते हुए)** "मैं अपने रेज़र से किसी दूसरे को हजामत नहीं बनाने देता, इसलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेज़र रख छोड़ा है।"—क्रोध के मारे मेरा रक्त खौल उठा, लेकिन अपने-आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—"रहने दीजिये, मैं घर जाकर शेव कर लूंगा!"

मधु : मामाजी···

वसंत : **(अपनी बात जारी रखते हुए)** इस पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेज़र से हजामत बनाने पर विवश कर दिया। किंतु मेरे हजामत बनाने के बाद मेरे ही सामने ब्लेड उन्होंने लॉन में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेज़र को 'स्टेरिलाइज़'[1] (Sterilize) कर लाये। **(नकल उतारते हुए)** मामाजी···

मधु : मैं कहती हूं, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं, इसलिए आपको बुरा लगा। स्वच्छता की भावना भी काव्य और कला ही की भांति···

वसंत : **(आवेग में उसके पास आकर)** क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो। तुम्हारे जैसे वातावरण में पले हुए लोगों की नफासत में नफरत की भावना काम करती है—शरीर से, गंदगी से, जीवन से नफरत की !

[1] स्टेरिलाइज़—दवाई के प्रयोग से कीटाणु-रहित करना।

मधु : (**चुप रहती है।**)

वसंत : और मुझे जीवन से घृणा नहीं। मुझे शरीर से भी घृणा नहीं, और मैं सच कह दूं, मुझे गंदगी में भी घृणा नहीं।

मधु : (**हंसती है**) तो फिर कूड़ों के ढेर पर बैठिये !

(**वसंत फिर कुर्सी पर जा बैठता है, और कुर्सी को और समीप ले आता है।**)

वसंत : मुझे गंदगी में घृणा नहीं, किंतु मैं गंदगी पसंद नहीं करता—बड़ा नाजुक-सा फर्क है। यदि हमें जीवन का सामना करना है, तो रोज गंदगी से दो-चार होना पड़ेगा, फिर इससे घृणा कैसी ? जिन गरीबों को तुम अपने बरामदे के फर्श पर भी पांव न रखने दो, मैं उनके पास घंटों बैठ सकता हूं।

मधु : (**हंसती है।**)

वसंत : और मैंने ऐसे गंदे इलाकों में जीवन के निरंतर कई वर्ष बिताये है, जहां तुम्हारी स्वच्छता की सनक तुम्हें गुज़रने तक न दे। समझीं !

मधु : (**वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए**) पर अब तो आप विपन्न नहीं। अब तो आप गंदे इलाकों में नहीं रहते। विपन्नता की विवशता को मैं समझ सकती हूं, किंतु गंदेपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की वस्तु है।

वसंत : तो तुम्हारे विचार में मैं स्वभाव से गंदा हूं ?

मधु : (**उसी विषैली हंसी के साथ**) मैं कब कहती हूं ?

वसंत : (**खड़ा हो जाता है**) ऐसे दिन मुझ पर आये है, जब एक बनियान पहने मुझे कई दिन गुज़र जाते थे। उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो-दो बार बनियान बदल लेता हूं। अगर यह गंदेपन की आदत है तो…

मधु : (**उसी हंसी के साथ**) मैं कब कहती हूं ?

वसंत : स्वच्छता बुरी नहीं, पर तुम तो हर चीज़ को सनक की हद तक पहुंचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ हैं। (**फिर कमरे में घूमने लगता है**) बनियानों और तौलियों की कैद मैंने मान ली, किंतु यदि मैं गलती से बनियान न बदल पाऊं या गलत तौलिया ले लूं तो इसका मतलब तो नहीं कि मेरे स्वभाव पर तुम्हें मुंह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषैली हंसी बिखेरनी चाहिए।

मधु : (**चुप रहती है।**)

वसंत : (**रेडियो के पास से**) तुमने अपने-आपको इन मिथ्या बंधनों में

इतना जकड़ लिया है कि मेरा ज़रा-सा खुलापन भी तुम्हें अखरता है। अपने सिद्धांतों को तुमने सनक की हद तक पहुंचा दिया है। ऊषी और निम्मो···

मधु : **(बुनना छोड़ देती है)** आपने फिर ऊषी और निम्मो की बात चलाई। ऊषी और निम्मो···

वसंत : **(हंसते हुए)** कल मिल गयीं बाज़ार में। मैंने पूछा—निम्मो, आयी नहीं तुम इतने दिनों से। कहने लगी—हमको चची से डर लगता है। **(हंसता है)**

मधु : **(उसी विषैली हंसी के साथ)** मैं उसे खा जाती हूं ?

वसंत : **(तिपाई के पास से)** खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियां हैं···

मधु : बच्चियां ! **(व्यंग्य से हंसती है)**

वसंत : **(उसके व्यंग्य को सुना-अनसुना करके तिपाई पर बैठते हुए)** हंसना उनका स्वभाव है। वे हंसेंगी तो बेबात की बात पर हंसेंगी और तुम्हारा ऐटीकेट—बस-दबे-दबे, घुटे-घुटे फिरो—ऊंह ! **(बेज़ारी से सिर हिलाकर उठता है)** जो आदमी जी-भर खा-पी नहीं सकता, हंस-हंसा नहीं सकता है ! वह जीवन में कर भी क्या सकता है। चिंताओं और आपत्तियों के बंधन ही क्या कम हैं जो जीवन को शिष्टाचार की बेड़ियों में जकड़ दिया जाये—यह न करो वह न करो, ऐसे न बोलो, वैसे न बोलो—इन आदेशों का कहीं अंत भी है ?

मधु : **(चुप रहती है।)**

वसंत : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहां है ? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नारायण एक ही लिहाफ में बैठ जाते थे। ज़रा कल्पना तो करो—सर्दियों की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रजाई घुटनों पर ओढ़े चार-पांच मित्र बैठे हैं। गप्पें चल रही हैं। सुख-दुख की बातें हो रही हैं। वहीं चाय आ जाती है। साथ-साथ बातें होती हैं, साथ-साथ चुस्कियां लगती हैं—इस कल्पना में कितना आनंद है, कितनी स्निग्धता है ! अब मित्र आते हैं। अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। एक-दूसरे पर बोझ मालूम होता है। **(जोश से)** चिड़ियां तक तो फटकने नहीं देतीं तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूं।

(जाकर कुर्सी पर बैठ जाता है और हजामत का सामान ठीक से रखने लगता है।)

मधु : मैं तकल्लुफ स्वयं पसंद नहीं करती। पर जब दूसरों की सफाई का

कुछ भी ख्याल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आप ही बताइए —कितने लोग हैं, जिन्हें सफाई की आदत है ? कितने हैं जो हमारी तरह पांव धोकर रजाई मे बैठते हैं।

वसंत : **(वहीं से)** पांव धोने की मुसीबत रजाई में बैठने का लुत्फ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। मनुष्य स्वभाव ही से स्वच्छता का प्रेमी है। मैं गंदे लोगों से घृणा करती हू। **(फिर स्वेटर बुनने लगती है)**

वसंत : **(मुड़कर)** घृणा—यही तो मैं कहता हूं। तुम्हे मुझसे घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा हैं, तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है।

मधु : **(उसी विषैली हंसी के साथ)** यह आप कह सकते है।

वसंत : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है—मेरे खाने-पीने से, उठने-बैठने से, हंसने-बोलने से—मैं जब हंसता हू, सीना फुलाकर हंसता हूं और इसीलिए ऊषी और निम्मो···

मधु : **(स्वेटर को फेंककर)** आपने फिर ऊषी और निम्मो की कथा छेड़ी। मुझे हंसना बुरा नहीं लगता, पर समय-कुसमय का भी ध्यान होना चाहिए। उसी दिन पार्टी में आते ही ऊषी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आंखें बंद कर लीं। कोई समय था इस तरह हंसी-मजाक का ? मुझे हंसी-मजाक से घृणा नहीं, अशिष्टता से घृणा है।

वसंत : ऊषी···

मधु : परले सिरे की अशिष्ट और असभ्य लड़की है। मदन की वर्षगांठ के दिन वे सब आये थे। निम्मो इतनी चंचल है, पर वह तो बैठ गयी एक ओर, और यह नवाबजादी सैंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टांगें पसारे, और उसके गंदे सैंडल—मेरी साड़ी के बिलकुल समीप आ गये। आप इस अशिष्टता को शौक से पसंद करें, मैं तो इसे कदापि पसंद नही कर सकती। जिसे बैठने-उठने, बोलने का सलीका नही, वह मनुष्य क्या, पशु है।

वसंत : **(गरजकर)** पशु ! तो तुम मुझे पशु समझती हो ? तुम मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओं को बांधकर रखना चाहती हो, कठिन सिद्धांतों की बेड़ियों में, ताकि उसकी रूह भी मर जाये। मुझे यह सब पसंद नहीं और इसलिए तुम मुझसे घृणा करती हो। तुम्हारी इस विषाक्त हंसी में, मैं जानता हूं, कितनी घृणा

छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सचमुच पशु न बन जाऊं। अभी मेरा जी चाहा था कि इस जलील-से तौलिये को उठाकर बाहर फेंक दू और···और··· मेरा जी चाहा करता है कि मैं तुम्हारी इस हंसी का गला घोट दू। घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो—मुझे पशु समझती हो ?

मधु : (**स्वेटर उठाते हुए भरे गले से**) आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं। अपनी कल्पना से मेरे दिल मे वे बाते देखते है, जो मैं स्वप्न मे भी नहीं सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नही, इसे मैं ही जानती हूं। पर आपको मुझसे जरूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मैं जानती हूं। क्यो कर ली, यह भी जानती हू। लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नही बताता कि आपको मुझसे नफरत नहीं। इसका क्रोध चाहे अब आप मेरी सफाई पर निकालें, चाहे मेरी पोशाक या मेरे स्वभाव पर !

वसंत : तुम···

मधु : मेरा ख्याल था, मै आपको सुख पहुचा सकूंगी। आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूं, किंतु मैं देखती हूं कि मेरे समस्त प्रयास विफल है··· आपको इस गंदगी, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है। आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूगी। मैं आज ही चली जाऊंगी।

(**उठ खड़ी होती है—टेलीफोन की घंटी बजती है। वसंत जल्दी से जाकर चोंगा उठाता है।**)

वसंत : हैलो, हैलो, जी, जी !

मधु : (**नौकरानी को आवाज देते हुए**) मंगला !

मंगला : (**स्नान-गृह की ओर के दरवाजे से आती है**) जी, बीबीजी !

मधु : मेरा बिस्तर तैयार कर और मेरा ट्रंक इस कमरे में ले आ।

मंगला : बीबीजी, आप···

मधु : मैं जो कहती हूं, उठा ला।

(**मंगला चली जाती है। वसंत 'जी, जी बहुत अच्छा !' कहते हुए चोंगा रख देता है और हंसता हुआ आता है।**)

वसंत : मैं कहता हूं तुम अपना सामान बाधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो। मुझे पहली गाड़ी से बनारस जाना है। अभी साहब ने आदेश दिया है। अपना सामान बाद में बांधना। (**हसता है**)

(**परदा गिरता है।**)

(**कुछ क्षण बाद परदा फिर उठता है।** कमरा वही है। सामान भी वही है। सिर्फ इतना अंतर है कि जहां मेज थी, वहां एक पलंग बिछा हुआ है और टेलीफोन उसके सिरहाने एक तिपाई पर रखा है। मेज ड्रेसिंग टेबल की जगह चली गयी है और शृंगार-मेज अपनी कुर्सी के साथ दायें कोने को सरक गयी है।

पलंग पर मधु लिहाफ घुटनों पर लिए दीवार के सहारे अन्यमनस्क-सी आधी लेटी है।

कुछ क्षण बाद वह कैलेंडर की ओर देखती है। उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है, जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं।

बाहर का दरवाजा खुला है और तीखी हवा अंदर आ रही है। लिहाफ को कंधे तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है—"मंगला, मगला !"

लेकिन आवाज़ इतनी हल्की है कि शायद मंगला तक नहीं जाती। मधु रजाई लेकर लेट-सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है।)

मंगला : बीबीजी, आप उदास क्यों है ?

मधु : (**लेटे-लेटे जरा सिर झुकाकर**) मगला ! यह किवाड़ बंद कर दो। बर्फ-सी हवा अंदर आ रही है।

मंगला : (**किवाड़ बद करते हुए**) मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने बीबीजी !

मधु : यो ही कुछ तबीयत उदास है मंगला !

मंगला : कोई पत्र आया बाबूजी का ?

मधु : आया था। शायद आज-कल में आ जायें।

मंगला : तो फिर···

मधु : (**विषाद से हंसकर**) तबीयत कुछ भारी-भारी-सी है। शायद सर्दी के कारण···

(**दरवाजे पर दस्तक होती है।**)

मधु : (**जरा उठकर**) कौन ?

सुरो : (**बाहर से**) दरवाज़ा तो खोलो।

मधु : (**बैठकर**) मंगला, जरा किवाड़ खोलना।

(**मंगला दरवाजा खोलती है, सुरो और चिन्ती आती हैं।**)

मधु : (**रजाई परे करके**) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहां कैसे ?

सुरो : आज ही सवेरे यहां उतरी है।

चिन्ती : माताजी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का ख्याल था कि दिल्ली भी देखती चलें।

मधु : ठहरी कहां हो ?

चिन्ती : कनाट प्लेस में मलिक चाचाजी के यहां। देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आयें तो···

मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा। इतने दिनों से मैं कह रही थी दिल्ली आओ तो···

सुरो : सबसे पहले तुम्हीं से मिलने आयी है। माताजी कहती थी, कुतुबु-मीनार···

चिन्ती : मैंने कहा, कुतुबुमीनार एक तरफ और मधु बहन एक तरफ···

(**मधु कहकहा लगाती है।**)

सुरो : और फिर दो घंटे से मारी-मारी फिर रही है तुम्हारी तलाश में।

मधु : लेकिन पता तो मेरा···

चिन्ती : सुरो बहन भूल गयीं। इन्होंने तांगेवाले को भैरो के मंदिर चलने को कह दिया।

मधु : (**आश्चर्य से**) भैरो के मंदिर···

चिन्ती : और तांगेवाला ले गया सब्जीमंडी, तीस हजारी के गिरजे के पास।

मधु : गिरजे के पास··· (**जोर से कहकहा लगाती है**)

चिन्ती : (**अपनी बात जारी रखते हुए**) तब इन्हें ख्याल आया कि मंदिर तो हनुमान का है। फिर नयी दिल्ली वापस आयी।

(**मधु फिर जोर से हंसती है।**)

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो यों ही परेशान होते रहे। घर तो तुम्हारा पास ही था।

मधु : तुम लोग भी, मैं कहती हू···

(**जोर से हंस पड़ती है।**)

सुरो : यह इतना हंसना तुम कहां से सीख गयीं। तुम तो थी जन्म की सिड़ी···

चिन्ती : भाई साहब ने सिखा दिया इतने जोर के कहकहे लगाना ? कहां है वे ?

मधु : बनारस गये हैं। दो महीने से। वहां की **फर्म का मैनेजर बीमार** पड़ गया था। शायद आजकल में आ जायें।

चिन्ती : अच्छे तो हैं ?

मधु : अच्छे है; मौज में हैं, लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ? **इधर आ** जाओ बिस्तर पर। (**नौकरानी को आवाज देती है**) मंगला, मंगला !

(**सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं।**)

मधु : अरे, कुर्सियां छोड़ो। बस, चली आओ इधर। पलंग पर बैठते हैं लिहाफ लेकर…

सुरो : लेकिन मेरे पांव… (**हंसकर**) …और मैं धो नहीं सकती इन्हें।

मधु : अरे क्या हुआ है तुम्हारे पांवों को। जुराबें तो पहन रखी हैं तुमने ?

चिन्ती : पर तुम्हारा विस्तर ?

मधु : कुछ नही होता बिस्तर को। मेरे बिस्तर का ख्याल छोड़ो। बस, चली आओ इधर। यह किवाड़ बंद कर दो। बर्फ-सी हवा अंदर आ रही है।

(**मंगला आती है।**)

मंगला : आपने आवाज दी थी बीबीजी ?

मधु : मंगला, चाय बनाकर लाओ !

(**चिन्ती किवाड़ बंद कर देती है। तीनों घुटनों पर लिहाफ लेकर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं।**)

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है। अगले महीने।

मधु : (**चौंककर खुशी से**) लेफ्टिनैंट वीरेंद्र के साथ ?

चिन्ती : (**हंसकर**) सब तुम्हारे जैसी नहीं। वह प्रेम करती रहेगी वीरेंद्र से जीवन-भर, पर शादी तो उसकी प्रोफेसर मुंशीराम ही के साथ होगी।

मधु : पर मुंशीराम…

सुरो : खड़े का खालसा है भाई। लेफ्टिनैंट साहब तो आते हैं कभी-कभी वर्ष में एक-दो बार और प्रोफेसर साहब सिर पर सवार रहते हैं आठों पहर, बुरे साये की तरह।

चिन्ती : वह लम्मा-सलम्मा लमढींग-सी आदमी। जोर की हवा चले तो उड़ता चला जाये। मैं तो सोचती हूं कि उसे पुष्पा जैसी मोटी-मुटल्लो से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूं कि उसे पुष्पा पसंद कैसे करती है। मैं तो उसे पांच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूं। चेहरे पर तो उसके नहूसत बरसती रहती है और मालूम होता है जैसे···

चिन्ती : वर्षों स्नान-गृह का मुंह न देखा हो।

सुरो : सहन तो उसे करना ही पड़ता है। उसके पिता प्रोफेसर मुंशीराम पर बड़े प्रसन्न हैं। उन्होंने प्रोफेसर साहब को पढ़ाया-लिखाया और अपने कालेज में लगाया। वीरेंद्र तो चार वर्ष बी. ए. में रहे और प्रोफेसर मुंशीराम ने रिकार्ड तोड़ा था।

(**मंगला चाय की ट्रे लाती है।**)

मंगला : कहां लगाऊं चाय बीबीजी ?

मधु : वहां मेज पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमें दो। यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो।

सुरो : (**आश्चर्य से**) मधु !

मधु : अरे उठकर कहां जाओगी ! यहीं बैठी रहो इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाने में आ चुका चाय का मज़ा···

चिन्ती : (**उठने का प्रयास करते हुए हल्के-से क्रोध से**) मधु···

मधु : हटाओ भी। अब बैठी रहो यहीं।

चिन्ती : (**व्यंग्य से**) तो विवाह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धांत बदल डाले हैं। अब डाइनिंग टेबल के बदले बिस्तर पर ही चाय पीती हैं और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फरमाती हैं।

सुरो : कहां तो यह पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागतीं और कहा यह कि···

मधु : अरे क्या रखा है इस तकल्लुफ में। सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म-गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग टेबल पर जाये। लो, बिस्कुट और चाय का प्याला उठाओ ! ठंडी हो रही है।

(**सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते-पीते बातें करती हैं।**)

सुरो : मैं पूछती हूं—अगर चाय बिस्तर पर गिर जाये ?

मधु : तो क्या हुआ ! चादर धुलवाई जा सकती है। और फिर किसी दिन सहसा पेश आने वाली दुर्घटना के भय से कोई अपने रोज़ के सुख-आराम को तो नहीं छोड़ देता।

सुरो : सुख-आराम ! (**व्यंग्य से हंसती है**) तुम बिस्तर पर चाय पीने को बहुत बड़ा सुख समझती हो··· (**फिर हंसती है**)

चिन्ती : और फिर सभ्यता, संस्कृति···

मधु : मानव की आधारभूत भावनाओ पर नित्य नये दिन-दिन चढ़ते चले जाने वाले पर्दों का नाम ही तो संस्कृति है। सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा। फिर कहां तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे !

सुरो : यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझकर मनुष्य फिर पहले की भांति बर्बर बन जाये ?

मधु : नहीं, बर्बर बनने की क्या जरूरत है ? मनुष्य सीमाओं को छूता हुआ क्यों चले ? मध्य का मार्ग क्यों न अपनाये ? न इतना खुले कि बर्बर दिखायी दे, न इतना बंधें कि सनकी। महात्मा बुद्ध ने कहा था···

सुरो : (**हंसकर**) महात्मा बुद्ध ! तुम्हें हो क्या गया है ? सदियों पुराने गले-सड़े विचारो को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो !

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल, प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के सिद्धांत कल काम न देंगे और कल के परसों। बर्नार्ड शा···

मधु : (**व्यंग्य से हंसकर**) बर्नार्ड शा—हटाओ, क्या बेमजा बहस ले बैठी हो। मंगला, चाय का एक-एक कप और बनाओ।

चिन्ती : बस भई, अब तो हम चलेंगे। इतनी देर हो गयी हमें यहां आये। मंगला, हाथ धुला दो हमारे।

मधु : अरे भाई, एक-एक प्याला तो और लो।

सुरो : नहीं मधु, अब चलेंगे। वहां सब लोग परेशान हो रहे होंगे। हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे हैं। एक-आध घंटे में लौट आयेंगे और यहां आते ही आते दो घंटे लग गये।

चिन्ती : स्नान-गृह किधर है ? हम वहीं हाथ धो आते हैं।

मधु : अरे क्या धोओगी इस सर्दी में हाथ ?

सुरो : नहीं भई, हाथ तो हम जरूर धोयेंगे; चिप-चिप कर रहे हैं।

मधु : तो मरो ! (**मंगला से**) मंगला, इनके हाथ धुला दो।

सुरो : बाथरूम···

मधु : अरे बाथरूम में जाकर क्या करोगी ! इधर बरामदे ही में धो लो।

(किवाड़ खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती हैं। मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती हैं।)

सुरा : **(गीले हाथ लिए वापस आकर)** तौलिया कहां है ?

मधु : तौलिया नहीं दे गयी मंगला ? अच्छा, वह ले लो जो खूंटी पर टंगा है ?

सुरो : **(क्रोध से)** मधु, तुम भली भांति जानती हो···

मधु : मगला, इन्हें अंदर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो।

(चिन्ती भी गीले हाथ लिए आ जाती हैं। मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं।)

मधु : मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठतीं !

चिन्ती : नहीं, अब कल आने का प्रयास करेंगी।

(हाथ पोंछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती है।)

मधु : प्रयास नहीं, जरूर आना। भूलना नहीं। और खाना भी यही खाना।

सुरो : हां, हा, अवश्य आऊंगी।

(मधु उठने का प्रयास करती है।)

सुरो : अब उठने का तकल्लुफ न करो। बैठी रहो अपने गर्म लिहाफ में। दरवाजा हम बंद किये जाते है। बर्फ-सी हवा अंदर आ रही है।

(हंसती हुई चली जाती है, दरवाजा बंद किये जाती है।)

मधु : मुझे एक प्याला बना दो मंगला।

मंगला : **(प्याला बनाकर देते हुए)** ये कौन थी बीबीजी ?

मधु : मेरी सहेलियां थीं। कालेज में हम साथ-साथ पढते थे, और होस्टल में भी साथ-साथ रहते थे।

(कुछ क्षण मधु चुपचाप चाय पीती है, फिर।)

मधु : मंगला !

मंगला : जी, बीबीजी !

मधु : मंगला, जरा मेरी ओर देखकर बता तो मंगला, क्या मै सचमुच बदल गयी हूं ?

मंगला : **(चुप रहती है।)**

मधु : **(जैसे अपने-आप से)** मेरी सहेलियां कहती है, मैं बदल गयी हूं। पड़ोसिनें भी यही कहती हैं। मेरी ओर जरा देखकर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल सकी हूं ?

मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूं बीबीजी, मैं क्या जानूं ?

मधु : **(अपनी बात जारी रखते हुए)** मेरी आंखों में देखकर बता मंगला, क्या ये बदल सकी है। इनमें घृणा की झलक तो नहीं ?

मंगला : **(आश्चर्य से)** घृणा···

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ और बनावट तो नहीं ?

मंगला : **(उसी आश्चर्य से)** बनावट, तकल्लुफ···

मधु : तकल्लुफ, बनावट, नफरत—तीनों को मैं अपने दिल से निकाल देना चाहती हूं। **(जैसे अपने-आप से)** दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझसे लड़कर चले गये थे।

मंगला : क्या कह रही हैं बीबीजी आप ! बाबूजी तो···

मधु : **(शून्य में देखते हुए)** उनका क्रोध अभी तक नही उतरा। इन दो महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन···

मधु : **(व्यंग्य से)** "मै कुशल से हूं, अपनी कुशलता का पता देना।" या "मैनेजर बीमार है, ज्यों ही स्वस्थ हुआ, चला जाऊंगा।" इन्हें तुम पत्र लिखना कहती होगी। वे मुझसे नाराज हैं। उनका ख्याल है कि मैं उनसे घृणा करती हूं।

मंगला : **(कुछ भी समझने में असफल होते हुए)**—घृणा, घृणा !

मधु : यदि मै बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूं जहां सफाई और सलीके का बेहद ख्याल रखा जाता है तो इसमे मेरा क्या दोष है ! **(लगभग भरे हुए गले से)** वे सफाई और व्यवस्था की मेरी इच्छा को घृणा बताते है। मैं बहुतेरा यत्न करती हूं कि इन सब सफाई-वफाई को छोड़ दूं। इन तकल्लुफात को तिलांजलि दे दूं। अपने इस प्रयास में कभी-कभी मुझे अपने-आपसे घृणा होने लगती है। **(लंबी सांस भरकर)** बचपन से संस्कार मैंने पाये हैं। उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं। **(अचानक दृढ़ता से)** पर नहीं; मैं इन सब वहमों को छोड़ दूंगी, पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूंगी। वे समझते हैं, मैं उनसे नफरत करती हूं।

मंगला : आप क्या कह रही हैं बीबीजी ?

मधु : वे समझते हैं—मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हरेक बात से घृणा करती हूं। **(सिसकने लगती है)** मैंने इन दोनों महीनों में अपने-आपको बदल डाला है। अपने-आपको बिलकुल बदल डाला है।

(दरवाजा अचानक खुलता है और वसंत प्रवेश करता है।)

वसंत : हेल-लो मधु—क्या हालचाल हैं जनाब के ? **(मंगला से)** मगला, तागे से सामान उतरवाओ। और··· **(जेब से पैसे निकालते हुए)** और यह लो, डेढ़ रुपया। तागेवाले को दे देना।

(मंगला पैसे लेकर चली जाती है।)

वसंत : **(फिर मधु के पास आते हुए)** कहो भाई, क्या हालचाल हैं ? यह, यह सूरत कैसी रोनी वना रखी है। जी कुछ खराब है क्या ?

मधु · **(जो इस बीच में पलग से उतर आई है—हंसने का प्रयास करते हुए)** सूखा जाड़ा पड रहा है। जुकाम है मुझे तीन-चार दिन से।

वसंत : मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। सेहत—सेहत—सेहत ! दुनिया में जो कुछ है सेहत है। जीवन में तुम्हारी यह सफाई और सुघड़ता, ये नजाकतें इतना काम न देंगी, जितना सेहत। यदि यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम की, और अगर यह ठीक है तो फिर इनकी कोई जरूरत नही। **(अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनंद लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो)** अरे, यह काया-पलट कैसी ? यह पलंग ड्राइंग-रूम मे कैसे आ गया ? और यह ट्रे और प्याले···

मधु : मैने पलंग इधर ही बिछा दिया है कि आप और आपके मित्रों को ज़रा भी कष्ट न हो। मजे से लिहाफ लेकर बैठिए। टेलीफोन आपके सिरहाने रहेगा।

वसंत : **(उल्लास में)** वाह ! मैं तो कहता हूं तुम तो, तुम···तो···बेहद अच्छी हो।

मधु : मै स्वय अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ में बैठी रही हूं।

वसंत : **(आश्चर्य-मिश्रित उल्लास से)** सच !

मधु : **(उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार भरी दृष्टि से देखते हुए)** और चाय भी हमने यहां पी है।

वसंत : **(प्रसन्नता से)** व···ा···ह ! मैं कहता हूं—अब तुम जीवन का रहस्य समझ पाई हो। जीवन का भेद बाह्य तडक-भड़क में नहीं, अंतर की दृढ़ता मे है। यदि, हमारी प्रतिरोधी शक्ति, हमारी power of resistence कायम है···

मधु : चाय भी अब यहीं पिया कीजिएगा, अपने नर्म-नर्म बिस्तर पर।

वसंत : (**अत्यधिक उल्लास से**) वाह···वा···वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो मेरे लिए चाय का पानी रखे।

मधु : अब तो आप नाराज नही हैं ?

वसंत : (**आश्चर्य से**) नाराज !

मधु . आप इतने दिनो तक मन में गुस्सा रख सकते है, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वसंत : (**और भी आश्चर्य से**) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा।

वसंत : पर मैंने···

मधु : पत्र लिखे थे। जी ! "मैं कुशल से हूं, अपनी कुशलता का पता देना।" —इसे पत्र लिखना कहते होंगे ?

वसंत . (**जोर से कहकहा लगाता है**) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज हूं ? पगली ! तुमसे भी कभी कोई नाराज़ हो सकता है !

मधु : पर दो पक्तियां···

वसंत : दो पंक्तियां लिखने का भी अवकाश मिल गया, तुम इसी को बहुत समझो।

मधु : अच्छा, आप जाकर हाथ-मुंह धो लीजिए। मैं चाय तैयार करती हूं।

वसंत : मैं कहता हूं तुम कितनी ··तुम कितनी···तुम कितनी अच्छी हो !

मधु : (**मुस्कुराते हुए**) अच्छा-अच्छा चलिए, पहले हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदलिए।

वसंत : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की पख लगाई ?

मधु : क्यों, कपड़े न बदलिएगा ? एक रात और एक दिन गाड़ी में सफर करके आये है। मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है। चलिए, चलिए, जल्दी हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदलिए। मैं इतने में चाय तैयार करती हू। (**वसंत को स्नान-गृह के दरवाजे की ओर धकेल देती है और नौकरानी को आवाज देती है**) मंगला, मंगला !

मंगला : (**दूसरे कमरे के दरवाजे से झांकती है**) जी, बीबीजी !

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं ?

मंगला : जी, बीबीजी !

मधु : यह ट्रे और प्यालियां उठा। पानी तो चाय का ठंडा हो गया होगा।

बाबूजी उधर हाथ-मुंह धोने गये हैं। मै और पानी रखती हूं। इतने में यह पानी फेंककर चायदानी और प्यालियां अच्छी तरह धो डाल।

(मंगला ट्रे आदि उठाकर जाती है। एक चमचा गिर जाता है।)

मधु : **(कुछ तीखे स्वर में)** यह चमचा फिर फर्श पर गिरा दिया तूने। बीस बार कहा है कि चमचा न गिराया कर फर्श पर, चिप-चिप होने लगती है। अब ट्रे बाहर रखकर इस जगह को गीले कपडे से पोंछ डाल।

वसत : **(स्नान-गृह से)** अरे भाई, साबुन कहा है ?

मधु . ध्यान मे देखिए; वही तख्ती पर पड़ा है।

वसत : **(वहीं से)** और तौलिया ?

मधु : हाथ-मुह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोछ लीजिए।

(मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है। और चुपचाप फर्श साफ करने लगती है।)

मधु : तू फर्श साफ करके चायदानी और प्यालिया धो डाल और मै पानी रखती हूं चाय का।

(रसोई के दरवाजे से चली जाती है। कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फर्श साफ किये जाती है। फिर वसत हाथ-मुंह धोकर कुर्ते की आस्तीन चढ़ाये, गुनगुनाता हुआ आता है—

हिंडोला कैसे झूलूं, मेरा जिया डोले रे।
मैं झूला कैसे झूलू, मेरा जिया डोले रे।

और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए उस तौलिये से मुंह पोंछने लगता है, जिससे सुरो और चिन्ती हाथ-मुह पोंछकर गयी हैं।)

मधु : **(रसोईखाने से)** यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने। मनों तो मैल जमी हुई है पेंदे मे। **(केतली हाथ में लिए आ जाती है)** तुझे कभी बर्तन साफ करने न आयेंगे मंगला। कितनी बार कहा है कि सफाई का··· **(अचानक वसंत को सुरो वाले तौलिये से मुह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए)** यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ? मैं पूछती हू आप सूखे और गीले तौलिये मे भी तमीज नहीं कर सकते ! अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पीकर इस तौलिये से हाथ पोंछकर गयी है।

वसत : **(घबराकर)** परंतु नया···

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टंगा है।

वसंत : ओह, ये कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता। वास्तव में दोनों तौलिये साफ हैं, मुझे···

मधु : जी साफ है। जरा आंख खोलकर देखिए। गीले और सूखे···

वसंत : मैंने ऐनक उतार रखी है, और ऐनक के बिना तुम जानती हो, हमारी दुनिया···।

(खिसियानी हंसी हंसता है।)

मधु : जी, आपकी दुनिया, जाने आप किस दुनिया में रहते हैं। अब तो ऐनक नहीं, ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ दिखायी देता है।

(मुंह फुलाकर धम्म से कौच में धंस जाती है।)

वसंत : यह तुमने फिर मुंह लटका लिया। नाराज हो गयी हो क्या ?

मधु : **(व्यंग्य से हंसकर)** नहीं, मैं नाराज नहीं।

वसंत : **(चिल्लाकर)** तुम्हारा ख्याल है, मैं इतना मूर्ख हूं जो यह भी नहीं पहचान सकता।

(पर्दा सहसा गिरता है।)

स्ट्राईक

—भुवनेश्वर

चरित्र

(पहला दृश्य)

पुरुष
स्त्री

(दूसरा दृश्य)

तीन पुरुष
एक युवक

(तीसरा दृश्य)

पहले दृश्य का पुरुष
दूसरे दृश्य का युवक

(पहला दृश्य)

(एक मध्य वर्ग के बगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ पर्दा डालकर बना लिया गया है। एक बडा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट, प्याले नुमायशी ढंग से रखे है; पास एक छोटी मेज पर फोर्स, क्वाकरओट्स, पॉल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अंडाकार है, जिसके चारों तरफ कुर्सियां पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और पुरुष बैठे है, पुरुष; सुपुरुष, स्त्री कुछ बोले तो पता चले, कम-से-कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रही है।)

स्त्री : **(चाय का प्याला घुमाते हुए)** तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष : **(अनमना)** हू…

स्त्री : **(कुछ कहने के लिए सांस भर कर रह जाती है।)**

पुरुष : तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये है…

स्त्री : **(दो घूट चाय पीकर रूमाल से ओठ पोंछती हुई)** सरदार साहब के डाइरेक्टरों में तो खूब चलती है…

पुरुष : **(हास्यास्पद उत्साह से)** यह ! यही तो इन कम्बख्तों को मिटा देता है। यह समझते है कि बहुमत इन्हें गदहे से बछड़ा बना देगा ! कम्बख्त यह नही समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये है। बहुमत बहुत थोडे से बेजार, अधमरे केंचुओं का नाम थोड़े ही है ! वह शक्ति, दुनिया को हिला देने वाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक आदमी में होती है।

(स्त्री चुपचाप चाय उंड़ेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी-सी हो जाती है।)

पुरुष : सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सबके साथ यही दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते, म्रियमाण से निहत्थे पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते है ! जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नही मांगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, ग्रह नहीं बनाता, षड्यंत्र नहीं करता तो मुंह बा कर

रह गये ; रही हां, मुंह बा कर रह गये ! (**प्याला रखकर हंसता है**) यह कुछ बूझते-समझते तो हैं नही । जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर मुंह बा देते हैं। (**आवाज़ धीमी करता है**) लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज्जतदार मोटे घुड़मुहे, गधे हैं गधे ! हां, व्यवस्थित समाज में इनका एक लाभ ज़रूर है—यह ठोकरें खूब झेल लेते है। डिवीडेंड कम हुआ, इनके हाथ-पांव फूल गये; किसी कालिज के चिबिल्ले ने किताबी अंग्रेजी में स्ट्राईक की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाव फूल गये, यह बौखला गये। (**हाथ को नाटकीय ढंग से हिलाते हुए**) मैने कह दिया कि मैं तीन साल तक कोई डिवीडेंड नहीं बांटूंगा, अंगूठा कर लो मेरा !

(**भद्दे तौर से अंगूठा दिखाता है ।**)

(**स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ देखती है। और भवों में कुछ घुस-पुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे। वह एकाग्र खाता रहता है। कमरे में फिर निस्तब्धता छा जाती है।**)

पुरुष : (**ऊबा-सा**) तो आज नौकर दोनों गायब ! मेम साहब ने चाय बनाई है, पर शाम को क्या होगा ? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री : (**रूमाल से उंगलियां मलते**) मैं···मैं (**सहसा**) तो जा रही हूं।

पुरुष : कहां जा रही हो ? कहां ?

(**बाहर की तरफ रूमाल हिलाते**) वहां ?

पुरुष : (**बाहर की तरफ देखता है**) वहां बाजार, शॉपिंग के लिए ?

स्त्री : नहीं, मैं तो लखनऊ जा रही हूं आखिरी जी. आई. पी. से लौट जाऊंगी।

पुरुष : (**अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए**) लखनऊ, जी. आई. पी., आखिर क्यों ?

स्त्री : (**चाय खत्म कर चुकी है**) कुछ नही, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीबी हैं, मिसेज निहाल है, मैं हूं, मिस मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या।

पुरुष : (**उंगली पोंछ रहा है**) तो यह कहो (**रुककर**) लेकिन कार क्यो नहीं ले जाती ?

स्त्री : नहीं कार—कार नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा जी. आई. पी. से लौट आयेंगे। वही शायद आखिरी गाड़ी है।

पुरुष : (**जेब से सोने की जेब-घड़ी निकालकर और उसे बास्केट पर**

पोंछकर) तो जी. आई. पी. यहां आती है सवा-दस पर, तुम यहां दस-पच्चीस पर आ जाओगी। कार मैं पंप पर छोड़ दूगा—अरे मिलखीराम के पेट्रोल पंप पर। खाने के लिए यह करना कि मैं कार मे टिफिन कैरियर रख लूगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना, न होगा रोटियां यही बन जायेंगी। (**जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट जलाता है, धुंआ छोड़ते हुए**) अब सरदार साहब के मिजाज ठिकाने आ जायेंगे। कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नही, भला इसे जिंदगी कहते हैं ?

स्त्री : तो जी. आई. पी. यहां साढे-दस पर आती है ?

पुरुष : (**फिर घड़ी निकाल लेता है और फिर उसे पोंछता है**) नहीं सवा-दस पर। और जी. आई. पी. की गाड़ियां लेट नहीं होती—यह ई. आई. आर. नही है। (**जैसे कोई अपनी ही चीज का बखान कर रहा हो**) दुनिया का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है—दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शॉ, उसने कहा है···

स्त्री : (**सहसा ऊबी-सी**) मिसेज निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हें मीटिंग मे कब जाना है ?

पुरुष : (**चौंककर घड़ी की तरफ देखता है**) साढे-चार ! सो लो मैं चला —(**गुनगुनाता है**) चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कपनी में लगेंगे, चार—इक्कीस—खैर, तो चलो तुम्हें पिन्डी के यहा छोड़ दूगा; वहा से— या आओ निहाल के वहा तक, दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री : (**अगड़ाई लेते हुए**) अच्छा ? (**खड़ी हो जाती है**) यही साड़ी पहने रहें या दूसरी पहन···

(**मुड़कर साड़ी देख रही है।**)

पुरुष : (**सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए**) जैसा तुम्हारा जी चाहे। लेकिन तुम्हें मेरे सर की कसम, बतला दो लखनऊ मे क्या है ?

स्त्री : (**बरबस मुस्कुराती है**) लखनऊ मे—बहुत-सी चीजे है—छोटा-बड़ा इमामबाडा, चिड़ियाघर, हजरतगज, अमीना···

पुरुष : नही, मैं पूछता हू, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री : (**जाते हुए**) आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है।

पुरुष : **(जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए)** यहां आओ, यहा बैठो। **(स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है)** यहां बैठो, मैं देखता हू, तुम कुछ दिनों से ऐसी हो रही हो। मै जानता हूं, तुम्हारी तबीयत नही बहलती पर छुट्टियों में निर्मल आ जायेगा, मोनी भी शायद यही आवे, तुम्हे मालूम हुआ, मोनी अबकी बी. ए मे फर्स्ट रही। लेकिन हां, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री : होता क्या ? कुछ नहीं हुआ; तुम अगर मेरी तबीयत का एक खाका ···बनाओ तो लकीर वहा···वहा बिजली तक पहुच जाये—

पुरुष : **(उत्साहित होकर)** हा, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है ? देखो आदमी के सामने सब से बडी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये। आदिम जगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुख या सुख तो इतनी ठोस चीजें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों मे बिका करेंगी, शीशियो में ! मुझे इन टिसुये बहाने वालो से नफरत है, सख्त नफरत ! यह सिर्फ हरैले ही नही है, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते है।

स्त्री : अच्छा उठो, फिर तुम मुझे कार पर न पहुचाओगे ?

पुरुष : **(फिर घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है)** असम्भव ! तुम अब मिसेज निहाल का इंतजार करो।

(जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ घूरती हुई बैठी रहती है। थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बगल में पुराना फेल्ट हैट दाबे, हाथ के छोटे डंडे को रूमाल से पोंछ रहा है।)

पुरुष : सवा-दस पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहां से मिलखीराम तक का रास्ता है पांच मिनट का, दस बीस, यानी साढ़े-दस तक तुम यहां होगी, यानी दस चालीस तक हम तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे होंगे ! मैं स्टेशन आ जाता लेकिन मिस मित्तर—तुम व्यर्थ जलोगी। **(भद्दी हंसी हसती है, स्त्री पर जैसे कोई असर नहीं होता)** अच्छा चिरियो !

(सीढ़ियों पर से तेजी से उतरता हुआ चला जाता है। स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है। स्टेज पर एकबारगी अंधकार हो जाता है। बीच में दो बार रोशनी होती है जिसमें पूरे सीन में खाली मेज और कुर्सियां दिखलाई देती है। घड़ी जिसमें पहले साढ़े-आठ बजा है फिर सवा-नौ।)

(दूसरा दृश्य)

(एक मध्य वर्ग क्लब का कमरा, तेज ताखी रोशनी हो रही है। मेजो पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी है, कुर्सियां भी अनेक चारों तरफ तितर-बितर पड़ी है। कोने मे एक बडी-सी फ्रेंच विन्डो (खिड़की) के सामने सोफो पर तीन आदमी बैठे है। सीने में सिर्फ उनकी पीठे दिखायी दे रही है। पास ही एक कुर्सी पर सामने की एक छोटी मेज पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिडकी के फ्रेम मे तारों से खिला हुआ आकाश तस्वीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी पौने-नौ बजा रही है। कमरे में सब खामोश है, पर निस्त-ब्धता नहीं है।)

पहला आदमी : न मालूम मै यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यो खेलता हूं ?

(आवाज वृद्ध-सी है।)

दूसरा आदमी . **(जम्हाई लेता हुआ)** क्या किया जाये। आओ कोई और झंडा ऊंचा करें।

तीसरा आदमी · यह लोग आते भी तो नही। **(कुर्सी पर के युवक की तरफ घूमकर)** देखो जी, तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ···

(दोनों आदमी घूमकर युवक की तरफ देखते है। तीनों आदमी मोटे अधेढ़, कीमती कपड़े पहने और अत्यन्त संतुष्ट हैं।)

युवक : **(झेंपता-सा)** मै कैसे उठा सकता हू। हा, मेरी पत्नी आती तो मैं जरूर ऐसा करता, देखिये उन्हे···

(तीनों एक बारगी 'हूं' करते हैं और फिर मुड़ के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।)

पहला आदमी : **(जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता है)** चलो भई, चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा आदमी : **(मुड़कर घड़ी देखते हुए)** यह श्रीचंद बुत्ता दे गया !

पहला आदमी : नही भाई, कही फंस गया होगा। उसके तो मकड़ी की तरह सौ आंखें है !

युवक : वह आयेगे जरूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों आदमी : **(मुड़कर)** अच्छा ? और पट्ठे की पत्नी आज है नहीं !

(सब एक-दूसरे की ओर देखते हैं।)

युवक : अच्छा, मुझे मालूम होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला आदमी : इसे—श्रीचंद को देखो, जब यह वकालत छोड़ कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कंपनी का सर्वेसर्वा बन गया है।

(हंसता है।)

दूसरा आदमी : **(जम्हाई लेता और अंगुठियोंवाली उंगली से चुटकियां बजाता है)** मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता हूं कि भाग्य भी कोई चीज है।

(युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनाता है।)

तीसरा आदमी : **(उठ खड़ा होता है)** आओ भई चलो। आइये मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊं। घर तक···

पहला आदमी : बैठो न, श्रीचंद आता ही होगा।

युवक : और आपसे तो उन्होंने भी कार में छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा आदमी : **(बैठते हुए)** हूं, हूं; तब तो रुकना ही पड़ेगा।

(युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।)

युवक : आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनों आदमी : क्या ? अच्छा !

(तीनों ऐसी बातों की तरफ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं पर कुछ असफल-से हो रहे हैं।)

पहला आदमी : श्रीचंद्र ने इनके बारे में खूब कहा।

(हंसता है। सब उसकी तरफ देखकर सुनना चाहते हैं।)

पहला आदमी . **(कोट का कालर ठीक करते हुए)** मेरे साथ कमिश्नर से मिलने···उन्होंने मेरठ की बात चलाई। आप छूटते ही हिंदुस्तानी में—हिंदुस्तानी में बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिये, यह तो हम लोगों के खिलौने हैं।

(तीनों फैशनेबल हंसी हंसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।)

दूसरा आदमी : हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि किस तरह उसके कर कम-से-कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिये, प्रजा अपने-आप संपन्न होगी।

पहला आदमी : हम लोगों-सा कोई बेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफो ने वहां क्या कर दिखाया है कि दुनिया-भर को रूस के सामने हेय समझते हैं।

तीसरा आदमी : यानी, खुदा तक को !

(फिर तीनों ऊबी-सी हंसी हंसते हैं। बाहर कुछ खटका-सा होता है। सब लोग बाहर की तरफ देखते हैं। पहले सीन का चिंतित पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है।)

पुरुष : **(अपना हैट और एक डंडा एक खाली मेज पर रखते हुए)** तो तुम लोग सिर्फ इंतजार कर रहे थे, बिज खत्म कर दिया ?

दूसरा आदमी : **(कमरे के बीच में आते हुए)** आज सहाय फिर हार गये ?

पुरुष . **(हंसता हुआ)** सहाय, तुम बड़े हरैले हो !

(अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये है।)

पहला आदमी · जीत तो सब तुम्हारे हिस्से मे पडी है।

पुरुष : अरे भई, क्या जीत क्या हार। यहां तो इसका कभी सपने में भी ख्याल नहीं करते। हम तो ईमानदारी से जीना जानते है। मै फिर कहता हूं, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

तीसरा आदमी : **(जम्हाई लेता हुआ)** चलो भई बड़ी देर हो गयी। **(सब घड़ी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की खड़ी निकालता है और उसे पोंछता है)** चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा।

(तीनों भीतर जाकर अपना हैट लेते है, केवल युवक नंगे सिर है।)

पहला आदमी : यह चौकीदार न जाने कहां मर जाता है।

दूसरा आदमी : मर जाता है ? क्या खूब ? क्या नयी पत्नी कर लाया है। जरा सोचो, नयी पत्नी !

(सब जवानों की तरह हंसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा-झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है। बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज आती है, 'चौकी-दार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी। स्टेज पर अंधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और एक किसानों का-सा, बुझा हुआ चेहरा लिए चौकीदार मेज झाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखलाई देता है।)

(तीसरा दृश्य)

(पहले सीन के कमरे का बरामदा, लबा और साधारण से जरा ऊंचा। खंभों के पास बड़े-बड़े पाम रखे है, खभों पर बेलें भी फैली हैं, दरवाजे सब बंद है, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियां पड़ी हुई है। सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू मे कोई आदमी नहीं दिखलाई देता पर तत्काल ही गृह-स्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियो पर चढते दिखायी देते है। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे आकर बरामदे मे बैठ जाता है। स्टेज पर कम-से-कम रोशनी है।)

पुरुष : (**मेहनत से चढ़ते हुए**) तो यह कहिए ? रुकिए···

(**जेब टटोलता है।**)

(**फिर एकबारगी सीढ़ियों से उतरकर बंगले के पीछे की तरफ जाता है, युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्कुरा रहा है, शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोल रहा है।**)

पुरुष : अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गयी, या कही रख गयी। नौकर···मैं कहता हूं कि मेरी जिंदगी मे अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी—छुट्टी—छुट्टी ! रोज-रोज इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नहीं जानते···

(**युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।**)

पुरुष (**एकबारगी हंसता हुआ**) अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुफ्त आ जाता है !

युवक : खैर, यहा भी आराम ले बैठे हैं।

पुरुष : हां, हां; साढ़े-नौ बजा है (**घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है**) नौ सत्ताइस, खैर, मेरी पत्नी यहां साढे-दस तक आ जायेगी। खाना वह साथ ही लाएगी। (**जम्हाई लेता है**) और कहिए।

युवक : (**उत्साह से**) मुझे कोठी तो खैर मिल गयी···।

पुरुष : (**जूते को फटफटाते**) खैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नही बताया कि आपने शादी क्यों नही की ?

युवक : (**कठिनता से**) नही ही की—नहीं का कोई कारण तो है नहीं।

पुरुष : (**मुस्कुराता है**) मै सच कहता हूं, मैं आप जवान आदमियों को देख-कर कई बार बहुत खुश होता हूं।

युवक : (**जैसे इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं है**) जी हां !

(**हंसता है।**)

पुरुष : (**संभल कर**) नहीं। मै आपसे दिल्लगी नही कर रहा हू। आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आपसे हिसाब मागा जाये तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बतलाइए, आप लोगों ने दुनिया को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नही करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम है जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दखल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने आपको पूरा कर रही है। मै जानता हू आप मेरे विचारों को दकियानूसी समझकर मन-ही-मन हस रहे है; लेकिन भाई जान, आपने अपने नये विचारों से कौन-से तीर मारे है, आप बताइए।

युवक : जिक्र तो शादी का था ?

पुरुष : हा, हां, शादी को ही ले लीजिए। आप मानते हैं कि हर एक आदमी की जाति की ज़िदगी में दाखिल होना जरूरी है। जैसा प्रायः कहता हूं कि दुनिया साझे की दुकान है और हर एक बालिग आदमी का कर्तव्य है कि उसका साझेदार हो। अगर इसके लिए कोशिश मे आप अपनी जान नही खपा देते तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक नहीं रखते। (**उत्तेजित होकर**) मै कहता हूं, सब पुस्तके गलत है, सब झूठी है !

युवक : मैने तो शादी नही की—नही की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग···

पुरुष : भाई जान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिलवाड़ नही कर सकते। मैं पूछता हूं, आप एक फैक्टरी मे तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते है, फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाये कि उसमे आदमी को सस्ती-से-सस्ती और निकम्मी-से-निकम्मी शक्तियां ही सिर्फ काम मे लायी जाये ! आप कहते हैं, मैं औरत को समझ नही पाता। जनाब, यह सब कोरी बाते है, बाते ! समझने की क्या जरूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने-जोखने, समझने नही जाती है। स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरजे हैं—दो !

युवक : यह फैक्टरी और मशीन की एक ही रही !

पुरुष : नहीं साहब, आप मुझे देखिए, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख्त को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नही, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं; पहाड़, जंगल जाने का मेरे पास वक्त नहीं; पर हम लोग बेहद खुश हैं—कभी हम मे कोई भेद-भाव हुआ ही नही। मैं कहना चाहता था कि हम दोनो ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहां हम लोग अड़िग है। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरो से घर नहीं भर देता; मै बीमार पड़ता हू, वह रोती-धोती नहीं ! मै क्या कहू, मै जानता हूं, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुक-स्टाल पर कौन-सी किताब देख रही है। मैं जानता हूं, वह स्टेशन पर गाड़ी से दस मिनट पहले पहुंच जाती है।

युवक : पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरजा बिगड़ जाये !

पुरुष : **(हंसता हुआ)** तो पुरजा बदल डालिए, स्वयं बदल जाइए। किताबें, मै आपको बताऊंगा, किताबें क्या है। मैने रुई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी, मैंने सब वही बातें लिखी जो लोग रोज सोचते थे और जिनकी चर्चा करते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गयी; पर उन्ही उसूलों को जिनकी मैंने वकालत की, काम मे लाने की बात मैं स्वप्न मे भी नही सोचता।

(पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाए हुए खामोश है। कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।)

युवक : **(सिर उठाकर)** फैक्टरी, पुरजा, वाकई यह खूब रही !

(पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटखटाता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर जोर से पुकारता है—कौन है ? और फिर कुत्ते को पुकारता है। एक चपरासी हाथ में बाइसिकल थामे आता है और सलाम करके जेब से एक लिफाफा निकाल कर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है।)

पुरुष : क्या है, तुम कौन हो ? **(लिफाफा लेकर अपनी घड़ी की चेन के चाकू से उसे खोलता है, रोशनी की तरफ जाता है)** एं !

चपरासी : मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूं, मेम साहब ने कहलवाया है, वह कल आयेंगी।

पुरुष : (**खत पढ़ना छोड़कर**) कल आयेगी ? ऐं ! तुझे क्या मालूम···

चपरासी सब मेम साहब वहा रहेंगे, मोटर वापस कर दी, मुझसे कहा···

पुरुष (**टहलते हुए उतावली से**) और खाना, मकान···और कार मेरी मिलखी राम के पप पर पडी है।

(**चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चल के कहता है**—)

चपरासी · हजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है ?

पुरुष : (**हताश भाव से**) आखिर—आखिर, हूं···

युवक (**उठते हुए**) आइए, मेरे होटल मे आइए, आपकी फैक्टरी में तो आज स्ट्राईक हो गयी।

पुरुष . मैं कहता हू, मेरी कार मिलखीराम के पप पर खडी है···

(**फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है।**)

(**पर्दा गिरता है।**)

चरित्र

मनीषा
विवेक
दीप्ति
विश्वजीत
करुणा
अशोक
शरत
इंदु

(एक मध्यवर्गीय परिवार का मकान, जिसमे नया-पुराना सब कुछ सहअस्तित्व के लिए विवश है। आधुनिक कमरा जिसमे एक ओर भोजन के लिए मेज़-कुर्सी, दूसरी ओर सोफा आदि—दोनों के बीच में एक पर्दा है, जो प्राय: हटा रहता है। बैठक वाला हिस्सा अपेक्षाकृत अधिक स्थान घेरे है। भोजन के कमरे की टेबल नयी है, पर कुर्सियों का प्रयोग सुविधानुसार दोनों ओर होने लगता है, इसलिए वे एक जैसी नही हैं, कुछ मैली, कुछ टूटी हुई। मेज़ पर किताबो, पत्रिकाओं का ढेर लगा है। कुर्सियों पर किसी पर तौलिया टगा है, तो किसी पर कुर्ता या बुशर्ट। बायी ओर अलमारी है। उसमे खाने-पीने के डिब्बे और ऐमी ही कुछ दूसरी चीज़ें दिखायी देती हैं। भोजन-कक्ष मे सोफा इतना पुराना नही है, पर उसके गिलाफ गदे हो चुके है। यही हाल मोढ़ो और तिपाईयो का है। बीच की पिताई पर दो साप्ताहिक खुले पड़े है। अदर जाने के दो मार्ग है—एक सामने से, दूसरा दाहिनी ओर से। बाहर से आने का मार्ग बैठक वाले कमरे में दाहिनी ओर से है। बांयी ओर कोने मे एक अलमारी है, जिम मे पुस्तके है। लेकिन ऊपर के खाने मे कुछ खिलौने भी है। इस ओर मेज है जिस पर और चीजो के साथ-साथ टेलीफोन भी रखा हुआ है। पर्दा उठने पर प्रकाश धीरे-धीरे सब कुछ को आलोकित करता है—व्यवस्था के प्रयत्न को और लापरवाही को। इस समय वहा कोई नही है। बस हवा मे मेज से उड़कर कुछ कागज इधर-उधर बिखर जाते है। पृष्ठभूमि में आतिशबाजी आवाजें उभरती है। बच्चो का शोर कम और अधिक होता है। कई क्षण बाद 25-26 वर्ष की एक युवती अंदर से आती है। उसका नाम मनीषा है। सुदर्शना है, वस्त्र भी सुंदर और सुरुचिपूर्ण हैं। वैसा ही जूड़ा है। साड़ी, सैंडल, बैग और लिपस्टिक सबका रंग एक जैसा है। वह इस समय अत्यंत गभीर है। इधर-उधर देखती है, द्वार पर आकर ठिठकती है और बोल उठती है।)

मनीषा : कोई नही है। मैं जा सकती हूं। आप पूछ सकते है, मै कौन हूं ? कहा जा रही हूं ? यही तो इस घर की समस्या है। यही आप जानना चाहते हैं। मै पूछती हू कि मै क्या आपको इतनी नादान दिखायी देती हू कि अपना भला-बुरा न सोच सकू, अपनी इच्छा से आ-जा न सकू, जो ठीक समझूं वह न कर सकू ?

जी नहीं, मै अपना मार्ग आपको चुनने का अधिकार नहीं दे सकती, कभी नही द सकती। मैं जा रही हूं, वही जहां मै चाहती हूं।

(वह एकदम वहां से चली जाती है। एक क्षण संगीत तीव्र होता है। फिर एक अल्हड़ धुन बजाता हुआ एक युवक बाहर से वहां प्रवेश करता है। उसकी आयु लगभग 24 वर्ष है, नाम है विवेक। अति आधुनिक लंबे बाल, कलमें, दाढ़ी, तंग पतलून और रंगीन कमीज, मुख पर निर्भयता और उपेक्षा के मिले-जुले भाव। सीधा भोजन टेबल पर आकर कुछ ढूंढ़ता है। एक लिफाफा उठाकर देखता है और मुस्कुराता है। उसे खोलते हुए बोलता है···)

विवेक . तो उनका उत्तर आ गया। हे भगवान्, क्या लिखा है इन्होंने ? **(तेजी से लिफाफा फाड़कर पत्र निकालता है। पढ़ता है। दूसरे ही क्षण चेहरे का रंग फीका पड़ जाता है)** आपके प्रार्थना-पत्र पर हमने बड़ी गभीरता से विचार किया, लेकिन हमे खेद है कि आपकी प्रतिभा के योग्य इस समय हमारे पास कोई काम नही है। सदा आपके सहयोग की कामना करते हुए··· **(एकदम चीखकर)** झूठे, मक्कार, आपकी प्रतिभा के योग्य। क्या सचमुच मुझमें कोई प्रतिभा है ? है तो उसका उपयोग क्यों नहीं हो सकता ? **(दीर्घ निःश्वास के साथ पत्र फेंक देता है और दर्शकों की ओर देखता है)** मुझ में यदि कुछ प्रतिभा है तो अर्जियां लिखने की। आज का युवक अर्जियां लिखते-लिखते मशीन बन गया है। **(फिर तेज होकर)** लेकिन मै नही बनूगा मशीन। मैं नहीं लिखूगा अर्जियां। मैं ··**(जल्दी-जल्दी बहुत से कागज उठाकर इधर-उधर बिखेर देता है। उसी समय अंदर से एक युवती वहां प्रवेश करती है। आयु उसकी 20 वर्ष की होगी। तंजेब का कुर्ता उस पर आधी बांह का लाल स्वेटर, पीली 'बैलबोटम', पैरों में पाजेब मुक्त केश, बिलकुल बीच में से बटकर चेहरे को ढंके हुए है। इनके बीच में से दो बड़ी-बड़ी आखे चमकती हैं। हाथ में कंघा लिये बालों को इधर-उधर बिखेरती है और मुस्कुराती है।)**

दीप्ति · **(दर्शकों से)** लीजिए, विवेक भैया सदा की तरह अर्जियों से नाराज है। **(विवेक के पास आकर कंधे पर हाथ रखती है)** ऐ, विवेक भैया। तुम्हारी अर्जियां कभी खतम होंगी या नही ? पता है, पापा ने कहा जाने के लिए कहा था ?

विवेक : मुझे बस इतना ही पता है कि पापा ने तुम्हें बाल बिखेरने के लिए मना किया था।

टूटते परिवेश

—विष्णु प्रभाकर

दीप्ति : आप मेरी चिंता न कीजिए। पापा ने आपसे कहीं जाने के लिए कहा था।

विवेक : कहा होगा तुम्हे कही ज़ाने के लिए।

दीप्ति : मुझे नहीं, तुम्हें।

विवेक : **(तेज़ी से उठकर)** तुम्हे, तुम्हे।

दीप्ति : **(चिढ़ाकर)** तुम्हें, तुम्हें। अच्छा बाबा न तुम्हें कहा था न मुझे कहा था, हमे कहा था।

विवेक : यह हुई बात, हमें कहा था, पर सोचने की बात यह है कि क्या हमे पापा का कहा मानना ही होगा।

दीप्ति . बुद्धू कही के। यह तो हमारे लाभ की बात है। आज दीवाली है और जीजी, भैया, भाभी सभी दीवाली की रात मनाने के लिए जायेगे। हो सकता है हमें भी निमंत्रण मिल जाये।

विवेक : **(चुटकी बजाकर)** अब समझा। सब लोग तुम्हारी तारीफ क्यों करते हैं ? चलो, चलो, शरद भैया और इदु जीजी के पास चलते है। लगे हाथ एक-एक अर्जी भी उन्हें देता आऊंगा।

दीप्ति : अर्ज़ी, अर्ज़ी। पहले मुझे धन्यवाद तो दो कि मैंने तुम्हें अक्ल दी।

विवेक : **(व्यंग्य से हाथ जोड़कर)** आपके अनेकानेक धन्यवाद। कहो तो धन्यवादों की एक अर्जी आपको भी पेश कर दूं। **(दोनों ज़ोर से हसते हैं।)**

दीप्ति : अच्छा, अच्छा अब चलो। मामा-पापा के आने से पहले ही निकल चले। नही तो आदर्शो की एक और खुराक मिल सकती है।

विवेक : चलो, चलो। **(दोनों हंसते-हंसते जाते है। एक क्षण बाद गृह-स्वामी विश्वजीत बाहर से वहां प्रवेश करते है। आयु 60-70 के बीच कहीं है। ढीला कुर्ता, तंग पाजामा, सिर पर गांधी टोपी, मुख पर गहरी हताशा। इधर-उधर देखते हुए और बुदबुदाते हुए अंदर चले जाते हैं। एक क्षण बाद फिर लौटकर कमरे पर नज़र डालते हैं। और दर्शकों से कहते है।)**

विश्वजीत : लो देख लो, वही सन्नाटा, वही अर्जियो का ढेर, वही बदइंतजामी, जैसे इस घर मे इसान नही, भूत रहते है। दीवाली का दिन है, लेकिन यहा मन-हूसियत ही बिखरी हुई है। वे भी तो नही है घर मे। गयी होंगी कहीं पड़ौस मे बतियाने और यह विवेक है, फिर अर्जियां फाड़कर चारों ओर बिखेर गया है, यह भी तो नहीं हुआ कि रद्दी की टोकरी में ही डाल दे। **(उठाकर रद्दी की टोकरी में**

डालता है) कुछ काम करता तो मेरी सहायता भी होती, **(दर्शकों की ओर)** क्या होती सहायता ? बड़े भी तो कमाते है। पास तक नहीं फटकते। कैसा वक्त आ गया है ? एक हमारा जमाना था, कितना प्यार, कितना मेल, एक कमाता दस खाते। हरेक एक-दूसरे से जुड़ने की कोशिश करता था और अब सब कुछ फट रहा है। सब एक-दूसरे से भागते है। **(इसी तरह से बोलता हुआ अर्जियों और पत्रिकाओं को इधर-उधर करता है। फिर अंदर जाकर डिब्बे में से कुछ निकालता है और खाता हुआ एक पत्रिका लेकर सोफे पर बैठ जाता है)** हे भगवान्, अब जब तक कोई नही आ जाता, मुझे यहीं इतजार करना पड़ेगा। अपने घर मे अपनों का इंतजार। **(निराशा और व्यंग्य-मिश्रित हंसी हंसता है। प्रकाश धीमा पड़ता है। एक क्षण के लिए अंधकार छा जाता है। फिर प्रकाशित होने पर विश्वजीत उसी तरह बैठे हुए 'मदर इंडिया' पढ़ने में व्यस्त है। तभी अंदर से गृह-स्वामिनी करुणा पुकारती हुई आती है। आयु 55 से पार हो चुकी है। बाल खिचड़ी हैं, साधारण पर स्वच्छ धोती पहने हुए है। नाक-नक्श में आकर्षण है, लेकिन अतिशय व्यस्तता के कारण सारे व्यक्तित्व पर रूखेपन की छाप है।)**

करुणा : मैं पूछती हू, कब होगी पूजा ? तंग आ गयी इतजार करते करते !

विश्वजीत : **(सहसा सिर उठाकर)** क्या कहा ? ओह् पूजा, थोड़ा और ठहरो। आते ही होंगे सभी लोग।

करुणा : मैं अब और नहीं ठहर सकती। पिछले तीन घंटे से आप यही कह रहे हैं। मैं कहती हूं, कोई नही आयेगा।

विश्वजीत : कोई कैसे नही आयेगा। घर के लोग ही न हों तो पूजा का क्या मतलब। यही तो मौके हैं जब सब मिल बैठ पाते है।

करुणा : 'मिलकर बैठ पाते हैं' नही, 'बैठ पाते थे' कहिए। अब कोई नही बैठ सकता। फुर्सत किसे है ?

विश्वजीत : **(उद्विग्न होकर)** फुर्सत ! बचपन से मैने 40-40 लोगों के बीच में बैठकर पूजा की है। पुरोहित का जोर-जोर से वह मंत्र-पाठ करना मुझे आज भी याद है। याद है बालको का उल्लास भरा कोलाहल, जवानों की चुहुल-बाज़ी, बड़े-बूढ़ों की सुख-दुख की बातें। फिर सबका अदब से सिर ढंककर टीका लगवाना, जब हाथ में लड्डुओं का बड़ा थाल लेकर, प्रसाद बांटती हुई, मां सबके बीच में घूमती थीं तब उनके चेहरे पर का तेज देखते ही बनता था। जैसे साक्षात् भारत माता हों। **(बोलते-बोलते जैसे कहीं दूर कहीं खो जाता है।)**

करुणा : मैं कहती हूं, भारत माता की चिंता छोड़कर तुम अपनी औलाद की चिंता करो। कोई रहा है तुम्हारे कहने मे। एक-एक करके सभी चले जा रहे हैं।

विश्वजीत : दया करके तुम अब अंदर चली जाओ। मैं एक बार फिर शरत को देखने जाता हूं। अशोक के पास विवेक गया है और दीप्ति को मैंने इंदु के पास भेजा है।

करुणा : और मनीषा को किसके पास भेजा है ?

विश्वजीत उसे मैंने कहीं नही भेजा। मेरे भेजे कहीं जाती है वह ? गयी होगी कही अपनी इच्छा से।

करुणा . इसीलिए तो कहती हूं, अपनी औलाद तो सम्हाले सम्हलती नहीं। बात करते हो भारत माता की। आशा करते हो पूजा के लिए सब तुम्हारे घर आयें। मैं कहती हूं कोई नहीं आयेगा। तुम्हारी अपनी औलाद तक नहीं आयेगी।

विश्वजीत : सब आयेंगे। सदा आते रहे हैं तो अब क्यों नहीं आयेंगे ?

करुणा : मैं पूछती हूं, पार साल कितने आ गये थे ?

विश्वजीत पार साल ? आये क्यों नही थे ? हा, कौन-कौन आये थे भला ?

करुणा · क्यों बेकार याद करने की कोशिश करते हो ? चार भाइयों में बस अशोक आया था। वह भी अकेला और इस बार तुम्हारे अपने बेटा-बेटी भी नही आयेंगे।

विश्वजीत : कैसे नहीं आयेंगे ? (**बाहर की ओर देखकर मुस्कुराता है**) वह देखो वे आ रहे हैं।

करुणा : (**उधर ही देखकर**) ये तो दीप्ति और विवेक हैं। सदा की तरह दोनो लड़ते हुए आ रहे हैं और हां, विवेक को समझा देना, वह अपनी अर्ज़ियां सम्हाल कर रखा करे। वह उनके सहारे जी सकता है, लेकिन मैं उन्हें नही संभाल सकती। यह घर है कि अर्ज़ीखाना। अच्छा मैं चली। पूजा करनी हो तो जल्दी आ जाना। (**जाती है। विवेक और दीप्ति झगड़ते हुए प्रवेश करते हैं।**)

विवेक : कघा बाल संवारने के लिए रखा जाता है कि बिगाड़ने के लिए ? कुछ पता है ?

दीप्ति . सब पता है।

विवेक : क्या पता है ?

दीप्ति : यही कि तुम सब बुर्जुआई भाषा बोलते हो।

विवेक : संवार बुर्जुआई भाषा है ?

दीप्ति . और नहीं तो क्या ? यह शेम्पु इस्तेमाल कीजिए, वह तेल डालिए, ऐसा जूड़ा बनाइए, वैसा जूड़ा मत बनाइए, बगाली जूड़ा, 'पिरामेडी' जूडा, अजन्ता शैली का जूड़ा, दक्षिण शैली की चोटी, 'पोनी टेल', 'बाब हेयर', अरे बाबा, हम जैसा चाहेंगे, करेंगे तुम कौन हो बीच में आने वाले ? हमें ऐसा ही अच्छा लगता है। (**बातें करते-करते विश्वजीत के पास आ जाते हैं।**)

विश्वजीत : आ गये तुम दोनों ? पूछता हूं तुम दोनों लडते ही रहोगे, कुछ करोगे भी ? तुम से ही कहता हूं विवेक, यह घर है कि अर्जीखाना ? देखो तो जरा, सारा कमरा तुम्हारी अधलिखी और अधफटी अर्जियो से भरा पड़ा है।

दीप्ति : देख लो पापा, यह विवेक भैया खुद तो इतनी गंदगी फैलाते है और हमको उपदेश देते है बाल संवारने का।

विवेक : पापा आप ही बताइए, कंघे से बाल सवारे जाते है या बिखेर जाते हैं ?

दीप्ति : बुद्धू आजकल बिखेरना ही संवारना है।

विश्वजीत : चुप रहो, मै कहता हू मैने तुम्हें कहां भेजा था ?

दीप्ति : इंदु जीजी के पास। वे और जीजाजी दोनों दीवाली की रात मनाने जा रहे हैं, जाहिर है कि पूजा पर नही आयेंगे।

विश्वजीत : नही आयेंगे, क्यो नही आयंगे ? और मनीषा कहां है ?

दीप्ति : मुझे क्या मालूम कहां है ? गयी होंगी किसी मित्र के साथ दीवाली की रात मनाने वे भी।

विश्वजीत : क्या हो गया है दुनिया को ? सब अकेले-अकेले अपने लिए ही जीना चाहते हैं। दूसरे की किसी को चिंता ही नही रह गयी है। एक हमारा जमाना था कि बड़ों की इजाजत के बिवा कुछ कर ही नहीं सकते थे।

विवेक : पापा ! आपका जमाना कभी का बीत गया। अब बीते जीवन की धड़कनें सुनने से अच्छा है कि वर्तमान की सांसो की रक्षा की जाये।

दीप्ति : लेकिन कुछ लोग है जो बीते इतिहास में ही रहना पसद करते है।

विश्वजीत : बद करो यह अपनी किताबी भाषा। हमें भी कुछ पता है। जो बीत जाता है, इतिहास बन जाता है, वही अपना होता है। उसको भूलकर वर्तमान की रक्षा कैसे की जा सकती है। लेकिन मै पूछता हूं तुम अब तक थे कहा ?

विवेक अशोक चाचा के घर गया था। पूजा के बाद ही वे आ सकेंगे और पूजा होने में अभी वहां काफी देर थी। दीपक भैया दीवाली की शुभकामनाए देने के लिए मुख्य मंत्री के घर गये हुए थे।

दीप्ति : पापा जब से दीपक भैया ने अपना दल छोड़कर मुख्य मत्री के दल का साथ दिया है, तबसे उनके मत्री बनने की बड़ी चर्चा है। शायद आज रात को ही घोषणा हो जाये।

विवेक : *हो जाये तो अच्छा ही है। मै अब तक सौ अर्जिया भेज चुका हू।* एक-सौ-एकवी अर्ज़ी उन्हे दूगा। इस बार मेरा काम अवश्य हो जायेगा।

विश्वजीत : लानत है ऐसा काम होने पर। भले-बुरे तरीकों का कुछ विचार ही नही रहा। गाधीजी ने कहा था···

विवेक : गाधीजी ने जो कुछ कहा था वह सब लिखकर आपने कमरे मे टाग रखा है। बडे आदमियो का कहा हुआ टांग देने भर के लिए ही तो होता है। यह देखिए ये टंगे है गांधीजी के बताए हुए भारतीय समाज के अवगुण। 'सिद्धातहीन राजनीति', 'काम बिना धन', 'अतर्रात्मा बिना आनद', 'चरित्र बिना ज्ञान', 'नैतिकताहीन व्यापार', 'मानवीयतारहित विज्ञान' और 'त्याग बिना पूजा'। **(बोलने के साथ-साथ उन पर प्रकाश पड़ता रहता है।)**

दीप्ति . यह सब बुर्जुआ भाषा है। इसका युग अब बीत गया। भला राज-नीति का सिद्धातों से धन का परिश्रम से, आनद का आत्मा से, ज्ञान का चरित्र से, व्यापार का नैतिकता से, विज्ञान का मानवीयता से और पूजा का त्याग से क्या सबध है ? **(दोनों हंसते हैं।)**

विश्वजीत · **(चीखकर)** चुप रहो। युग बीत जाता है, नैतिकता हमेशा जीवित रहती है।

विवेक · लेकिन उसके अर्थ बदल जाते है। जैसे दीप्ति की दृष्टि मे संवरने के अर्थ बदल गये।

विश्वजीत . तुम लोगों की भाषा मेरी समझ मे नही आती।

विवेक : और आपकी भाषा हमारी समझ मे नहीं आती। लेकिन भाषा की स्वतत्र सत्ता है कहा ? वह तो हमारी मान्यताओ की प्रतिध्वनि का आकार मात्र है। आप कहते है ऐसा होना चाहिए, हम कहते हैं ऐसा होता है।

विश्वजीत : ओफ्फ़ो, यह बहस बद करो। शरत कहा है, वह अब तक क्यों नहीं आया ?

दीप्ति शरत भैया भी भाभी के साथ दीवाली मनाने के लिए होटल गये है। पापा, आप जल्दी से पूजा कर लीजिए। हम भी वहां जायेंगे।

विश्वजीत तुम वहा नहीं जाओगे।

विवेक क्यो नही जायेगे ?

विश्वजीत क्योंकि मै कहता हूं। आखिर मै तुम्हारा पिता हूं।

विवेक : आप हमारे पिता है, इसमे कोई सदेह नहीं। लेकिन इसलिए ही आप हमे नहीं रोक रहे है। आप हमें इसलिए रोक रहे है कि आप हमें पैसे देते है। पिता तो आप शरत, इदु, मनीषा सभी के हैं। उन्हें रोक सके आप ? मै आप पर आश्रित हूं, लेकिन गुलाम नही।

विश्वजीत . **(कांपकर)** तुझे · तुझे रत्ती-भर शर्म नही। तुझे मालूम है कि तू क्या कह रहा है ?

विवेक · जो है वही कह रहा हूं। जो होना चाहिए वह नही कह रहा। दीपक भैया को मत्री बन जाने दो।

विश्वजीत दीपक, दीपक, दीपक। उसने जो कुछ किया है वह अनैतिक है। मैं तुम्हे अनैतिकता के रास्ते पर नही चलने दूगा।

विवेक : फिर वही बुर्जुआई भाषा। जीवन-भर नैतिकता की दुहाई देने के अतिरिक्त आपने और किया ही क्या ? आपसे वे लोग कही अच्छे है जो सिर्फ सफलता को अपना लक्ष्य मानते है।

विश्वजीत : मैं कहता हूं हद है। उस दलबदलू से तुम मेरी तुलना करते हो। तुम उससे नौकरी के लिए कहोगे ?

विवेक दिन-भर बैठे-बैठे अखबारो में इश्तहार देखना, फिर अर्जिया भेजना, इससे तो दीपक भैया के पास जाना कही अच्छा है। काम बनता हो तो किसी के भी पास जाने मे क्या बुराई है। **(तेजी से करुणा का प्रवेश।)**

करुणा : बहस, बहस, बहस। मैं कब तक इतजार करूंगी। तुम लोग आते क्यों नही ?

दीप्ति · हा, हां चलो पापा, जल्दी से पूजा कर लो।

विवेक : पूजा में देर कितनी लगती है। पांच मिनिट। पडितजी तो आये नहीं। बस आप तीन बार गायत्री मंत्र पढ लीजिए।

दीप्ति : गायत्री मत्र ही पढ़ना है तो वह यहां भी पढा जा सकता है। फिर पूजा की जरूरत ही क्या है ?

करुणा : पूजा की ज़रूरत है। वह हमेशा से होती आयी है। वर्ष में एक बार लक्ष्मीजी सबके घर आती है।

विवेक · (**व्यंग्य से हंसता है**) तो क्यों न मै आज एक अर्ज़ी लिखकर लक्ष्मीजी को ही दे दू।

विश्वजीत : चोऽप। देवी-देवताओ का मजाक उड़ाता है। तभी तो गांधीजी ने कहा था कि ज्ञान के साथ चरित्र की भी ज़रूरत होती है।

विवेक : चरित्र, चरित्र, चरित्र। (**तीव्र होकर**) आपने चरित्रवान् होकर हमें क्या दे दिया पापा। आपके रास्ते पर चलकर बस में अर्जिया लिखना ही सीख सका हू। जिसने आपका रास्ता छोडा उसने ही सफलता प्राप्त की। विमल भैया कनाडा मे ऐश करते है। शरत भैया अपना जीवन जी रहे हैं। इदु जीजी भी अपना सुखी जीवन बिता रही है। और जिन दीपक भैया को आप चरित्रहीन कहते है वे मत्री बनने वाले है, तब आपके चरित्र को लेकर मैं उसे ओढ़ू या बिछाऊ।

दीप्ति : जाहिर है बिछाना चाहिए, ओढना तो गुलामी है। (**हंसी फूटते-फूटते सबकी क्रूर दृष्टि के कारण रुक जाती है।**)

करुणा : मै कहती हूं, तुम लोग चलेगे भी या नहीं ?

दीप्ति . (**सांस खींचकर**) चला भैया, लकीर पीटनी हैं, पीट लो, जब तक पीटी जा सके।

विश्वजीत : क्या दिन देखने पड़े हैं। 40-40 व्यक्तियों के बीच मे बैठकर पूरे विधि-विधान के साथ, घटा-घंटा भर पूजा की है, सब समाप्त हो गयी। बाकी रह गये दो असंतुष्ट बच्चे और एक गायत्री मत्र।

करुणा : मैं कहती हूं आज इस समय यह मनीषा भी कहां चली गयी।

दीप्ति : चिता न करो मम्मी। मनीषा दीदी बालिग हैं, चली गयी होंगी किसी के साथ दीवाली की रात मनाने।

करुणा : उसके लिए हम कुछ नहीं रहे, घर कुछ नही रहा। 'किसी' ही सब कुछ हो गया। सहने की भी हद होती है।

विवेक : सहने की कोई हद नही होती। मनीषा आज आप पर आश्रित नहीं है।

विश्वजीत : आश्रित न हो, पर इस घर की सतान तो है। हम क्या अपने पिता पर आश्रित थे.? परंतु क्या मजाल उनके हुक्म के बिना पैर घर के बाहर भी रख लें।

दीप्ति . पापा, तब लोग न तो चांद पर पहुंचे थे, न टेरीलिन पहनते थे। चुइगगम भी उस जमाने में कहां होगा ? यह नाभिकीय तकनीक का युग है पापा। 'कम्प्यूटर' मनुष्य से अधिक कुशलता से काम करता है। **(सहसा पुकारते हुए बाहर से अशोक का प्रवेश। आयु लगभग 60 के होगी। प्राय: विश्वजीत जैसे ही कपड़े पहने हुए है। चेहरे पर भोलापन है।)**

अशोक : भैया ! कहा हो भैया ? आपको बधाई हो। आपका दीपक मंत्री बन गया है। **(सब सहसा उत्तेजित हो उठते हैं।)**

विवेक : सच चाचाजी ?

दीप्ति . मैं अभी जाकर भैया को बधाई देती हू। वैसे मंत्री बनना है तो बुर्जुआपन, पर भैया ने कुछ करके दिखाया तो।

करुणा · मुझे बहुत खुशी है, बहुत खुशी। दिन भर बहस करने, अर्जियां लिखने और हिप्पी बनने से यह कही अच्छा काम है।

विश्वजीत : हां, उससे तो अच्छा ही है। मुझे भी बहुत खुशी है। वह कहां है ? उसे यहां आना चाहिए था।

अशोक : अभी तो वह घर भी नही आया। मैंने अकेले ही पूजा की है। बिलकुल अकेले। **(सहसा दीप्ति को देखकर)** अरे, मैंने तो देखा ही नही था। दीप्ति बेटी, तू तो सचमुच हिप्पन बन गयी है। तंजेब का सफेद कुर्ता, आधी बांह का लाल स्वेटर, काला तंग पाजामा, पैरों में पायजेब, कानों में लबे-लबे वाले और यह बिखरे हुए बाल।

विवेक : चाचाजी, आप जिसे बिखेरना कहते है, उसका अर्थ इनकी भाषा में संवारना है। और यह तग पायजामा नही है 'बैलबोटम' है। लेकिन छोड़िए इस बात को, मैंने अभी-अभी 101-वी अर्जी लिखकर तैयार की है। उसे आप अपनी सिफारिश के साथ दीपक भैया को दे दीजिए। आप तो जानते ही है, बिना सिफारिश के आजकल कुछ होता ही नहीं। इस बार मुझे नौकरी मिल जानी चाहिए।

अशोक : नौकरी मिलेगी, जरूर मिलेगी; अब नहीं मिलेगी तो कब मिलेगी। लेकिन बेटा शोर नही मचाना चाहिए। काम करने का एक तरीका होता है।

विश्वजीत : वही तो मैं कहता हूं लेकिन हर बार ये मुझे बुर्जुआ कहकर चुप कर देते हैं।

करुणा . लेकिन मैं कहती हूं, आप लोगों को मनीषा का कुछ भी ध्यान नही

है। वह अभी तक नहीं आयी। अगर वह इंदु के साथ गयी है तो उसे सूचना देनी चाहिए थी। यह औलाद तो बस ··(**फोन की घंटी बजती है।**)

विवेक : ममी आपने कहा और सूचना आ गयी। (**मेज़ के पास जाकर आला उठाता है**) हलो, विवेक बोल रहा हूं। ओह, आप है। आपके लिए तो दीदी हमने कुओं में बांस डलवा दिये। आप बोल कहां से रही है ? और आपकी आवाज़ मे यह इतनी गंभीरता कैसी है ? क्या कहा, पापा को फोन दू। तो आप मुझे नहीं बताएंगी। अच्छी बात है, हम भी देखेगे। अच्छा बाबा, नाराज़ न हो, अभी देता हूं। (**विश्वजीत से**) पापा ! मनीषा दीदी आपको बुला रही हैं। (**विश्वजीत पास आकर आला ले लेते है।**)

विश्वजीत . हलो ! कौन मनीषा बेटी हां, हां, मै विश्वजीत बोल रहा हूं। तुम कहां हो ? पूजा के लिए हम तुम्हारी राह देख रहे है। हां, हा, कहो। क्या ? (**सहसा मुख विवरण हो जाता है**) क्या कहा ? फिर तो कहना। सच ? तुम घर नहीं आओगी ? नही, नही, यह सब झूठ हैं···मैं···मैं···कहता हूं··· (**आला हाथ से छूटकर गिर पड़ता है। वह धम्म से सोफे पर गिर जाते हैं। पृष्ठभूमि में तीव्र सगीत उभरता है और सब उन्हें घेर लेते हैं।**)

करुणा : क्या हुआ ? क्या कहा मनीषा ने ? बोलते क्यो नहीं ? मेरी ओर ऐसे क्या देख रहे हो ?

विश्वजीत : (**जड़वत्**) मनीषा ने शादी कर ली है।

करुणा : शादी कर ली ? किससे ?

विश्वजीत : तुम सब जानती हो।

करुणा : (**खोयी-खोयी**) तो मनीषा ने असद से शादी कर ली।

विवेक : दीदी ने शादी कर ली और हमे बताया भी नहीं। मै अभी जाता हूं।

दीप्ति : (**उल्लास में**)मैं बहुत खुश हूं। दीदी जिंदाबाद, मनीषा दीदी ज़िंदाबाद। मै अभी जाकर दीदी को बधाई देती हूं।

अशोक : चुप रहो। मैं यह जानना चाहता हूं, यह असद है कौन ?

करुणा : 'लेक्चरार' है। उसी कालेज मे पढ़ाता है, जिसमे मनीषा पढ़ाती है।

अशोक : आपको पता था भाभी कि मनीषा उससे शादी करना चाहती है ?

करुणा : जी हां, उसने अपना निर्णय हमें बता दिया था। हमने बहुत समझाया, लेकिन वह अपना विचार बदलने के लिए किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुई।

विवेक : बदलने की ज़रूरत क्या थी ? उसने एक आदमी से शादी की है। उसका व्यक्तित्व है। वह स्वस्थ, सुदर, प्रतिभाशाली है, स्वभाव का मधुर है और खूब कमाता है। एक हिंदुस्तानी अपनी बेटी के लिए इससे अधिक और किस बात की आशा कर सकता है ?

दीप्ति : और वह मुसलमान भी कैसा है ? नमाज तक नही पढ़ता। देश के नेता कहते नही थकते कि आने वाली सतति को भेद की ये दीवारें तोड़ डालनी चाहिए। लेकिन जब हम उन दीवारो को तोड़ते हैं तो वही नेता पिता बनकर हमे रोकते है। नेता और पिता एक ही आदमी के दो मुखौटे। हुं।

विश्वजीत : (**ज़ोर से**) चुप हो जाओ। तुम दोनों बहुत बोलते हो।

अशोक : क्या आप अब भी इस विवाह को रुकवाना चाहते हैं ? दीपक को कहने से शायद कुछ हो सके। वह आखिर मन्त्री है।

करुणा : नहीं, अब कुछ करने की जरूरत नही। वह बालिग है और कमाती है।

विश्वजीत : हा, अब कुछ नही हो सकता। मैने मनीषा को खो दिया।

करुणा : उसे अधिकार था, उसने अपने लिए रास्ता चुन लिया।

दीप्ति : पापा, मै पूछती हूं, आप पूजा करेगे कि नही ?

विवेक : क्यों नही करेंगे ? हर साल करते आये हैं, अब भी करेंगे। स्वभाव जो बन गया है। मजबूरी है। लेकिन मै तो गायत्री मंत्र का शुद्ध उच्चारण ही भूल गया। कोई अर्थ भी नहीं रहा है याद करने का। निरा ढोंग। जहां अर्थ न हों वहां ढोंग ही को ढोना पड़ता है।

विश्वजीत : (**चीखकर**) चुप रहो।

(पृष्ठभूमि में तीव्र संगीत उभरता है और मंच पर सहसा अंधकार छा जाता है। (**पर्दा भी गिर सकता है**) जब फिर प्रकाश होता है (**या पर्दा उठता है**) तो मंच की स्थिति प्राय· पहले अंक जैसी ही है। विश्वजीत और करुणा सोफे पर बैठे हैं। विश्वजीत बहुत धीरे-धीरे जैसे अपने से ही बाते करते हों बोलते है।)

विश्वजीत : कैसा है यह मन ? बराबर कुरेदना लगी रहती है। कभी सोचता हूं, दूर कनाडा में बैठा हुआ विमल कैसा है ? उसका काम तो ठीक चल रहा है ? कभी इंदु के बारे में „सोचता हूं। उसकी गृहस्थी में सब सुखी होगे। फिर शरत का ध्यान आ जाता है। सोचता हू वह अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखता है कि नहीं। उसकी पत्नी उससे पूरी तरह सहयोग करती है कि नही। मनीषा से मैं अब भी नाराज़ हूं। मैं कभी नहीं चाहता था कि वह असद से शादी करे। फिर भी

मेरा मन सबसे अधिक उसी के लिए चिंतित है। उस अजनबी घर में वह कैसा अनुभव कर रही होगी ? वह दुखी तो नहीं है ? मैं तो यही चाहता हूं कि सब सुखी रहे। मैं अपनी संतान को सुखी देखना चाहता हूं। मन से चाहता हूं। पर संतान है कि इसे मजबूरी कहती है, स्वार्थ कहती है।

करुणा : ठीक ही तो कहती है। तुमने आखिर उनके लिए किया क्या ? प्यार और पैसा ही तो सब कुछ नहीं। उनके भविष्य की कभी तुमने चिंता की ? कभी बने उनके मित्र ? अब जब वे अपना-अपना मार्ग चुन रहे है तो तुम्हें यह खटकता है।

विश्वजीत : हां, यह तो सही है कि मैं उनका भविष्य बनाने के लिए कुछ नहीं कर पाया, लेकिन मैं उन्हें उनका मार्ग चुनने से रोकता कहा हूं ? मेरी चिंता तो यही है कि वह मार्ग बस ठीक हो। अब देखो यह दीप्ति है। अल्हड़ उम्र की लड़की है। जरा भी तो नहीं सुनती। इसकी पोशाक, इसका व्यवहार देखकर मुझे तो डर लगता है। किसी दिन कहीं कुछ हो न जाये और यह विवेक तो··· **(सहसा दीप्ति और विवेक का तेजी से बहस करते हुए प्रवेश।)**

दीप्ति : मैं कहां जाती हूं ? कहां नहीं जाती ? तुम्हें इससे मतलब ? तुम अपनी अर्जियों की संख्या याद रखो।

विवेक : मैं पापा से कह दूंगा कि तुम सिगरेट पीने लगी हो।

दीप्ति : कह दो।

विवेक : डर नहीं लगता।

दीप्ति : तुम्हें बहुत लगता है न। तुमने चुपचाप विदेश जाने का कार्यक्रम नही बना लिया है। **(बोलते-बोलते दोनों सोफे के पास आ जाते हैं।)**

करुणा : मैं कहती हूं, यह क्या बात है ? तुम दोनों हमेशा बहस ही करते रहते हो। कहां से आ रहे हो तुम ? दीपक ने क्या कहा विवेक ?

विवेक : मैं दीपक भैया के पास नही जाऊंगा।

करुणा : क्यों नही जाओगे ?

विवेक : वे अच्छी तरह बातें नहीं करते। चाचाजी की बात भी नही सुनते। उन्हें बस इसी बात की चिंता है कि वे कितने दिन कुर्सी पर रहते है ?

विश्वजीत : तो यूं क्यों नहीं कहते कि तुम्हारी 101-वी अर्जी भी बेकार हो गयी।

विवेक : हो जाने दो। मैं अब अर्जियां नहीं लिखूंगा।

करुणा : तो क्या करोगे ?

विवेक : मैं विद्रोह करूंगा। मैं उनका साथ दूं जो सब कुछ विध्वंस करना चाहते हैं।

विश्वजीत : (**व्यंग्य से**) ध्वंस, विद्रोह, क्रांति, खूब ये शब्द याद कर लिए है। अर्थ भी समझे हैं कभी इनके। क्राति का अर्थ ध्वस करना नही है। है निर्माण करना और उसके मूल में है कर्तव्य। देश और समाज के प्रति तुम्हारे कुछ कर्तव्य है। उनको भूलकर तुम क्राति का स्वप्न ले सकते हो, क्राति कर नही सकते।

विवेक : पापा, कर्तव्य पर आपके भाषण बहुत बार सुन चुका हूं। कर्तव्य की दुहाई दे-देकर आप लोगों ने सदा अपना स्वार्थ साधा है। संयुक्त परिवार में बाधे रखा है। अब भी आप चाहते हैं कि हम आपकी बैसाखी बने रहे। नहीं पापा ! बैसाखियों का युग अब बीत गया।

विश्वजीत : दो किताबें क्या पढ ली है कि जो मुंह में आता है बक देते हो। कर्तव्य को बैसाखी कहते हो। ऐं।

विवेक : कर्तव्य के जो अर्थ आप हमे समझाना चाहते है, उसका अर्थ तो बैसाखी ही है, लेकिन मै नही बनूगा किसी की बैसाखी। टूट जाऊगा पर उपदेश नही सुनूगा। सब कुछ को तोड़कर रख दूगा। जला दूगा…

दीप्ति : शाबाश विवेक भैया ! शाबाश, जिंदाबाद।

करुणा . चुप रहो। बैठे-बैठे सोचना और फिर जोर-जोर से बहस करना और कुछ नही रह गया है करने को। कल तक दीपक भैया के गुण गा रहे थे। आज बात तक नही करना चाहते उससे !

दीप्ति : आपको मालूम नही मम्मी। उनकी 15 दिन की हुकूमत अब समाप्त होने वाली है। उनकी सरकार का पतन निश्चित है।

विश्वजीत : सच ! मैं कहता न था कि ये सरकारे अनैतिक है…

विवेक : अनैतिक, अनैतिक। ये ही अगर मुझे नौकरी दिला देते तब भी क्या आप उन्हे अनैतिक कहते।

विश्वजीत . मैने कहा नही था।

विवेक : परंतु अशोक चाचा और दीपक भैया के सामने नहीं। मेरे अर्ज़ी देने पर भी नहीं। आज जो सफल है उनका सब कुछ नैतिक है। इसलिए मैंने भी अब सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया है। मै पांच साल के लिए विश्व-भ्रमण पर जा रहा हूं।

विश्वजीत : विश्व-भ्रमण ! वह किसलिए ?

विवेक · आज के बदलते हुए संदर्भों मे नैतिकता क्या है ? कर्तव्य और अधिकार की सही परिभाषा क्या हो सकती है ? क्या आज भी पारंपरिक नैतिकता और सांसारिक जीवन-मूल्यों से कर्तव्य को जोड़े रखा जा सकता है। ये प्रश्न मै घर-घर जाकर दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति से पूछूंगा। फिर एक पुस्तक लिखूंगा। और आपकी भाषा उधार लेकर कहूं तो, ईश्वर ने चाहा तो कुछ कर भी सकूंगा।

करुणा : करने को क्या इस देश मे कुछ नही है ? बाहर जाकर ही सब कुछ हो सकता है ?

विवेक · हा मम्मी, बाहर जा कर बहुत कुछ हो सकता है। अपने विमल भैया को ही देखो···

करुणा मैं तुझसे बहस नही कर सकती। इन बातों को समझने लायक बुद्धि मेरे पास नही है। लेकिन···

विवेक . समझने को इसमे क्या है ममा। मै इस घर की घुटन और सीलन से मुक्ति पाना चाहता हूं। इस घर में एक ऐसी बदबू है जो दिमाग को सुन्न कर देती है, लेकिन मै अपने दिमाग को सुन्न नही करना चाहता। मैं यंत्रणा से छटपटाना नही चाहता। मै उससे मुक्ति चाहता हूं।

करुणा . यह तेरा अतिम निर्णय है।

विवेक : आज जब वर्तमान प्रतिपल व्यतीत बनता जा रहा है, तब अंतिम क्या है, यह कहना वहुत कठिन है। परंतु यह निश्चित है कि परसों बहुत सबेरे मैं अपनी इस महायात्रा पर निकल पड़ूंगा।

विश्वजीत : लेकिन पैसा कहा से आयेगा ?

विवेक · पापा मैं जिस दल के साथ जा रहा हूं, वह एक भी पैसा नही ले जा रहा। पैसा व्यक्ति के संबध को कृत्रिम बनाता है। नैतिक-अनैतिक के अर्थ मे सोचने को विवश करता है। इसलिए आपको कुछ भी नही करना है। यहां तक कि ममी, तुम्हे आंसू भी नहीं बहाने है। अच्छा, कपड़े बदलकर मैं जरा मनीषा दीदी से मिल आऊं। वे लोग भी तो कनाडा जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। **(अंदर की ओर जाता है।)**

विश्वजीत : जाओ, सब जाओ। मैं कुछ भी नहीं कर सकता। बस सबको जाते हुए देख सकता हू।

दीप्ति : जाते देखना आपको बुरा लगता है पापा ? आप हल्का नही महसूस

करते ? आपको ऐसा नहीं लगता कि एक और बोझ उतर गया है आपके ऊपर से ?

करुणा : **(उठती हुई)** मैं कहती हूं यह बहस अब बंद भी करोगे। खाना नहीं खाना है तुम्हें। कब तक चूल्हा लिए बैठी रहूंगी ?

दीप्ति : **(हंसकर)** बैठे रहना तुम्हें अच्छा लगता है इसीलिए बैठी रहती हो। इसी को तुम कर्तव्य कहती हो और इसी को ममता। हमारी भाषा में यह महज़ एक आदत है। मजबूरी भी कह सकते है।

करुणा : रहने दे अपनी भाषा को। इस भाषा ने ही तो मनों तो तोड़ दिया है। जब देखो बहस-बहस। तुम्हारे जो जी में आये करो। मैं अब और इनजार नहीं करूंगी। **(भीतर जाती है।)**

दीप्ति : कैसे नहीं करोगी ? इंतजार करना तुम्हारी नियति है। लो चाचाजी भी आ गये। **(अशोक का प्रवेश)** आइए चाचाजी।

विश्वजीत : आओ अशोक, बैठो।

अशोक : दीपक से सुना कि विवेक विश्व-यात्रा पर जा रहा है।

विश्वजीत : सुना तो मैंने भी है।

अशोक : रोकोगे नहीं ?

विश्वजीत : पहले किसी को रोक सका हूं क्या ? जाते देखना ही मेरे भाग्य में लिखा है। मेरे क्या, हम सबके। तुम भी क्या दीपक से कुछ करवा सके ?

अशोक : कौन किसकी सुनता है आजकल ? और उसे भी क्या दोष दूं ? उसके ऊपर भी बहुत से लोग है। जो सबसे ऊपर है, वह भी सिफारिश करता है और अब तो उसकी सरकार का पतन हो गया है।

विश्वजीत : क्या कहते हो, पतन हो गया ?

अशोक : हां, शासक दल के कुछ लोग विरोधियों से जा मिले। दीपक भी निराश होकर वापिस चला आया। उसे बहुत आशा थी उनसे कि देश के लिए कुछ करेंगे···

विश्वजीत : **(सहसा हंसकर)** देश का खूब नाम लिया तुमने। आजकल सभी देश के दर्द के नाम पर शहादत का जाम पीते हैं।

दीप्ति : **(सहसा उत्तेजित होकर)** यह सब झूठ है। देश है कहां ? देश के भीतर एक और देश बनाये बैठे है हम। भीतर के देश का नाम है स्वार्थ जो प्रांत, प्रदेश, धर्म और जाति—नाना रूपों मे प्रकट होता रहता है। अखबारों मे भ्रष्टा-

चारों की कहानियां छपती हैं। बेपनाह दौलत की कहानियां छपती हैं। खुले आम गुण्डागीरी की कहानिया छपती है। झूठे दिलासों से पन्ने भरे रहते हैं। झूठे दस्तावेज़ तक छपते है, जिससे विरोधियों को मारा जा सके। इन सब बातों की किसी देशभक्त को चिंता नही है।

अशोक : (**तीव्र होकर**) तो किस बात की चिंता है ? मैं पूछता हूं, तो किस बात की चिंता है ?

दीप्ति : सुनना चाहेंगे ? अच्छा लगेगा सुनना ? तो सुनिए। उन्हें बस एक बात की चिंता है—नयी पीढी को कही सही नेतृत्व न मिल जाये। वे हताश और निराश बने रहें और बूढ़े लोग लोग मृत्यु की अंतिम पग-ध्वनि सुनने तक ऐय्याशी और अधिकार की गंगा में डूबे रहें, लेकिन मै कहती हू कि अब वह युग आ रहा है, जब आदमी के भीतर और बाहर की कोई करतूत छिपी नही रह सकती। वह नंगा हो जायेगा। और उसी नगी लाश पर नयी सभ्यता जन्म लेगी। (**करुणा का तेजी से प्रवेश।**)

करुणा : यह चीख-चीखकर किसको जगाया जा रहा है। मैं पूछती हूं, तू खाना खायेगी भी या नही ?

दीप्ति : अभी नहीं।

करुणा : तो मैं क्या करूं ?

दीप्ति : रामायण के आरभ में भाग्य-विधि पढ़ने का जो कोष्ठक है, उसमें हम सबके भविष्य की खोज करो।

अशोक : आपने इस लड़की को बहुत सिर चढ़ा लिया है भैया !

विश्वजीत : मैने ? कभी कुछ किया है मैंने ? अभी कुछ करने लायक हुआ हूं ? (**विवेक का प्रवेश।**)

विवेक : अच्छा चाचाजी हैं। चाचाजी, अब आपको दीपक भैया से कुछ नही कहना है। मैं परसों विश्व-भ्रमण के लिए निकल रहा हूं और हां पापा, आज रात मैं मनीषा दीदी के घर रहूंगा।

दीप्ति : ज़रा रुको, मैं भी चलती हूं।

विवेक : चलो ! (**हंसकर करुणा से**) ममी ! आशीर्वाद की बात करना है तो बुर्जुआपन, फिर भी आप लोगों को खुश करने के लिए मैं बाकायदा आशीर्वाद ग्रहण करने आऊंगा। चलो दीप्ति !

दीप्ति : पापा जाऊं मैं ? मेरी अच्छी मम्मी, खाना मैं वहीं खा लूंगी।

(दोनों जाते हैं। एक क्षण सब स्तब्ध रहते है, फिर दीर्घ निःश्वास लेकर विश्वजीत बोलते हैं।)

विश्वजीत : अब तू ही बता अशोक, मै हूं कही ?

अशोक : हम कही नही हो सकते। अच्छा ही है।

करुणा : सब चले गये। अब तुम तो खाना खा लो।

विश्वजीत : खाना ? हा, वह भी एक मजबूरी ही है। आओ अशोक, तुम ही आ जाओ। बहुत दिन हुए साथ बैठकर खाये।

अशोक : साथ बैठकर ? हा, जैसे पुराने जन्म की बात हो। ऐसा लगता है यह जीवन तो जैसे सारे का सारा निरर्थकता मे खो गया।

विश्वजीत : और ये लोग कहते हैं कि जो निरर्थक है वही सबसे अधिक सार्थक है। निरर्थकता मे ही अर्थ की खोज की जा सकती है।

अशोक : पता नही, अर्थ जब चुक ही गया तो उसकी खोज क्या ?

(बोलते हुए वे अदर चले जाते हैं। मच पर अंधकार उतरने लगता है। दो क्षण बाद जब आलोक फिर उभरता है तो वहां पर व्यवस्था दिखायी देती है। भोजन-टेबुल के आस-पास मंझला बेटा शरत, बड़ी बेटी इंदु, मंझली बेटी मनीषा और छोटी बेटी दीप्ति बैठे चाय पी रहे हैं और बातें कर रहे हैं। सब आधुनिक हैं। दीप्ति किंचित् परिवर्तन के साथ उसी हिप्पी वेश में है।)

दीप्ति : एक युग के बाद आज हम सब यहां इकट्ठे हुए है। क्यों शरत भैया, पिछली बार कब आये थे आप ?

शरत : फुर्सत कहां रहती है याद रखने की। आया तो हू एक-दो बार भागते भागते, पर तू थी नहीं।

इंदु : मैं भी इधर कम ही आ पायी। मकान का काम फैला है न। हां, ममा कहां गयीं ?

दीप्ति : जाती कहां ? पड़ौस में हैं। पापा के लिए बड़ी चिंतित है। तभी आप सबको बुलाया है। लो वे आ गयीं। **(करुणा का प्रवेश।)**

शरत : नमस्ते ममी !

इंदु : नमस्ते ममी !

मनीषा : नमस्ते ममा !

करुणा : **(बैठती हुई)** नमस्ते। तो तुम सब आ गये। फुर्सत मिल गयी ?

शरत : फुर्सत कहां है ? लेकिन तुमने बुलाया तो आना ही था। बात क्या है ?

इंदु : हां, आप कुछ बहुत गंभीर मालूम होती है।

मनीषा : दीप्ति कहती है आप पापा के बारे मे चिंतित है।

करुणा : दीप्ति ठीक कहती है। मैने आज तुम सबको तुम्हारे पापा के संबंध मे बाते करने के लिए बुलाया है। उनकी हालत दिन-पर-दिन खराब होती जा रही है। जैसे जड़ हो गये है। कोई रस ही नही रह गया है जिंदगी में। किसी से जरा भी राग नही। मुझ से भी नही। बोलती हू तो बस बोल भर लेते है। नही तो अकेले बैठे शून्य में कुछ खोजा करते हैं या फिर बड़बड़ाया करते है। और इधर तो मैंने उनमें एक नयी बात देखी है।

शरत : क्या बात है वह ?

करुणा : बहुत बुरी बात है। वे गाली देने लगे है।

इंदु . क्या कहती हो ममी ? पापा गाली देते है तुमको ?

मनीषा : मै नही मानती। मैने पापा की इच्छा के विरुद्ध काम किया है। वे अभी तक असद को स्वीकार नहीं कर सके, लेकिन जब कभी वे मिलते हैं तो, कोई ऐसी बात नही करते जिससे उनका क्रोध ज़ाहिर हो।

शरत : पापा कैसे भी हो गाली उन्होने किसी को नही दी।

दीप्ति : गाली तो वे मुझे भी नही देते। हालाकि वे मुझसे बेहद नाराज़ है।

करुणा : मैं कहती हूं क्या तुम हमेशा अपनी ही आवाज़ सुनते रहोगे ? पूरी बात सुने बगैर ही अपनी राय देने लगे। मैंने यह कब कहा कि वे किसी दूसरे को गाली देने लगे है। (**गंभीर होकर**) काश वे मुझे गाली दे सकते। मुझे ज़रा भी दुख नही होता, लेकिन वे तो अपने को गाली देते है। कोसते हैं, रोते हैं।

इंदु : यह बिलकुल दूसरी बात है। जिनका दूसरो पर बस नही चलता वे ही अपने को कोसा करते है।

शरत : स्पष्ट है कि वे हीन-भाव का शिकार हो गये हैं। घोर निराशावादी है। कभी-कभी ऐसे लोग पागल तक हो जाते हैं।

करुणा : यही तो मैं कहती हू। तुम लोग उनके बारे में सोचते क्यों नही ? तुमने सदा अपने-अपने मन की। अपनी-अपनी आवाज़ सुनी। हम किसी को रोक नही पाये। विमल कनाडा मे बैठा है। कभी-कभी पैसे भेजकर दायित्व से मुक्ति

पा लेता है। विवेक न जाने किस प्रश्न का उत्तर पूछता हुआ घूम रहा है। कभी मिला है किसी के प्रश्न का उत्तर जाने दो। अब इस दीप्ति को ही देखो। क्या रूप बनाया है इसने। सिगरेट तक पीती है। देर तक मित्रों के साथ घूमती रहती है और अब कहती है छात्रावास में जाकर रहूगी।

दीप्ति : ममा ! आप मुझे समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते ? आप प्यार करते है। ममता प्रगट करते हैं, समझने की कभी कोशिश नही करते। मैं कहती हूं किसी को समझना ही प्यार करना है। आप यह क्यों नहीं सोचती कि छात्रावास मे रहने में सुविधा है। डाक्टरी की पढाई आसान नही है। मित्रों के साथ घूमती हूं, लेकिन आवारागर्दी तो नही करती। सांस्कृतिक कार्यक्रमों मे भाग लेने के कारण देर से लौटती हू और आपको परेशानी होगी यह सोचकर, कभी-कभी नितीन के साथ चली जाती हूं। नितीन और मै विवाह करने का निश्चय कर चुके है। मैं यह सब आपके भले के लिए ही करती हूं, फिर भी आप नाराज होती है तो मुझे चिंता नहीं।

करुणा : चिंता करने के लिए कौन कहता है ? चिंता हो भी क्यों ? पैसे मिल ही जाते है खर्च के।

दीप्ति : (**तेज होकर**) वही एक बात, पैसे, पैसे। आप नही देना चाहते तो, न दीजिए, कर लूगी अपना प्रबंध, नहीं पढ़ूंगी, लेकिन इस घर मे नहीं आऊंगी। इस सीलन-भरे घर में जहां हर वक्त लिजलिजे झीगुरों के चलने की सुरसुराहट होती रहती है। मेरा दम घुटता है यहां।

करुणा : तुम जाती हो तो चली जाओ, रोकता कौन है ? पर इस तरह चीखो मत। आखिर इसी घर में हमने भी तो दिन काटे हैं। (**पराई बेटी थी**) चालीस-चालीस लोगों के बीच मे रही हूं।

दीप्ति : कभी सोचा है मामा, कहां गये वे 40 लोग ? और क्यों गये ?

करुणा : मैंने सब कुछ देखा और सोचा है। पर जाने दो उन बातो को। इस वक्त मुझे चिंता है तुम्हारे पापा की। आज वे बहुत सवेरे ही घर से निकल गये थे। अभी तक नहीं लौटे हैं। तुम उन्हें देखो आखिर तुम्हारा भी तो कुछ दायित्व होगा। मुझे बहुत डर लगता है।

मनीषा : ममा ! अभी तीन-चार घंटे पहले मैं असद के साथ रेल से घर लौट रही थी तो मैंने पापा को देखा था।

करुणा : कहा देखा था ?

मनीषा : पुल के उस पार। रेल की पटरी के पास खड़े हुए।

शरत : रेल की पटरी के पास ?

इंदु : वहा वे क्या करने गये थे ?

दीप्ति : घूमने तो वे उस ओर कभी नहीं जाते।

करुणा . यही डर तो मुझे खाये जा रहा है। तुम लोग जाओ और देखो, वे कहां है ?

मनीषा : इतना डरने की आवश्यकता नही ममी। मैंने चलती रेल से उनको पुकारा था। तुम तो जानती हो, वहा आकर रेलो की चाल कितनी धीमी हो जाती है। इसलिए चौककर उन्होंने मेरी ओर देखा था और मुस्कुराये थे।

शरत : हां ममी ! पापा आ जायेंगे। चिता की कोई बात नही।

करुणा : चिता की बात मुझ पर छोड़ो। साफ-साफ कहो कि तुम उन्हे देखने नही जाना चाहते।

शरत : तुम तो व्यर्थ मे ही नाराज हो जाती हो ममी। जाने से किसने मना किया है, लेकिन सवाल फुर्सत का है। तुम्हें मालूम है मुझे पेट्रोल पप मिलने वाला है। उसी के लिए पैसे लगाने वाले का प्रबंध कर रहा हू, लेकिन जब तक ऊपर की सिफारिश न हो, तब तक कुछ नहीं हो सकता। आज उसी ऊपर वाले का मुझे जुगाड़ करना है। दीपक भैया ने मुझे आठ बजे बुलाया था और अब सवा-सात बजे है। **(उठता है।)**

करुणा : तब तुम क्या देखोगे ? जाओ भाई। ऊपर वाले का जुगाड़ करो। **(शरत जाता है।)**

इंदु : जाना तो मुझे भी है ममी।

करुणा : तुम्हें कहां जाना है ?

इंदु : आपको मालूम नही हम मकान बनवा रहे हैं ? और मकान बनवाना कितने कसाले का काम है ? सरकार से कर्ज लिया, बीमा कंपनियों से कर्ज लिया, मित्रो से कर्ज लिया, फिर भी परेशानी से छुट्टी नहीं मिली। सच कहती हू ममी, हम दोनो खाना-पीना भूल गये है। किसी एक को वहां रहना ही पड़ता है। न रहे तो सामान गायब हो जाता है। अभी उस दिन लोहे की छड़ें उठ गयी थी। कल दस बोरी सीमेंट की गायब हो गयी। अब बताओ, दो आदमी क्या-क्या देखे ? अच्छा ममा, चलू, मज़दूरो का हिसाब भी करना है। **(जाती है।)**

करुणा . मैं पूछती हूं तुममें से कभी कोई यह भी सोचता है कि मां अब बूढ़ी हो गयी है। खाना बनाते समय उसके अब हाथ कांपते है।

मनीषा : खाना बनाने का इंतज़ाम तो हो सकता है, लेकिन पापा का क्या करोगी ? तुम्हारे हाथ का बनाया खाना ही वे खा सकते है।

करुणा : इसीलिए तो मै किसी से कुछ नही कह सकती, लेकिन अब उन्हें ढूंढ़ने कहा जाऊ ?

दीप्ति : कहीं भी नहीं। आप तो व्यर्थ में परेशान होती है। पापा स्वयं ही चले आयेंगे। ममा, मैं सोचती हू क्यो न मै मनीपा दीदी के साथ ही चली जाऊ ?

करुणा : तू अभी जाना चाहती है, इसी वक्त ?

दीप्ति हा, ममा। तुम जरा भी मत डरो। परसों जरूर आऊंगी। मेरा जन्म दिन है न। परसो मैं बालिग हो जाऊंगी। यानी स्वतन्त्र। ओह, स्वतंत्र होना भी कितनी अच्छी बात है। है न ? घबराओ न ममी। मै अपनी जिम्मेदारी समझती हू। छात्रावास मे किसी दूसरे का डर नही। डर है तो केवल अपने से। और जो अपने से डरता है, वह अपना दायित्व समझता है। मैं बंधनों को तोड़ डालना चाहती हू। व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती हूं। पर मैं जिंदगी को नही। ज़िंदगी से मुझे प्यार है (**उसी समय शरत और विश्वजीत मंच पर प्रवेश करते हैं।**) अरे लो ममा ! पापा तो यह आ गये। बिलकुल ठीक हैं। मेरा मतलब है, न बदन पर कहीं चोट है न चेहरे पर कोई परेशानी है।

शरत : लो संभालो ममा ! तुम नाहक इतना डर रही थीं। पापा तो स्वयं ही आ रहे थे, लेकिन मैं अब चला। पैसा लगाने वाले का प्रबंध न हुआ तो पेट्रोल पंप हाथ से निकल जायेगा। (**जाता है।**)

विश्वजीत : (**सोफे पर बैठता है**) हा, हा, तुम जाओ, सब जाओ। तुम लोग यहा रुक ही कैसे सकते हो। इस रुकी हुई जिंदगी में। मैं पूछता हू तुम लोग यहा आये कैसे ?

करुणा : और मै पूछती हूं आप सबेरे से कहां थे ? (**चाय-नाश्ता देती है।**)

मनीषा : पापा, आप चार घंटे पहले रेल की पटरी के पास खड़े थे न ?

करुणा : आप वहां क्या करने गये थे ?

विश्वजीत : **(शांत भाव से चाय पीते हुए)** जो तुम लोग समझ रहे हो वही करने गया था।

मनीषा : यानी खुदकुशी ? नहीं, यह नही हो सकता। यह झूठ है।

विश्वजीत : जब तुम इस बारे मे सोच सकते हो तो हो क्यो नहीं सकता। लेकिन छोड़ो इन बातों को। **(सहसा कहीं खो जाते हैं)** मनीषा बेटी ! तुमने जब मुझे पापा कहकर पुकारा था, तब मुझे ऐसा लगता था कि सारा आकाश इस एक शब्द से भर उठा है। मैने सोचा, खुदकुशी का अर्थ है मौत और मौत का एक दिन निश्चित है। तब खुदकुशी करना बेकार है। जान क्यों दी जाये ? अंतिम क्षण तक उसे बचा रखना चाहिए, वह कुछ देखने के लिए जो होने वाला है। अपने को दर्शक बनने से वंचित करना कहां की बुद्धिमानी है ? सो मैं लौट आया।

करुणा : बहुत अच्छा किया। राह देखते-देखते मै तो पागल हो गयी थी।

मनीषा : ममी, पापा तुमसे मज़ाक कर रहे हैं। ये खुदकुशी करने नहीं गये थे। अच्छा पापा, अब मै चलूं।

दीप्ति : दीदी, मैं भी आती हू। पापा, भूल न जाइएगा। परसों मेरी वर्षगाठ है, मै बालिग हो जाऊंगी।

विश्वजीत : तो तुम भी बालिग हो जाओगी ? सब कुछ करने को स्वतंत्र। अच्छा बेटी। तुझे भी बालिग होते देखूगा। वैसे मुझे कुछ पता नही, तुम कब बालिग होते हो और कब नाबालिग। सच पूछा जाये तो मैं यह भी नही जानता कि मैं स्वयं बालिग हूं या नाबालिग। **(सब हंस पड़ते हैं। मनीषा और दीप्ति दोनों चली जाती हैं। कई क्षण तक विश्वजीत और करुणा दोनों मौन बैठे रहते हैं। फिर करुणा बोलती है।)**

करुणा : क्यों जी, क्या आप सचमुच खुदकुशी करने के लिए गये थे ?

विश्वजीत : पहले मेरी एक बात का जवाब दो।

करुणा : किस बात का ?

विश्वजीत : मैं न जीता हूं न मरता हूं। खुदकुशी क्या इससे कुछ अलग चीज़ है ?

करुणा : इसीलिए तो मैं कहती हूं कि आप भी यह क्यों नहीं मान लेते कि आप स्वतंत्र हो गये है, बच्चों के दायित्व से स्वतंत्र। स्वतंत्र होना कितना अच्छा है।

विश्वजीत : अच्छा तो है, परंतु अपनी मजबूरियों का मैं क्या करूं ? स्वभाव की मजबूरी, बच्चों को प्यार करने की मजबूरी, उनका बाप होने की मजबूरी। (**हंसता है**) बाप होने की मजबूरी। उनको खो देने पर यह आशा रखने की मजबूरी कि एक दिन वे लौट आयेंगे।

(हंसता रहता है। करुणा सशंक भाव से उसकी ओर देखती है, लेकिन हंसी नहीं रुकती। इसी हंसी पर पर्दा धीरे-धीरे गिर जाता है।)

बंदी

—जगदीशचंद्र माथुर

चरित्र

राय तारानाथ
हेमलता : उनकी पुत्री
बीरेन
आया
चेतराम
लोचन
बालेश्वर उर्फ बी. पी. सिन्हा
करमचद बरैठा
कुछ आवाजें

(पहला दृश्य)

(उत्तर भारत के एक गांव मे एक बड़े घराने के बगले का बगीचा। पृष्ठभूमि मे मकान की झलक। मकान मे जाने के लिए बायीं तरफ से रास्ता है और बाहर जाने के लिए दाहिनी तरफ से। समय चैत्र पूनो की सध्या। चांदनी का साम्राज्य गोधूलि वेला में ही फैल रहा है। राय तारानाथ हेमलता के साथ एक स्थान की ओर सकेत करते हुए आते है।)

राय तारानाथ : और यही वह स्थान है जहा तुम्हारी मा पूजा के बाद तुलसीजी को पानी चढ़ाने आती और मैं···

हेमलता : आप तो नास्तिक रहे होगे, पापा ?

राय तारानाथ : तुम्हारी मां को चिढाने के लिए। लेकिन उनकी श्रद्धा अडिग थी।···और तभी मै बगीचे के किसी कोने मे शायद···वही तो···वह देवव्रती हो न पत्थर ?

हेमलता . याद है।

राय तारानाथ : क्या याद है ?

हेमलता : कि उस पत्थर पर बैठकर आप मुझे सितारों की कथा सुनाया करते थे। (**रुककर मानो कुछ याद आयी हो**) पापा, कलकत्ता मे सितारो-भरा आसमान मानो मेरे मन के कोने में दुबका पड़ा रहता था, लेकिन यहां···(**स्निग्ध स्वर**) गाव आते ही ऐसे ही खिला पड़ता है जैसे आज इस चैत्र पूनो की चांदनी !

राय तारानाथ : आसमान भी खिला पडता है और तुम्हारा मन भी, बेटी !··· (**हसता है। कुछ रुककर**) बजा क्या है ? (**आहिस्ता से**) गाड़ी का तो वक्त हो गया होगा ?

हेमलता : आप भी, पापा ! (**रूठकर**) समझते है कि मुझे यू तो चादनी भाती ही नही, सिर्फ़···

राय तारानाथ : (**बात पूरी करते हुए**) बीरेन की इंतजारी की घड़ी में ही खिली पडती है। (**हंसते हैं**) बुराई क्या ? बीरेन भला लड़का है, इसीलिए तो यहां आने का न्योता दिया है उसे ! देखू गांव की आभा उसके मन चढ़ती है या नही।

हेमलता : जैसे जन्म से ही शहर की धूल फांकी हो !

राय तारानाथ : वही समझो ! कहता था न कि बचपन मे पिता के मरने पर बरेली चला गया और उसके बाद लखनऊ और तब कलकत्ता।

हेमलता : मुझे भी तो आप बचपन में ही कलकत्ता ले गये और अब लाये है गांव में पहली बार—

राय तारानाथ : मै तुम्हे लाया हूं बेटी या तुम मुझे ?

हेमलता : पापा, आते ही मैं तो यहां की हो गयी। न जाने कितने युगों का नाता जुड गया। (**उल्लासपूर्ण स्वर**) यह हमारा घर, पुरानी कोठी, जिसकी दीवार मे पड़ी दरारें, मुस्कान-भरे मुखडे की सिलवटे है ! ये दूर-दूर तक फैले हुए खेत जिन पर दबे पांव दौड़ते-दौडते हवा उन पर निछावर हो जाती है; और यह चादनी जो जितना हसती है उतना ही छिपाती भी है ! (**तन्मय**) कलकत्ता में चैत्र की चांदनी और ईद के चांद मे कोई अंतर नही होता। लेकिन यहां, झोंपड़ियो पर, बास के झुरमुटों में, खेत-खलिहान पर, बे-हिसाब, बे-जुबान, बे-झिझक चांदनी की दौलत बिखरी पड़ रही है। ओह, पापा ! (**अपरिमित सुखानुभूति का मौन।**)

(**नेपथ्य से : "हेम बीबी, चाय तैयार है !"**)

राय तारानाथ : चाय ! इतनी देर में ?

हेमलता : आया की जिद ! कहती है सर्दी हो चली है, थोड़ी चाय पी लो। (**मकान की ओर रुख करके**) यहीं ले आओ, आया, बगीचे मे ! और दो मूढ़े भी !

राय तारानाथ : (**स्मृति के सागर में उतारते हैं**) सोचता हूं कि अगर तुम्हारी मा तुम्हारी तरह बोल या लिख पाती तो वे भी कवि या तुम्हारी तरह आर्टिस्ट होती।

हेमलता : अगर मां बोल पातीं तो आपको कलकत्ता न जाने देती।

राय तारानाथ : रोका था। दो-चार आंसू भी गिराये थे। लेकिन क्या-तुम सच ही ख्याल कर सकती हो, हेम, कि मैं न जाता ? कैसे न जाता ? सारे कैरियर का सवाल था। यह जमीदारी उन दिनों भरी-पूरी थी लेकिन आखिर को ले न डूबती मुझे अपने साथ।

हेमलता : काश, इस गाव में ही हाई कोर्ट होता ! यहीं आप वकालत करते और यहीं जज हो जाते।

राय तारानाथ : वाह, बेटी ! तब तो यहीं वह बड़ा अस्पताल भी होता जहां तुम्हारी मां की लंबी बीमारी का इलाज हुआ था, और यहीं वह कॉलेज और हाई स्कूल होते जहां तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा हुई और यही वे थियेटर सिनेमा···

(आया का प्रवेश। हाथ में ट्रे। अपनी धुन में बात करती है।)

आया : यही तो मैं कहती थी, सरकार ! हेम बिटिया की इस देहात में कैसे तबीयत लगेगी। सनीमा नही, थेटर नही, क्लब नही। **(पीछे की तरफ देखकर पुकारती हुई)** अरे ओ चेतुआ ! किधर ले गया मेज ?···देहात का आदमी, समझ भी तो मोटी है। **(चेतराम एक हाथ में छोटी-सी टेबिल और एक में मूढ़ा लिए हुए आता है)** उधर रख···हा, बस। **(मेज पर चाय की ट्रे रख देती है। चाय बनाती हुई)** आपके लिए भी बनाऊं, सरकार ?

राय तारानाथ . **(कुछ अनिश्चित-से मूढ़े पर बैठते हुए)** मे···रे···लिए···

आया : **(चेतराम को खड़ा देखकर)** अरे, खड़ा क्यों है ? दूसरा मूढ़ा तो उठा ला दौड़कर।

चेतराम · अभी लाया जी ! **(जाता है।)**

आया : लो बीबीजी, गरम कपड़ा न पहना तो गरम चाय तो लो **(प्याला पकड़ाती है।)**

हेमलता : तुम तो, आया समझती हो कि जैसे हम बरफ की चोटी पर बैठे हों।

आया : **(दूसरा प्याला बनाते हुए)** नही हेम बीवी, देहात की हवा शहर वालों के लिए चडी होती है, चंडी !

हेमलता : तुम भी तो देहात की ही हो, आया !

आया : अब तीन-चौथाई ज़िंदगानी तो गुजर गयी आप लोगों के संग। **(चाय का प्याला राय साहब की ओर बढ़ाते हुए)** लीजिए, सरकार ! **(राय साहब को देखकर कुछ चौंककर)** अरे !

राय तारानाथ : क्यों, क्या हुआ ? **(प्याला लेते हैं।)**

आया : आप भी सरकार गजब करते है। यहा खुले मे आप यों ही बैठे है। **(घर की तरफ तेज़ी से बढ़ती है।)**

हेमलता : किधर चली, आया ?

आया : **(जल्दी से)** ड्रेसिंग गाउन लेने।···साहब का बैरा कलकत्ता से आता तो ऐसी गफ़लत क्यों होती ? **(चली जाती है।)**

राय तारानाथ : हा हा हा ! गुड ओल्ड आया ! (**चाय पीते हुए**) समझती है कि सारी दुनिया नादान बच्चों का झुंड है और अकेली वह मां है।

हेमलता : क्या सच उसे देहात नहीं सुहाता, पापा ? मैं नही मान सकती। मगर··· (**चेतराम मूढ़ा ले आया है**) यही रख दो मूढ़ा, मेज़ के पास।

राय तारानाथ : मुझे ये पुराने मूढ़े पसंद है। कमर बिलकुल ठीक एंगिल में बैठती है। (**चेतराम को रोककर**) ए, क्या नाम तुम्हारा ?

चेतराम : जी, चेतराम !

राय तारानाथ : कहार हो ?

चेतराम : मुसहर हूं सरकार !

राय तारानाथ : मुसहरों की तो एक बस्ती थी करीब ही कही, गंदी-सड़ी। ··बाप का नाम ?

चेतराम : कमतूराम !···अब गंदगी नहीं है, सरकार !

राय तारानाथ : अरे, तू कमतू का लड़का है ?

हेमलता : क्यों नहीं है अब गदी बस्ती ?

(**आया का प्रवेश।**)

आया : लीजिए सरकार, ड्रेसिंग गाउन। जब बैठना ही है तो यहां खुले में··· अरे, तू यहीं खड़ा है, चेलू ?

राय तारानाथ : (**ड्रेसिंग गाउन पहनते हुए**) आया, यह तो उसी कमतू का लड़का है जो पंद्रह बरस पहले यहां···

आया : हां, सरकार ! मैंने तो उसे ही बुलाया था मगर उसने लड़के को भेज दिया। ख़ैर, जाने-पहचाने का लड़का है, चोरी-वोरी करेगा तो पकड़ना मुश्किल नहीं।

हेमलता : तुम तो, आया···

आया : अरे हां बीबीजी, अब ये देहाती सीधे-सादे नहीं रहे। हमारे-तुम्हारे कान काटते हैं। चेलू, चाय की ट्रे लेकर जल्दी आना। पलंग-वलग ठीक करने हैं। (**चलते-चलते**) देखू, बवर्ची ने खाना भी तैयार करा या नही। (**प्रस्थान।**)

राय तारानाथ : डीयर ओल्ड आया ! (**चाय की चुस्की लेता है।**)

हेमलता : चेतराम !

चेतराम : जी, बीबीजी !

हेमलता : मुसहर बस्ती मे अब गदगी नहीं है ! क्यों ?

चेतराम : बस्ती ही बह गयी, सरकार !

राय तारानाथ : बह गयी ?

चेतराम : पिछले साल बहुत जोर की बाढ़ आयी। हमारी तो बस्ती ही खत्म हो गयी। चालीस घर थे। मेरे दादा के पास धनहर खेत था आठ कट्ठा। जैसे-तैसे महाजन से छुड़ाया। वह भी बालू में पड़ गया। और कान्हू काका की चार बकरी थीं ! सब पानी···

राय तारानाथ : सरकारी मदद मिली ?

चेतराम : बातचीत तो चल रही है···पर अब तो हम लोग पहाड़ी की तलहटी मे चले गये है। नयी टोली बस रही है।

राय तारानाथ : ओ हो, बड़े जोम है। लेकिन वहा तो ऊसर जमीन है। खेती की गुंजाइश कहां ?

चेतराम : मुसकिल तो हुई है सरकार ! पर बारी-बारी से दस-दस जन मिलकर तैयार करते हैं। एक बांध बन जाये तो बेड़ा पार है सरकार !

राय तारानाथ : हिम्मत तो बहुत की तुम लोगो ने !

हेमलता लेकिन है मुसीबत ही। रोज़ का खाना-पीना कैसे चलता होगा इन लोगों का ?

राय तारानाथ : यही, नौकरी-मजूरी। जब मिल जाये।

चेतराम : वह तो हुई सरकार ! पर अब तो बांस का काम करने लगे हैं। हाट-बाज़ार मे बिक जाता है। इनसे भी बढ़िया मूढ़े बनाने लगे है।

राय तारानाथ · अच्छा ? लाना भई हमारे लिए भी एक सेट !

चेतराम : ज़रूर सरकार ! दादा तो इसी में लगे रहते है रात-दिन। मैंने भी टोकरी बनाना सीख लिया है, रग-बिरगी। लोचन भैया को बहुत पसद है। कहते है सहर में तो बहुत बिकेगी···

हेमलता : तो तुम्हारे भाई भी है ?

चेतराम : (**हंसता है**) न, बीबीजी। लोचन भैया ? लोचन भैया तो··· सबके भैया हैं ! कहते हैं···

राय तारानाथ : जगत भैया !

(**नेपथ्य से आया : "चेतू, ओ चेतू !"**)

चेतराम : चाय ल जाऊं, सरकार ?

राय तारानाथ : हां ! और तो नही लोगी, हेम ?

हेमलता : उं···हां···नहीं ! ले जाओ।

(**चेतराम ले जाता है। राय साहब ड्रेसिंग गाउन की जेब में हाथ डालकर घूमने लगते हैं।**)

राय तारानाथ : तो यह है इन लोगों की जिंदगी। गरीब भी और गंदे भी। उन दिनों तो उस टोली में बिना नाक बंद किये जाना हो ही नहीं सकता था। बाप इसका मेहनती था। असल में काम करने में पक्के हैं ये लोग, लेकिन हैं जाहिल !

हेमलता : पापा, आपको याद है हमारे आर्ट-मास्टर ने वह तस्वीर बनायी थी 'किसान की सांझ'। कंधे पर हल, आगे बैल थका-मांदा किसान, सांझ की चित्ताकर्षक रंगीनी में भी निर्लिप्त !

[illegible] : पांच सौ रुपये दाम रखा था न उन्होंने उसका ?

राय ता[illegible] : [illegible] की शक्ल उससे मिलती

हेमलता : पापा, आपने गौर किया, इस [illegible]

[illegible] है। ···मास्टर साहब कहते थे देहाती जिंदगी [illegible] और दृश्य में अनगिनत मास्टर-पीसेज़ के बीज बिखरे पड़े हैं। एक-[illegible]-एक चेहरे में सदियों का अवसाद है। एक-एक झांकी में युगों की गह[illegible]या। अमृता शेरगिल···

राय [illegible]रानाथ : अमृता शेरगिल। भई, उसकी तस्वीरों पर तो मातम-सा छाया रहता था।

हेमलता : वह तो अपना-अपना ऐटीट्यूड है। अपनी भंगिमा ! लेकिन, पापा, यह तो मानियेगा कि शेरगिल के रंगों में भारत के गांव की मिट्टी झलक रही है। पापा, मुझे लगता है जैसे मेरी कूंची, मेरे ब्रुश, को यहां आकर नयी दृष्टि मिली हो। कितने चित्र मैं यहां खींच सकती हूं ? पकते हुए गेहूं के खेत में चकित-सी किसान बाला ! रंग-बिरंगी बांस की टोकरियां बनाता हुआ इसी चेतराम का बाप ! सबेरे की किरन में धुली-धुली-सी गाय को दुहता हुआ ग्वाला···

राय तारानाथ : और यह चांदनी ! (**हंसता है**) मगर हेम, वह चित्र भी तैयार हुआ या नहीं ?

हेमलता : कौन-सा ?

राय तारानाथ : अरे, वही···खास चित्र !

हेमलता : पापा, आप तो ! (**शर्मीली-सी**) लेकिन बीरेन ने पंद्रह मिनट भी तो लगातार सिटिंग नहीं दी। इधर से उधर फुदकते फिरते थे !

राय तारानाथ : इस वक्त भी जान पड़ता है कहीं फुदक ही रहे हैं हज़रत !

हेमलता : आपने भी फिजूल भेजा तांगा। जिसके पैर में ही सनीचर हो···

(बीरेन पीछे से हठात् निकलता है।)

बीरेन : सनीचर नही, आज तो शुक्र है ! कहीं इसी वजह से तुम तांगा भेजना नही भूल गयी ?

हेमलता : बीरेन !

राय तारानाथ : बीरेन ? अरे ! क्या तुम्हें तांगा नहीं मिला स्टेशन पर ?

बीरेन : नमस्ते, पापाजी ! जी, मुझे तांगा तो नहीं मिला, शायद···

राय तारानाथ : अजब अहमक है यह सईस ! रास्ता तो एक ही है।

बीरेन : लेकिन कोई बात नही। मेरा भी एक काम बन गया।

राय तारानाथ सामान कहां है ?

हेमलता : चेतू ! (पुकारते हुए) आया, चेतू को भेजना ! सामान···

बीरेन : सामान तो चौधरी जगबहादुर की देख-रेख मे स्टेशन ही छोड़ आया हू।

राय तारानाथ : यानी मिल गये तुम्हें भी चौधरी जंगबहादुर !

हेमलता : वही न पापा, जो हर गाड़ी पर किसी-न-किसी न आने वाले को लेने के लिए जाते है ?

बीरेन : या किसी न जाने वाले को पहुंचाने। मगर यह भी निराला शौक है कि बिना-नागा हर गाडी पर स्टेशन जा पहुंचना।

राय तारानाथ : दो ही तो गाड़ी आती हैं इस छोटे स्टेशन पर, लेकिन चौधरी की वजह से उस सूने स्टेशन पर रौनक आ जाती है।

बीरेन : जी हा, जब तक उनसे मुलाकात नहीं हुई तब तक तो मुझे भी लगा कि पैसिफिक सागर के टापू पर बहक गया हूं।

हेमलता : यहा चौरंगी की चहल-पहल की उम्मीद करना तो बेकार था, बीरेन !

बीरेन : (ठहाका) याद है बेकन की वह उक्ति ? "भीड़ के बीच मे भी चेहरे गूगी तस्वीरें जान पडते है और बातचीत घंटियां, अगर कोई जाना-पहचाना न हो।" लेकिन तुमने कैसे समझ लिया कि मुझे वीरानापन पसंद नहीं।···मैं तो चौधरी साहब से भी पल्ला छुड़ाकर भागा।

राय तारानाथ : तो शायद उन्होने तुम्हे समूची दास्तान सुनानी शुरू कर दी होगी।

बीरेन : जी हां, यह बताया कि वह साल-भर में एक बार, सिर्फ एक बार, कलकत्ता की रेस में बाजी लगाने जाते हैं। यह भी बताया कि गवर्नर साहब के

जिस डिनर में उन्हें बुलाया गया था उसका निमंत्रण-पत्र अब भी उनके पास है और यह कि इस गांव में अब तक जितनी बार कलक्टर आये हैं उनके दिन और तारीख उन्हें पूरी तरह याद है।

हेमलता : गजब है !

राय तारानाथ : हां भाई, याद्दाश्त चौधरी की लाजवाब है !

बीरेन : याद्दाश्त की दुनिया मे ही रहते जान पड़ते हैं। इसलिए जब उन्होंने स्टेशन पर सामान की देखभाल का ज़िम्मा लिया तब मैंने भी छुटकारे की सांस ली और रास्ता छोड़कर खेतों की राह बस्ती की ओर चल दिया।

(**आया का प्रवेश।**)

आया : बीरेन बाबू, पहले गरम चाय पीजियेगा या फिर खाने का ही इंतजाम…!

बीरेन : ओ ! हलो, आया, कैसी हो ?

आया : मैं तो मजे में ही हूं। लेकिन आपके आने से हमारी हेम बीबी के लिए चहल-पहल हो गयी, वरना तो…

हेमलता : वरना तो क्या ? मुझे तो कलकत्ता की चहल-पहल से यहा का सूना संगीत ही भाता है।

राय तारानाथ : आया, हेम की उलटबांसिया तुम न समझोगी।

बीरेन : लेकिन, आया, अब मैं इस जगल मे मंगल करने वाला हू।

आया : भगवान् वह दिन भी जल्दी दिखावें ! मै तो हेम बिटिया…

हेमलता : चुप भी हो, आया !

राय तारानाथ : (**ठहाका**) हा, हा, हा ! !

बीरेन : मैं दूसरी बात कह रहा था। मेरा मतलब है इस गांव की कायापलट करना। यह गांव मेरा इंतज़ार कर रहा है जैसे, जैसे…

हेमलता : जैसे वीणा के तार उस्ताद की उंगलियों का ! (**किंचित् हास**) खूब !

राय तारानाथ (**हंसते हुए**) हा, हा, हा। बीरेन, है न मेरी बिटिया लाजवाब ?

बीरेन : लेकिन वीणा के सुर मे वह मस्ती कहा जो एक नयी दुनिया के निर्माण में मिलती है।

हेमलता : (**व्यंग्य**) कोलम्बस !

राय तारानाथ : नयी दुनिया का निर्माण। यह तो दिलचस्प बात जान पड़ती है, बीरेन ! सुनें तो।

बीरेन : जिस रास्ते से—शॉर्ट कट से, मैं आया हूं, उससे लगी हुई जो ज़मीन है, थोड़ी ऊंची और समतल, उसे देखकर मेरी तबीयत फड़क गयी और मैंने तय कर लिया कि···

आया : बीरेन बाबू !

बीरेन : (**अपनी बात जारी रखते हुए**) कि बिलकुल आइडियल रहेगी वह जगह ! बिलकुल मानो उसी के लिए तैयार खडी हो।

राय तारानाथ : किस के लिए ?

आया : सरकार, बीरेन बाबू की बाते तो सावन की झरी है, पर मुझे तो बहुतेरा काम पड़ा है।

हेमलता : (**चंचल**) इन्हें खाना मत देना, आया !

बीरेन : (**उसी धुन में**) मैं कहता हूं पापाजी, उससे बेहतर जगह···

राय तारानाथ : ना, भई बीरेन ! पहले आया का हुक्म मान लो। हेम, कमरा इन्हें दिखा दो, गरम पानी का इंतज़ाम तो होगा ही। जब तैयार हो जाये, और खाना भी, तो आया, मुझे खबर दे देना।

आया : लेकिन इस मौसम में बाहर रहिएगा देर तक तो···

राय तारानाथ : बस, अभी आया ! चौधरी साहब इस बीच मे आयें तो दो बात उनसे भी कर लूगा।

बीरेन : (**जाते-जाते**) लेकिन पापाजी आप ग़ौर करके देखिए, ग्रामोद्धार समिति के लिए पहाड़ की तलहटी वाली जमीन से मौजू और कोई जगह हो ही नही सकती ! मैंने उन लोगो से··· (**प्रस्थान।**)

राय तारानाथ : ग्रामोद्धार समिति ! ख्याल तो अच्छा है। एक ज़माने में मैंने भी··· (**सामने देखकर**) कौन ? चेतू ! अरे, तू यहा कैसे खड़ा है ?

चेतराम : सरकार··· (**रुक जाता है।**)

राय तारानाथ : क्या गरम पानी तैयार नही ?

चेतराम : कर आया सरकार ! कमरा भी सफा है।

राय तारानाथ : ठीक।

चेतराम : सरकार ! (**झिझककर रुक जाता है।**)

राय तारानाथ : क्या बात है, चेतू ?

चेतराम : सरकार, वह तलहटी वाली जमीन !

राय तारानाथ : कौन ज़मीन ?

चेतराम : जी, नये साहब जिसे लेना सोच रहे है।

राय तारानाथ : अरे बीरेन ! अच्छा वह जमीन जहां वह ग्रामोद्धार समिति बैठायेंगे।

चेतराम : लेकिन सरकार, उस पर तो हम लोग अपना नया बसेरा कर रहे हैं। आठ-दस बास की कोठिया (**झुरमुट**) लग जायें तो बेडा पार हो जाये।

राय तारानाथ : अरे, तुम मुसहरों को क्या ! जहां बैठ जाओगे, बसेरा हो जायेगा। लेकिन गाव में जो उद्धार के लिए काम होगा (**घोड़े की टापों और तांगे की आवाज़**) यह क्या ? तांगा आ गया क्या ? देख भई, बीरेन बाबू का सामान उतार ला (**चेतराम बाहर जाता है, तांगा रुकने की आवाज़**) चौधरी साहब हैं क्या ?

बालेश्वर : (**बाहर ही से बोलता आता है**) जी, चौधरी साहब ने ही मुझे भेजा है सामान के साथ। मेरा नाम बालेश्वर है, बी. पी. सिंहा। और ये है करम—करमचंद बरैठा। (**करमचद बरैठा नमस्ते करता है**) बच्चू बाबू के चचेरे भाई हैं। मैं चौधरी साहब का भतीजा हूं।

राय तारानाथ : कहां रह गये चौधरी साहब ?

बालेश्वर : जी तांगे में आने की वजह से उनके घूमने का कोटा पूरा नहीं हुआ तो फिर से घूमने गये है।

राय तारानाथ : (**हंसते हुए**) खूब !

करमचद बरैठा : हम लोगों ने सोचा कि आपका सामान भी पहुंचा दें और आपके दर्शन भी हो जायें।

बालेश्वर : बात यह है कि देहात मे कोई 'लाइफ' नहीं।

करमचंद बरैठा : जब से शहर से लौटे हैं जान पड़ता है कि बंदी बन गये। 'ट्रांसपोर्टेशन फार लाइफ' !

राय तारानाथ : क्या करते थे शहर मे ?

बालेश्वर : करमचंद तो इंटरमीडियेट तक पढ़कर लौट आये और मैं···

करमचंद बरैठा : बात यह है कि इम्तिहान के परचे ही बेढंगे बनाये थे किसी ने।

बालेश्वर : मैं तो बी. ए. कर रहा था और एक दफ्तर में किरानी की नौकरी के लिए भी दरख्वास्त दे दी थी मगर सिफारिश की कमी की वजह से···

राय तारानाथ : किरानी ? तुम्हारे यहां तो कई बीघे खेती होती है।

बालेश्वर : पढ़ाई-लिखाई के बाद भी खेती ! 'पड़े फ़ारसी बेचे तेल !'

करमचद बरैठा : और फिर शहर की लाइफ की बात ही और है। खाने के लिए होटल, सैर के लिए मोटर, तमाशे के लिए सिनेमा।

राय तारानाथ : रहते कहा थे ?

बालेश्वर · शहर में रहने का क्या ? चार अंगुल का कोना भी काफी है।

करमचंद बरैठा : शहर की सडके यहा के बैठकखाने से कम नही। वह चहल-पहल, वे रगीनिया !

राय तारानाथ : भई, यह तो तुम लोग गलत कहते हो। मैंने अपने बचपन और जवानी के अनेक सुहाने बरस यहा गुजारे हैं।

बालेश्वर : तब बात और रही होगी, जज साहब !

करमचद बरैठा : और फिर छोटी उम्र में शहर की मनमोहक जिंदगी से गाव का मिलान करने का मौका कहां मिलता होगा।

राय तारानाथ : मनमोहक !···खैर। आजकल क्या शुगल रहता है

करमचद बरैठा : गले पड़ी ढोलकी बजावे सिद्ध। सोचा कुछ पढ़े-लिखे, जानकर लोगो का क्लब ही बना ले।

बालेश्वर : वह भी तो नहीं करने देते लोग।

राय तारानाथ : कौन लोग ?

करमचंद बरैठा : इस गाव की पालिटिक्स, आपको नही मालूम ?

राय तारानाथ : यहां भी पालिटिक्स है ?

बालेश्वर : ज़बरदस्त ! बात यह है कि मैं और करमचंद तो ढंग से क्लब चलाना चाहते है। एक प्रेसीडेंट, दो वाइस-प्रेसीडेंट, एक सेक्रेटरी, दो ज्वाइंट-सेक्रेटरी, पांच कमेटी मेम्बर।

करमचंद बरैठा : जी हां, यह देखिए। (**एक कागज निकालकर राय साहब को दिखाता है**) इस तरह लेटर पेपर छपवाने का इरादा है। ऊपर क्लब का नाम रहेगा और यहां हाशिये में सब पदाधिकारियों के नाम और···

बालेश्वर : लेकिन ठाकुरों की बस्ती में दो आदमी है धरम सिह और किशन-कुमार सिंह। कहते है दोनो वाइस-प्रेसीडेंट उन्ही के रहे और कमेटी में भी तीन आदमी। मैने कहा कि ज्वाइंटसेक्रेटरी ले लो और दो कमेटी के मेम्बर।

राय तारानाथ . वे भी तो पढे-लिखे होंगे।

करमचद बरैठा : जी हा, मैट्रिक तक।

राय तारानाथ : तब ?

करमचद बरैठा : अपने को लाट साहब समझते हैं। कहते हैं क्लब होगा तो उन्ही के मोहल्ले में।

बालेश्वर : भला आप ही सोचिए हम लोगों के रहते हुए ठाकुरो की बरतं में क्लब कैसे खुल सकता है ?

करमचंद बरैठा : आप ही इसाफ़ कीजिए, जज साहब !

राय तारानाथ : भई, इसके लिए तो तुम बीरेन से बाते करो। यह लो, बीरेन आ गये।

बीरेन : (**हेम के साथ आते हुए**) पापाजी, ग्रामोद्धार समिति वाली वह बात मैने पूरी नहीं की।

राय तारानाथ · बीरेन, वह बात तुम इन लोगों को समझाओ। यह है बालेश्वर उर्फ़ बी. पी. सिन्हा और ये है करमचद बरैठा। गाव के पढ़े-लिखे नौजवान ! क्लब खोलना चाहते है। मै तो चलता हू, देरी हो रही है। हेम बेटी, बीरेन को देर मत करने देना। (**प्रस्थान।**)

बीरेन : अच्छा तो गांव मे क्लब स्थापित करना चाहते हैं !

बालेश्वर · जी हां ! यह देखिए, यह तो हम लोगों का लेटर पेपर और नियमावली का मसविदा। बात यह है कि···

बीरेन · आइए, मेरे कमरे मे चलिए। वहा इत्मीनान से बातें होंगी। इधर से चलिए। मैं अभी आया।

(**बालेश्वर और करमचंद बरैठा का प्रस्थान।**)

हेमलता : मैं यही हूं। जल्दी करना, नही तो, जानते हो, आया वह खबर लेगी कि···

बीरेन : तुम भी चलो न ? क्या उम्दा मेरी योजना है। सुनकर फड़क जाओगी !

हेमलता : कमरे मे चलू ! उह ? देखते हो या चांदनी ! (**बाहर दूर से सम्मिलित स्वर में गाने की आवाज**) और सुनते हो यह स्वर, मानो चांदनी बोलती हो।

बीरेन : (**जाते-जाते शरारत भरे स्वर में**) मैं तो देखता हू बस किसी का चांद-सा मुखड़ा और सुनता हूं तो अपने दिल की धड़कन ?··· (**हाथ हिलाते हुए**) टा ··टा ! (**प्रस्थान।**)

हेमलता : (**मीठी मुस्कान**) झूठे !···

(**सम्मिलित संगीत स्वर निकट आ रहा है। स्त्री-पुरुष—दोनों का स्वर।**)

चननिया छटकी मो का करो राम।
गंगा मोर मइया जमुना मोर बहिनी
चाद सूरज दूनों भइया
मो का करो राम। चननिया छटकी···
सासु मोर रानी, ससुर मोर राजा
देवरा हवें सहजादा मो का करो राम
चननिया छटकी मो का करो राम।

(गाने के बीच में चेतराम का जल्दी से आना और बाहर की तरफ चलना।)

हेमलता : कौन, चेतू ? कहा जा रहे हो ?

चेतराम : जी···वह···वह···गाना···

हेमलता : बड़ा सुंदर है !

चेतराम : मेरी ही बस्ती की टोली है। हर पूनो की रात को गांव के डगरे-डगरे घूमती है।

हेमलता : इधर ही आ रही है ?

चेतराम : सामने वाले डगरे मे। वह देखिए। और देखिए उसमे वह लोचन भैया भी है।

हेमलता : कहां ?

चेतराम : वह मिर्जई पहने। मैं चलता हू, बीबीजी। वे लोग मुझे बुला रहे है।··· **(जाता है।)**

(गाने का स्वर निकट आकर दूर चला जाता है—"मो का करो राम ··")

हेमलता : **(अब स्वर मंद हो गया है)** "चननिया छटकी मो का करो राम" ओह, कैसी मनोहर पीर है यह !

आया : हेम बीबी, हेम बीबी ! इस ठड में कब तक बाहर रहोगी ?

हेमलता : **(उच्च स्वर में)** अभी आयी, आया। **(फिर मद स्वर में)** चांदनी और मै ! मै और बीरेन ! बीरेन ! लेकिन यह गाना और वह···वह···लोचन ! **(विचारमग्न अवस्था में प्रस्थान।)**

(दूसरा दृश्य)

(स्थान वही। पंद्रह रोज़ बाद। समय सबेरे। बाहर से राय साहब और एक व्यक्ति की बातचीत का स्पष्ट स्वर और फिर थोड़ी देर में ठहाका मार-मारकर हंसते हुए राय साहब का प्रवेश।)

राय तारानाथ : हा, हा, हा ! ! ! वाह भई, वाह ! ! सुना, बेटी हेम ? हेम !

हेमलता : **(नेपथ्य में)** आयी, पापा !

राय तारानाथ : हा ! हा ! हा ! !

(हेम का प्रवेश। हाथ में एक बड़ा-सा चित्र और ब्रुश।)

हेमलता : क्या बात हुई, पापा ?

राय तारानाथ : हेम, हमारे चौधरी साहब भी लाजवाब हैं। अभी तो मुझे फाटक पर छोड़कर गये हैं। सबेरे भी चहलकदमी में इनका साथ न हो तो, मै तो इस देहात में गूंगा भी हो जाऊं और बहरा भी !

हेमलता : आप तो आज उनके घर तक जाने वाले थे।

राय तारानाथ : गया तो था यही सोचकर कि थोड़ी देर के लिए उनकी बैठक में भी चलूं, लेकिन वह बाहर से ही बोले, "वहीं ठहरिए।"

हेमलता : अरे !

राय तारानाथ : कहने लगे, "पहले मैं ऊपर पहुंच जाऊं तब आप कार्ड भेजिएगा और तब बैठक में जाना मुनासिब होगा ! कायदा जो है।"

हेमलता : **(हंसती है)** ऐसी भी क्या अंग्रेजियत ?

राय तारानाथ : और भी तो सुनो ! घर में उनका जो प्राइवेट कमरा है उसमें बाहर एक घंटी लगी है। जिसे भी अंदर जाना हो तो घंटी बजानी होती है। बिना घंटी बजाए अगर कोई अंदर आ गया तो चौधरी साहब उससे बात नहीं करते, चाहे उनकी बीवी हो।

हेमलता : मालूम होता है मनु-स्मृति की तरह एटीकेट-संहिता चौधरी साहब छोड़कर जायेंगे।

राय तारानाथ : लेकिन आदमी दिल का साफ है और बिलकुल खरा है, हीरे के मानिंद। दूसरे के एक पैसे पर हाथ नहीं लगाता।

हेमलता : तभी बीरेन ने उन्हे ग्रामोद्धार समिति का आडीटर बनाया है।

राय तारानाथ . बीरेन से कह देना कि चौधरी साहब हिसाब में बहुत कड़े हैं। कह रहे थे कि चूकि इस सस्था मे उनका भतीजा बालेश्वर शामिल है इसलिए इसकी तो एक-एक पाई पर निगाह रखेगे।

हेमलता : बालेश्वर मुझे पसंद नही। झगड़ालू आदमी है।

राय तारानाथ : झगडा तो गांव की नस-नस मे बसा है।

हेमलता : पहले भी ऐसा था, पापा ?

राय तारानाथ : था, लेकिन ऐसी हठधर्मी नही थी। मै यह नहीं कहता कि पहले शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते थे [illegible] लेकिन ··· लेकिन पहले पढ़े-लिखे नौजवान गांव में कम थे [illegible] और···

हेमलता : पढे-लिखे नही, अधकचरे। टैगोर ने लिखा है न—"हाफ-बेक्ड कल्चर !" लेकिन पापा, क्या सच बीरेन का तूफानी जोश और उनकी पैनी सूझ गांव मे कायापलट कर देगी ?

राय तारानाथ : तुम क्या समझती हो ?

हेमलता : कह रहे थे न बीरेन उस रोज, गाव मे क्रांति के लिए एक नये दृष्टिकोण की ज़रूरत है, एक नये मानसिक धरातल की···

राय तारानाथ : बीरेन बोलता खूब है ! उसी का जादू है।

हेमलता : सैकडों की जनता झूम जाती है !

राय तारानाथ उस दूसरी पार्टी का क्या हुआ ? ग्राम सुधार समिति में शामिल हुई या नहीं ?

हेमलता : अभी तो नहीं। कल रात बहुत-सा वाद-विवाद चलता रहा। बीरेन देर से लौटे थे। पता नही क्या हुआ !

राय तारानाथ · लेकिन आज तो नींव पड़ेगी समिति की।

हेमलता : हां। आप नहीं जाइयेगा उत्सव मे, पापा ?

राय तारानाथ : ना बेटी, मैने तो बीरेन से पहले ही कह दिया, मैं नहीं जा सकूंगा। मुझे···

(बीरेन का प्रवेश। हाथ में कागज़। कुर्ते में बटन लगाता हुआ।)

बीरेन · लेकिन पापाजी, चौधरी साहब तो आ रहे हैं।

राय तारानाथ : उन्हें ठीक स्थान पर बैठाना, नियम के साथ।

बीरेन : **(हंसते हुए)** उनकी पूरी देखभाल होगी। पापाजी, अगर आप वहां पहुंच नही रहे है तो यह तो देखिए, मेरे भाषण का ड्राफ्ट। **(कागज़ पकड़ाता है।)**

राय तारानाथ : तुम तो बिना तैयारी के ही बोलते हो। (**कागज पढ़ने लगता है।**)

बीरेन : जी हां, लेकिन आज तो ग्राम सुधार समिति की समूची योजना को गांव के सामने रखना है···पढ़िए न !

राय तारानाथ : (**पढ़ते हुए**) बड़ी ज़ोरदार स्कीम है !

बीरेन . जी, आगे और देखिए। (**हेमलता से**) और हेम, तुमने समिति के भवन मे जो चित्र टगेंगे, पूरे कर लिए ?

हेमलता : एक तो तैयार-सा ही है।

बीरेन : यह ?···बडे चटकीले रग है, बड़ा मनोहर नाच का दृश्य है।··· खूब ! लेकिन···ये···इस कोने में अंधेरे में ये कौन लोग है ?···

हेमलता : तुम क्या समझते हो ?

बीरेन : (**रुककर सोचता-सा**) जैसे···निर्वासित···भटके हुए प्राणी !···

राय तारानाथ . (**पढ़ते-पढ़ते**) बीरेन, तुम्हारी ग्राम सुधार समिति मे दिमागी कसरत तो बहुत है—पुस्तकालय, भाषण, अध्ययन मंडल···

बीरेन : (**चित्र को अलग रखता हुआ**) वही तो, पापाजी ! ग्राम जागृति के मानी क्या हैं ? अपनी ज़रूरतों और समस्याओ पर विचार करने की क्षमता ! देहात की मूक व्यथा को वाणी की आवश्यकता है। मांग है चुने हुए ऐसे नौजवानो की जो धरती की घुटन को गगन के गर्जन का रूप दे सके, जो रूढियों के खिलाफ आवाज उठा सके, जो आर्थिक प्रश्नो से माथापच्ची कर सके। मैं समिति के पुस्तकालय मे मार्क्स, लेनिन से लेकर स्पेंग्लर, रसेल इत्यादि सभी के ग्रंथों का अध्ययन कराऊंगा। एक नयी रोशनी, एक नया मानसिक मथन—इंटलेक्चुअल फरमेंट !

राय तारानाथ : ठीक, बीरेन, ठीक ! बाते तो बहुत होगी। लेकिन, भइ, देहात की गरीबी और गंदगी को देखकर तो मन उचाट होता है।

बीरेन : (**जोश के साथ**) यह आपने ठीक सवाल उठाया। गरीबी और गंदगी ! पापाजी, इस गरीबी और गंदगी को देखकर मेरा मन क्रोधाग्नि से जल जाता है। वे बेघरबार के बूढ़े-बच्चे, वह भूखे भिखमंगों की टोली, वे चीथड़ों मे सिकुडी औरतें—इन सबके ध्यान मात्र से दया का सागर उमड उठता है। लेकिन दया के सागर मे क्रोध के तूफान की जरूरत है, पापाजी। तूफ़ान जो न थमना जाने, न चुप रहना। और इस तूफान को कायम रखने के लिए चाहिए

कुछ ऐसी हस्तियां जो इस क्रोध और दया के काबू में न आकर भी उसी के राग छेड़ सकें, वकील की तरह पूरे जोश के जिरह कर सकें लेकिन मुवक्किल से अलग भी रह सकें।

हेमलता : **(व्यंग्य)** सरोवर में कमल !

बीरेन : **(उसी जोश से)** हां, उसी की जरूरत है। जो लोग इस गरीबी और गंदगी की दलदल से दूर रहकर, उसमे फसी दुनिया के बेबस अरमानो को समाज के सामने मुस्तैदी के साथ चुनौती का रूप दे सके। **(रुककर भाषण के स्तर से उतरता हुआ)** लेकिन मुझे तो चलना है, पापाजी। पहले से जाकर समिति की कुछ उलझनें सुलझानी है, जिससे उत्सव के वक्त फसाद न हो ! ···तुम तो थोड़ी देर में आओगी, हेम ? तब तक इस चित्र को ठीक-ठाक कर लो। अच्छा तो मैं चला। **(प्रस्थान। कुछ देर नीरव।)**

राय तारानाथ : यही तो जादू है बीरेन का।

हेमलता : जादू वह जो सिर चढ़कर बोले।

राय तारानाथ : कभी-कभी मुझे तो देहात मे उलझन-सी लगती है। बरसों बाद आया हू। ···जैसे चश्मा शहर ही छोड़ आया हूं ! ···और बीरेन है कि आते ही गांव को अपना लिया।

हेमलता : मालूम नहीं पापाजी, कि उन्होंने गाव को अपना लिया या···

(चेतराम का प्रवेश।)

चेतराम : सरकार का नाश्ता तैयार है।

राय तारानाथ : **(आते हुए)** अच्छा चेतू ! चलता हूं। **(चलते-चलते चित्र पर निगाह जाती है)** हेम ! यह तस्वीर तो अच्छी बनी है।

हेमलता : थोड़ा 'टच' करना बाकी है।

राय तारानाथ : नाचनेवालो की टोली में बड़ी लाइफ है, रंग की भी, गति की भी ! लेकिन···कोने में यह लोग कैसे खड़े हैं ?

हेमलता : आप क्या समझते है ?

राय तारानाथ : **(सोचता-सा सप्रयास)** जैसे···जैसे सूखे और सूने दरख्त जिन्हें धरती से खूराक ही नही मिलती है।

हेमलता : पापा, आप भी तो कवि हैं।

राय तारानाथ : **(हंसता है)** तुम्हारा बाप भी जो हूं।···अच्छा मैं तो चला। **(प्रस्थान।)**

हेमलता : (**विचारमग्न**) सूखे और सूने दरख्त ! ···या निर्वासित और भटके प्राणी ! ···नहीं···नहीं कुछ और ! (**चेतराम से**) चेतू, जरा लाना वह स्टूल, यहीं बैठकर जरा इसे ठीक करूं।

चेतराम : (**स्टूल रखता हुआ**) यह लीजिए। रंग भी यहीं रख दूं ?

हेमलता : लाओ, मुझे दो। अब तो तुम्हें मेरी तस्वीर खींचने की झक की आदत हो गयी है। (**रंग तैयार करने लगती है।**)

चेतराम : जी, बीबीजी !

हेमलता : देखो, थोड़ी देर में यह तस्वीर लेकर तुम्हें मेरे साथ चलना है।

चेतराम : कहां ?

हेमलता : बीरेन बाबू की समिति का जलसा जहां हो रहा है वहीं पहाड़ी की तलहटी पर।

चेतराम : (**झिझकता हुआ**) बीबीजी, वहां मैं नहीं जाऊंगा।

हेमलता : क्यों ?

चेतराम : बीबीजी, वहां हम गरीब मुसहर अपना बसेरा करने वाले थे। हम बांस की पौध लगा रहे थे। मेहनत करके टोकरी बनाते, घर तैयार करते। बांध होता तो खेत भी···

हेमलता : (**चित्र बनाते-बनाते**) लेकिन ग्रामोद्धार समिति से भी तो आखिर तुम लोगों की तकलीफें दूर होंगी।

चेतराम : पता नहीं, बीबीजी ! समिति में बहुत देर तक बहसें तो होती है। पर···

हेमलता : और फिर बीरेन बाबू के दिल में तुम लोगों के लिए कितना खयाल है, कितनी दया है !

चेतराम : (**किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत हो**) हमें दया नहीं चाहिए।

हेमलता : (**चौंककर मुड़कर उसकी ओर देखते हुए**) दया नहीं चाहिए ? चेतू ! यह तुमसे किसने कहा ?

चेतराम : (**कुछ सकपकाकर**) बीबीजी, लोचन भैया कहते है कि···

(**सड़क पर से सम्मिलित स्वर में नारों की आवाज़**)

"ग्रामोद्धार समिति जिंदाबाद !

बी.पी. सिंहा जिंदाबाद !

गद्दारों का नाश हो !

ग्रामोद्धार समिति ज़िंदाबाद !

(आवाज़ दूर हो जाती है।)

हेमलता : चेतू, यह सब क्या है ? **(खड़ी होकर देखने लगती है।)**

चेतराम : उत्सव में ही जा रहे है। बालेश्वर बाबू की पार्टी के लोग हैं। करमचंद बाबू इनसे अलग हो गये है और ठाकुर पार्टी के लोगों में जा मिले हैं।

हेमलता : कल रात झगड़ा तय नहीं हुआ ?

चेतराम · पता नही···यह देखिए दूसरी पार्टी के लोग भी जा रहे हैं। कहीं झगडा न हो जाये।

(सड़क पर दूसरे दल का नारा लगाते हुए सुन पड़ता है)

करमचंद की जय हो !

करमचंद की जय हो !

ग्रामोद्धार समिति हमारी है।

ग्राम-जागृति ज़िंदावाद !

स्वार्थी सिंहा मुर्दाबाद !

(आवाज दूर हो जाती है।)

हेमलता : **(चिंतित स्वर में)** चेतू, ये लोग तो लाठी लिए हुए हैं।

चेतराम : जी हा, पहली पार्टी भी लैस थी।

(नेपथ्य से पुकारते हुए आया का प्रवेश।)

आया : चेतू, ओ चेतुआ ! देख तो यह क्या फसाद है ?

चेतराम : बालेश्वर बाबू और करमचद की पार्टियां है। दोनों बीरेन बाबू के उत्सव में गयी है।

हेमलता : लाठी-डंडा लिए हुए, आया !

आया : और तू यहीं खड़ा है, चेतुआ ? अरे, जल्दी जा दौड़कर, चौकीदार से कह कि थाने में खबर कर दे। क्या मालूम क्या झगड़ा जाये। जल्दी जा ! लाठी चल गयी तो बीरेन बाबू घिर जायेंगे।···जल्दी दौड़ जा !

(चेतराम जाता है।)

हेमलता : मै भी जाऊंगी, आया ! बीरेन अकेले हैं।

आया : न बीवीजी, तुम्हें न जाने दूगी। **(जाते हुए चेतराम को पुकारते हुए)**

चेतू, लौटते वक्त जलसे में झांकता आइयो। (**हेमलता से**) हेम बीवी, कहां की इल्लत मोल ले ली बीरेन बाबू ने !

हेमलता : उनकी बात तो सब लोग सुनेंगे।

आया बीबीजी, तुमने अभी तक नही समझा गांव-गवई के मामलों को। यहा भले मानसो के बस नही है। अपना तो वही कलकत्ता अच्छा था।

हेमलता : (**झिड़कते स्वर में**) आया, तुम तो बस हर बात में वही शहर की रट···

आया : मै ठीक कह रही हूं बीबीजी। अभी तुम लोगों को पद्रह दिन हुए हैं यहां आये। देख लो बड़े सरकार की तबीयत ऊबी-सी रहती है। चौधरी न हों तो एक दिन काटना मुश्किल हो जाये। और तुम हो···

हेमलता : मुझे तो अच्छा लगता है कई स्केच बना चुकी हूं।

आया : अरे, तस्वीरें तो तुम कलकत्ता में बना लोगी। अनगिनत और इनसे अच्छी।

हेमलता : तुम तो, आया, उलटी बातें करती हो। आखिर हम लोग गांव की ही औलाद हैं। यह धरती हमारी मां है। अब हम लोग फिर यहा आकर रहना चाहते है। इसकी गोदी मे आना चाहते है।

आया : अब बीबीजी इतनी हुसियार तो मैं हूं नही जो तुम्हें समझा सकू। पर इतना कहे देती हूं कि उखाड़े हुए पौधे की जड़ में हवा लग जाये तो फिर दुबारा जमीन में गाड़ना बेकार है। उसके फूल तो बगले के गुलदस्तों की ही शोभा बढायेंगे।

हेमलता : (**अचंभित आया को देखती रह जाती है**) आया, तुम्हारी बात··· तुम्हारी बात···खौफ़नाक है।

(**नेपथ्य से आवाजें "इधर···उधर···ले आओ सम्हलकर···चेतू, तुम हाथ पकड़ लो इधर···उधर···"**।)

आया : है ! यह कौन आ रहा है ? (**बाहर की ओर देखते हुए**) अरे, यह तो बीरेन बाबू को पकड़े दो आदमी चले आ रहे है। घायल हो गये क्या ? बाप रे !! (**दौड़कर बाहर की तरफ जाती है।**)

हेमलता : (**घबराकर**) बीरेन, बीरेन ! (**बंगले की तरफ पुकारते हुए**) पापाजी ! पापाजी ! इधर आइए। (**नेपथ्य से "क्या हुआ ?"**) बीरेन घायल हो गये। ओह !

(बेहोश बीरेन को लाठियों के स्ट्रेचर पर संभाले हुए, चेतराम और एक व्यक्ति का प्रवेश जो इस परिस्थिति में भी स्थिरचित्त जान पड़ता है। चेतराम की-सी ही पोशाक।)

आया : (**घबरायी हुई**) चेतू, ये तो बेहोश हैं। हाय राम ! (**स्ट्रेचर जमीन पर।**)

व्यक्ति : घबराइए नही।

हेमलता : (**स्ट्रेचर के पास घुटने टेकती हुई**) बीरेन ! बीरेन !

(राय तारानाथ का प्रवेश घबराहट में।)

राय तारानाथ : क्या हुआ ! हैं !···यह तो बेहोश है।···चेतू, क्या हुआ ?

चेतराम : सरकार, दोनो पार्टी के लठैत भिड़ गये। बीच में आ गये बीरेन बाबू। वह तो लोचन भैया ने जान पर खेलकर बचा लिया। वरना तो···

व्यक्ति : इन्हे फौरन मकान के अदर पहुंचाइए। पट्टी बधी है।

हेमलता : बीरेन ! बीरेन !

राय तारानाथ : आया, जल्दी अंदर ले चलो।···चेतू, सभलकर लिटाना। हेम, मेरी ऊपर वाली अलमारी में लोशन है, जल्दी···जल्दी···

(बीरेन को पकड़कर आया, चेतराम और हेमलता जाते है।)

राय तारानाथ : और यह लोचन कौन है ?

व्यक्ति : मेरा ही नाम लोचन है !

राय तारानाथ : तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया। यह लो दस रुपये और जरा दौडकर जाओ, थाने के पास ही डाक्टर रहते है।

लोचन : आप रुपये रखे। मै डाक्टर के पास पहले ही खबर भेज आया हूं। आते ही होगे।

राय तारानाथ : (**कुछ हतप्रभ**) तुम···तुम इसी गांव के हो ?

लोचन : हू भी, और नही भी।···आप बीरेन बाबू को देखे।

राय तारानाथ : (**संकुचित होकर**) हां···आं···हा ··(**जाते हैं।**)

(लोचन कमर में बंधे कपड़े को फाड़कर अपनी बायीं भुजा में बहते हुए घाव पर पट्टी बांधता है। और तस्वीर को सीधा उठाकर रखता और गौर से देखता है। इतने में तेजी से हेमलता का प्रवेश।)

हेमलता : तुम्हारा ही नाम लोचन है।

लोचन : जी !

हेमलता : तुम्हीं ने बीरेन की जान बचायी है। **(प्रसन्न स्वर में)** वे होश में आ गये। हम लोग बड़े एहसानमंद हैं।

लोचन : **(स्पष्ट स्वर में)** जान मैंने नहीं बचायी।

हेमलता : तुम्हारी बांह पर तो चोट है।

लोचन : जान उन गरीब मुसहरों ने बचायी है जिनसे जमीन छीनकर बीरेन बाबू ग्रामोद्धार समिति का भवन बनवा रहे हैं। जब समिति के क्रांतिकारी नौजवान आपस में लाठी चला रहे थे तब ये ही गरीब बीरेन बाबू को बचाने के लिए मेरे साथ बढ़े। **(व्यंग्यपूर्ण मुस्कान)** क्रांति का दीपक बच गया···!

हेमलता : **(हिचकिचाती हुई)** तुम···आप पढ़े-लिखे है ?

लोचन : पढ़ा-लिखा ? **(वही मुस्कान)** हां भी और नहीं भी।···अच्छा, चलता हूं।···हां, यह तस्वीर आपने बनायी है ?

हेमलता : कोई त्रुटि है क्या ?

लोचन : नहीं ! आपने हमारे नाच की गति को रेखाओं और रंगों में खूब बांधा है। और···

हेमलता : और ?

लोचन : कोने में खड़े छाया में खोये-से ये व्यक्ति···

हेमलता : कैसे हैं ?

लोचन : **(बिना झिझक के)** जैसे अपनी ही जंजीरों से बंधे बंदी !

हेमलता : बंदी ? क्यों ?

लोचन : **(वही मुस्कान)** यह फिर कभी बताऊंगा।···अच्छा, नमस्ते। **(जाता है।)**

(हेमलता अचरज में खड़ी रह जाती है। फिर चित्र उठाकर घर की तरफ जाती है।)

हेमलता : **(जाते-जाते मंद स्वर में)** बंदी !···अपनी ही जंजीरों में बंधे बंदी···!

(तीसरा दृश्य)

(वही स्थान। एक हफ्ते बाद। नौकर लोग मकान से बगीचे मे होकर बाहर की ओर सामान लेते जाते नजर पड़ते हैं। कभी-कभी आया की दबंग आवाज सुनायी पड़ती है, कभी चेतराम की, तो कभी और लोगों की—)

"वह बिस्तरा दो आदमी पकड़ो।"

"संभालकर, भई।"

"बक्से मे चीनी के बर्तन है।"

"जल्दी···जल्दी।"

"यह टोकरी दूसरे हाथ में पकड़ो।"

घर की तरफ से आया का व्यस्त मुद्रा में जल्दी-जल्दी आना। बाहर से चेतराम आता है।

आया : सब सामान लद गया, चेतू ?

चेतराम : हां आया ! बस, बड़े सरकार का अटेची रहा है। उनके आने पर बंद होगा।

आया : कहां गये सरकार ?

चेतराम : चौधरीजी के यहां विदा लेने। सुना है उनकी चोट गहरी है।

आया : जिस गांव में भतीजा अपने चचा पर वार कर बैठे वहां ठहरना धरम नहीं।

चेतराम : अभी जमानत नहीं मिली बालेश्वर बाबू को।

आया :- अब हमें क्या मतलब। हम तो कलकत्ते पहुंचकर शांति की सास लेगे।

चेतराम : शाति !

आया : तू तो बुद्धू है, चेतराम। चल कलकत्ते। मौज उड़ायेगा। देखेगा बहार और बजायेगा चैन की बंसी।

चेतराम : गांव छोड़कर ? नौकरी ही करनी है तो अपनी धरती पर करूगा।

आया : अरे, शहर में नौकरी भी न करेगा तो भी रिक्शा चलाकर डेढ़-दो सौ महीना कमायेगा।

चेतराम : डेढ़-दो सौ ?

आया : हां, और रोज शाम को सनीमा ! होटल मे चाय ! चमचमाती सड़कें, जगमगाते महल ! ठाठ से रहेगा !

चेतराम : **(विरक्त मुद्रा)** खाना किराये का, रहना किराये का और बोली भी किराये की !

आया : जैसी तेरी मर्जी। भुगत यही देहात के संकट।

चेतराम : लोचन भैया तो कह···

आया : **(झिड़कती हुई)** चल, चल, लोचन भैया क वकील ! अदर जाकर देख, बीरेन बाबू तैयार हों तो सहारा लेकर लिवा ला। हेम बीबी तो तैयार हैं ?

चेतराम : अच्छा ! **(अंदर जाता है।)**

आया : **(जाते-जाते)** देखूं सामान भी ठीक-ठीक लदा है या नहीं। ये देहाती नौकर···**(बाहर जाती है।)**

(थोडी देर में राय तारानाथ और लोचन का बातें करते हुए बाहर से प्रवेश।)

राय तारानाथ : भई लोचन, मैं यहां नही रह सकता। अच्छा हुआ जाते वक्त तुम आ गये। बीरेन ने तुम्हे देखा नहीं। चलते वक्त उस दिन के एहसान के लिए···

लोचन : मैंने सोचा था कि आप लोग रुक जायेंगे।

राय तारानाथ : रुकना ? आया तो इसी विचार से था कि कलकत्ता के बाद देहात मे ही दिन काटूगा। लेकिन एक महीने में देख लिया कि हम तो इस दुनिया से निर्वासित हो चले। बरसों पहले की दुनिया उजड़ गयी और मैं जिस समाज में बसने आया था वह ख्वाब हो गया। चौधरी भी शायद उसी ख्वाब के भटके हुए टुकड़े थे। अभी उन्हें देखकर आ रहा हूं। उस दिन के झगडे मे बालेश्वर ने उन पर लाठी से वार नहीं किया, दिल को भी चकनाचूर कर दिया।

लोचन : बालेश्वर ही गांव की नयी पीढ़ी नहीं है।

राय तारानाथ : **(निराश स्वर)** मैं नही जानता कि कौन नयी पीढी है। बस, इतना देखता हूं कि रैयत के सुख-दुख में हाथ बंटानेवाला जमींदार, पुरखो के तजुर्बे के रक्षक बुजुर्ग, बेफिक्री की हंसी और बड़ों की इज्जत में पले हुए नौजवान—जब ये सब ही नहीं रहे तो गांव में ठहरकर मैं क्या करूं ? शहर···

लोचन : शहर आपको खींच रहा है, रायसाहब !

राय तारानाथ : **(लाचारी का स्वर)** तुम शायद ठीक कहते हो। शहर मुझे खींच रहा है।

लोचन : और आप बेबस खिंचे जा रहे हैं।

राय तारानाथ : (**पीड़ित मुद्रा में**) बेबस !···बेबस !···ऐसा न कहो लोचन, ऐसा न कहो !···हम जा रहे हैं क्योंकि···क्योंकि···

(**चेतराम का सहारा लिए बीरेन का प्रवेश। साथ में हेमलता भी है।**)

बीरेन : पापाजी, अब आप ही की देर है।

राय तारानाथ : (**मानो मुक्ति मिली हो**) कौन ? बीरेन, हेम ! तैयार हो गये तुम लोग ? तो मैं भी अपना अटैची ले आता हूं। चेतू, मेरे साथ तो चल !

(**घर की तरफ प्रस्थान। साथ में चेतराम।**)

लोचन : (**हेमलता से**) नमस्ते !

हेमलता : कौन ?···अच्छा, आप ? बीरेन, यही है लोचन जिन्होंने उस रोज तुम्हें बचाया था।

बीरेन : अच्छा !···उस दिन तो तुम्हें देखा नहीं था लेकिन फिर भी (**ग़ौर से देखते हुए**) तुम पहचाने-से लगते हो।

लोचन : (**मुस्कुराते हुए**) कोशिश कीजिये ! शायद पहचान लें।

बीरेन : (**सोचता हुआ**) तुम···वह···वह···नहीं-नहीं। वह तो किसी बड़े घराने का लड़का था।

हेमलता : कौन ?

बीरेन : मेरा कॉलेज का साथी एल.एस. परमार। तुम्हारी शक्ल बिलकुल···

लोचन : (**मुस्कुराहट**) एल.एस. परमार।···लोचनसिंह परमार।

बीरेन : (**चौंककर**) ऐ ! परमार···परमार !!

लोचन : (**अविचलित स्वर में**) हां, मै परमार ही हूं, बीरेन।

हेमलता : (**विस्मित**) बीरेन, यह तुम्हारे कॉलेज के साथी हैं ?

बीरेन : (**लोचन का हाथ पकड़कर**) यकीन नहीं होता, परमार, कि इतने दिन बाद तुम्हें देखूगा इस देहाती वेश में, मुसहरों के बीच। कॉलेज छोड़कर तो तुम ऐसे गायब हुए थे कि···

लोचन : (**किंचित् हंसी**) एक दिन मैंने तुम लोगों को छोड़ा था और आज (**रुककर**)···आज तुम जा रहे हो।

बीरेन परमार, मैं जा रहा हूं चूकि मैं अपने आदर्श को खंडित होते नहीं देख सकता।

लोचन : आदर्श ? कौन-से वे आदर्श हैं जिन्हें गांव खंडित करेगा ?

बीरेन : क्रांति का आदर्श, परमार ! मै भूल गया था कि देहात की मध्य-युगीन ऊसर भूमि अभी क्रांति के लिए तैयार नहीं है। उसके लिए ज़रूरत है शहर और कारखानो की सजग और चेतनशील भूमि की !

लोचन : (**तीव्र दृष्टि**) बीरेन, तुम भाग रहे हो।

बीरेन : मैं लाठियों की मार से नही डरता, लोचन !

लोचन : तुम भाग रहे हो लाठियों के डर से नही बल्कि उन गुटबंदियों, अंध-विश्वास और झगडे-फसाद की दलदल के डर से, जिसे तुम एक छलाग मे पार कर जाना चाहते थे। (**गंभीर चुनौतीपूर्ण स्वर में**) तुम पीठ दिखा रहे हो, बीरेन !

बीरेन : (**हठात् विचलित**) पीठ दिखा रहा हूं ?···नहीं···नहीं···यह गलत है। हम जा रहे है, क्योंकि···क्योंकि···

(**आया का तेज़ी से प्रवेश।**)

आया : हेम बीबी ! बीरेन बाबू !! अरे, आप लोगों को चलना नहीं है क्या ? कहां हैं बड़े सरकार ? आप लोग भी गज़ब करते हैं···

(**राय तारानाथ का प्रवेश। साथ में चेतराम अटैची लिए हुए।**)

राय तारानाथ : यह आ गया मैं। चलो भई, आया ! बीरेन, तुम चेतू का सहारा लेकर आगे बढ़ो, पहले तुम्हें बैठना है।

बीरेन : मै चलता हूं, परमार ! फिर कभी···

लोचन : फिर कभी ? (**किंचित् हंसी**) फिर कभी !···

(**आया अटैची लेती है। चेतराम का सहारा लिए हुए बीरेन बाहर जाता है। पीछे-पीछे आया।**)

राय तारानाथ : अच्छा भाई लोचन, हम भी चलते है···मुमकिन है तुम्हारा कहना सही हो।

लोचन : काश मैं आपको रोक पाता !

राय तारानाथ : हेम, तुम्हारी तस्वीर उधर कोने में रखी रह गयी।

हेमलता : अभी लायी, पापा। आप दोनों स्टेशन चलिए। सब लोग एक बार में नहीं जा सकेंगे। मेरे लिए तांगा स्टेशन से दुबारा भेज दीजिये।

राय तारानाथ : ठीक तो है। अच्छा लोचनसिंह, खुश रहो। (**प्रस्थान।**)

लोचन : आप जा ही रही है हेमलताजी ?

हेमलता : मजबूर हूं।

लोचन : मैं जानता हूं। बीरेन का मोह !

हेमलता : मैं बीरेन को यहां रख सकती थी, लेकिन ··

लोचन : लेकिन ?

हेमलता : (**सत्य की खोज से अभिभूत वाणी**) लेकिन एक बात है जिसे न पापा समझते है, न बीरेन। पर मैं कुछ-कुछ समझ रही हूं। पापा गाव को लौटे प्रतिष्ठा और अवकाश में सराबोर होने। बीरेन ने देहात को क्रांति की योजना का टीला बनाना चाहा। और मैं···मै गांव की मोहक झाकी मे कल्पना का महल बनाने को ललक पड़ी।

लोचन : महल मिटने को बनते हैं, हेमजी।

हेमलता : यह मैं जानती हूं, लेकिन हम तीनों यह न समझ सके कि हमारी जड़ें कट चुकी है, हम गांव के लिए बिराने हो चुके है !··· (**आविष्ट स्वर**) क्या आप इस दुविधा, इस उलझन, इस पीड़ा के शिकार नहीं हुए है ? एक तरफ गाव और दूसरी तरफ नागरिक शिक्षा-दीक्षा और सभ्यता की मजबूत जकड़। उफ़, कैसी भयानक है यह खाई जिसने हमारे तन, हमारे मन, हमारे व्यक्तित्व को दो टूक कर दिया है ? बताइए, कैसे यह दुविधा मिट सकती है ? कैसे हम धरती की गंध, धरती के स्पर्श को पा सकते हैं ? बताइए !···बताइए !

लोचन : आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास है।···यह देखिए, हेमलता देवी। (**कुदाली उठाता है।**)

हेमलता : कुदाली ?

लोचन : जी !···यह कुदाली और ये मेहनतकश हाथ, ये ही वह तिलिस्म हैं, जिनसे मैने उस कारागार को तोड़ने की कोशिश की है।

हेमलता : तोड़ सके ?

लोचन : कोशिश जारी है।

हेमलता : हिम्मत तो नहीं टूटी ?

लोचन : टूटती है·· कभी-कभी !···उस वक्त·· मन की आंखों के आगे छा जाता है···

हेमलता : अंधेरा ?

लोचन : अंधेरा नहीं ! अधेरा हो तो कोई दीपक भी जला ले।···अंधेरा नही बल्कि मृगमरीचिकाओं का प्रकाश···एक के बाद एक—चमचमाती हुई सतह, और चारो तरफ रेगिस्तान। जिधर देखो, जहा तक देखो—वही नजारा, वही निमत्रण।···चमकती हुई सतहों को निमत्रण, लपलपाती हुई जीभो की पुकार।···

हेमलता : (विस्मित होकर) लोचन बाबू !

लोचन : (उसी आवेश में) मानो कहती हों तुम जो थे वह थे मगर अब··· अब हम है और तुम हो ! ···तोड़ डालो मिट्टी का वह दीपक जिसे तुम जलाना चाहते थे। उसके तेल में वह तुर्शी नहीं जिसकी रोशनी मे रंगीनियों का भुलावा झलके।···हम तुम्हें भुलावे देंगे, मनभावन भुलावे, पूरी न होने वाली तमन्नाओं के मखमली भुलावे, अधमरी इच्छाओं का मीना बाज़ार।···मीना बाजार ! वैनिटी फेयर ! वैनिटी फ़ेयर ! !

हेमलता : ठहरो, लोचन !

लोचन : डर गयीं ?

हेमलता : नहीं ! ···

लोचन : तो···तो आप रुकियेगा ? कहिए, रुकियेगा न ? यहा की गंदगी और झगडों की काई के नीचे धरती की गंध और स्पर्श तक पहुचने के लिए ? कहिए—'हा' !

हेमलता : नहीं !

लोचन · (हटकर) मै जानता था, हेमलता देवी !

हेमलता : 'हेम' कहो !

लोचन : बीरेन बाबू का हक़ नही छीनूंगा।

हेमलता : उसके बिना भी तुम मेरे बहुत करीब हो, लोचन !

लोचन : खूब ! ···"होंठो पे हसी, माथे पे शिकन, इसरार भी है, इन्कार भी है।"

हेमलता : इनकार ! ···केवल इनकार ! ···इसलिए कि कुछ ही क्षण पहले मैंने समझा था कि जड़े हमारी ही कट चुकी है—गांव के लिए मैं ही बिरानी हो गयी हूं और धरती के अमृत का घूंट तुमने पिया है। पर···पर बात ऐसी नही है। धरती की गंध और स्पर्श को पहचानते हुए भी जिन भीतरी सोतों से तुम पानी खीचते हो वे तो पराये है। गांव की धरती के स्वच्छंद प्राणी नही हो तुम, बल्कि हो तुम भी मेरी ही तरह—बंदी ! बदी ! !

लोचन : (आहत) हेम !

हेमलता : चोट लगी न ?···मैं जानती थी ! लेकिन जंजीरें खींचने पर दर्द होता ही है। फिर भी ज़ंजीरें खनखनाना जरूरी है। ढोंग के परदे को झकझोरना जरूरी है।

लोचन : ढोंग ?···कौन-सा ढोंग ?···हेमलता···हेम···यह तुम क्या कह रही हो ?

हेमलता : ढोंग वही जो तुम्हें अपनी हस्ती से दूर खींचता है, वह जो तुम्हें अपनी असलियत से बचने को मजबूर करता है। (**करीब जाकर सहृदय स्वर में**) सुनो ! ·· तुम्हारी बातें डरावनी नहीं थी ! ···मैंने उनमे तुम्हारी व्यथा की कथा सुनी···तुम्हारी मजबूरियों का उच्छ्वास, तुम्हारी जकड़ी हुई आत्मा की पुकार, तुम्हारे एकाकी अस्तित्व की कंपकपाहट !

लोचन : बस करो, हेम···बस करो ! (**हाथों में मस्तक**) इतनी बेदर्दी से गाठें न खोलो !

हेमलता : (**लोचन के कंधे पर हाथ रखती हुई तरल स्वर में**) तुम्हारी इस दुविधा, इस व्यथा में मुझे अपनापन महसूस हुआ, लोचन !

लोचन : (**व्यथित स्वर में**) तुम नहीं जानती हेम, मैंने कितना तप किया है अपनी इस कमज़ोरी पर हावी होने के लिए जिसकी ओर तुम्हारा इशारा है। फावडा और हल चलाकर, कुदाली के श्रम में अपने को सराबोर करके, धरती के भेद को फिर से पाने को आतुर होकर मैंने कितनी लगन से अपने सस्कारो को धो डालने की कोशिश की है।

हेमलता : जानती हूं। और इसीलिए बाहर की दीवारे तुम तोड़ सके हो—और कारागार तुम्हे उस तरह घेरे नहीं है जैसे मुझे।···लेकिन तो भी, लोचन, तो भी हम दोनों ही बदी है। मैं अपनी कला, अपने परिवार, अपनी आरामतलबी की, तुम अपने सूक्ष्म और गहन विचारों, अपनी कल्पना···और अपने संस्कारों के ! ···और शायद हमें बंदी बने रहना है।

लोचन : किसलिए ? क्यो हम बदी रहें ?—क्यों ? क्यों ?

हेमलता : हमें बंदी रहना है क्योकि यही ईमानदारी का तकाजा है। (**कुछ रुककर**) मैं चलती हूं, लोचन ! ···यह तस्वीर छोड़े जाती हूं, तुम्हारे लिए !

लोचन : मुझे मेरी मजबूरियों की याद दिलाने के लिए ?

हेमलता : (**जाती हुई**) जो समझो ! ···पर जब कभी चिंगारी की तपन तो सह न सको, तो कलकत्ता का चक्कर लगा लेना ! ···चिंगारी को दबाना ठीक नहीं ! (**प्रस्थान।**)

(लोचन कुछ कहने को उद्यत होता है, हाथ उठाता है। पर फिर रुक जाता है। तस्वीर को दोनों हाथों से पकड़कर, अपने वक्ष से दूरी पर उठाकर घूरता है।)

लोचन : (**कुछ देर तक घूरने के बाद**) मैं तपिश को सहूंगा ! ···चिंगारी को लपट बन जाने दूंगा ताकि वह मुझे झुलसा दे।

(**चेतराम का प्रवेश। लोचन उसे नहीं देख पाता।**)

तस्वीर के बंदी ! क्यों तुम बंधे-से खड़े हो, हमेशा-हमेशा के लिए ? क्या इसलिए कि···

चेतराम : लोचन भैया !

लोचन : (**अपने ही में मग्न**) क्या इसलिए कि ये ग्रामीण नर्तक नाच सकें, हंस-खेल सकें, खा-पी सकें ? ओ तस्वीर के बंदी ! ···तुम्हारी तपन से इन लोगों की राह के झाड़-झंखाड़ भस्म हो जायें, लेकिन तुम्हारी जंज़ीरें इनके सिर का भार न बनें···और···और···मंज़िल के अंत में, एक ऐसी दीवार की तरह जिसके सिर पर से छत का बोझ हट गया हो, ऐसी अनचाही दीवार की तरह, अपने-आप ढह जायें।·· मैं ढह जाऊं···मैं···मै ही तो !

चेतराम : (**आगे बढ़कर तनिक ज़ोर से**) लोचन भैया, आप तस्वीर से बातें कर रहे हैं !

लोचन : (**मुड़कर तस्वीर रखता हुआ**) चेतराम ! (**रुककर**) यकीन रखो चेतराम, मैं घुटने नहीं टेकूंगा। (**चेतराम के कंधे पकड़ता हुआ**) चाहे जंज़ीरें मुझे लहूलुहान कर दें, चाहे रास्ते के कांटे मेरे तलुओं को छलनी बना दें।···यह हो नही सकता जब तक···जब तक तुम लोगों के बढ़ते क़दमों के लिए मैं अपनी हस्ती मिटाने को तत्पर रहूंगा।···हो नहीं सकता, नहीं-नहीं !

चेतराम : (**मानो अमित करुणा से अभिभूत**) लोचन भैया, अपनी जमीन पर नहीं चलियेगा ?

लोचन : (**सोते-सोते हठात् जगा हो**) ऐं !···

चेतराम : बहुत काम है, भैया ! अब तलहटी वाली ज़मीन वापस मिली है तो···

लोचन : (**गहरी आवाज़ में**) ठीक तो है। चलो खुदाई शुरू करें।

चेतराम : (**अटकती आवाज़ में**) शायद···शायद आपको आराम करना चाहिए, भैया !

लोचन : आराम ? (**शुष्क हास**) नहीं, चेतराम ! चलो, मुझे अपने पसीने के दर्पण में कभी न मिटने वाली छाया देखनी है ! ···(**कुदाली उठाता है**) चलो !

(**अंधेरा !**)

कॉफ़ी हाउस में इंतज़ार

—लक्ष्मीनारायण लाल

चरित्र

पहला व्यक्ति
दूसरा व्यक्ति (युवक)
बेयरा

(स्थान : **कॉफ़ी हाउस**)

(कॉफ़ी हाउस का एक कमरा। एक टेबल और एक ही कुरसी। पृष्ठभूमि में तीन व्यक्तियों की परस्पर बोलचाल, पहला व्यक्ति जिसकी अवस्था प्रायः पैतालीस वर्ष है, पाजामा-कुरता पहने हुए तेजी से आता है और दौड़कर कुरसी पर बैठ जाता है। उसके पीछे ही दूसरा व्यक्ति आता है, अवस्था लगभग पचीस वर्ष, पैंट-कमीज़ मे। इसे देखते ही पहला व्यक्ति जल्दी-जल्दी टेबल पर अपने कागज़-पत्र रखता है।)

पहला व्यक्ति : **(साधिकार)** बेयरा···!

बेयरा : **(आता है)** जी, बोलिए···जी, हुकुम कीजिए!

पहला व्यक्ति : एक कॉफ़ी, तीन गिलास पानी···एक कॉफ़ी···तीन पानी··· एक कॉफ़ी, तीन पानी···!

(बेयरा भी यही दुहराता है। दूसरा व्यक्ति इस इंतज़ार में है कि बात खत्म हो तो वह बोले। पर खत्म नहीं हो पा रही है। बेयरा बोलता हुआ जाता है।)

पहला व्यक्ति : मैं यहां रोज़ बैठता हूं। मैं पिछले तेरह वर्षों से यहीं बैठता चला आ रहा हूं। इसे सारी दुनिया जानती है। कोई एक न जाने तो मैं क्या करूं।

दूसरा व्यक्ति : आप झूठ बोलते है। पिछले छह दिनों से मैं यहां लगातार बैठता आ रहा हूं। यहां एक कुरसी हुआ करती थी। मैं यहां बैठा उसका इंतज़ार करता था। वह आती थी, फिर हम आमने-सामने बैठकर बातें किया करते थे।

(पहला व्यक्ति टेबल पर अपने लिखने का सामान सजाता रहता है।)

पहला व्यक्ति : मैं यहां बैठकर अपना काम करता हूं···

दूसरा व्यक्ति : मैं भी तो अपने काम से ही यहां आया हूं।

पहला व्यक्ति : बात करना कोई काम नही है।

दूसरा व्यक्ति : यहां बैठकर लिखना-पढ़ना भी कोई काम नही है!

पहला व्यक्ति : तुम अभी पढ़ते हो?

दूसरा व्यक्ति : तुम से मतलब?

पहला व्यक्ति : अपने देश की तवारीख पढ़ी है?

(दूसरा व्यक्ति सिगरेट जलाता है, और गुस्से से चुपचाप एक ओर देखने लगता है ।)

पहला व्यक्ति : अजीब बात है। आजकल के नौजवान अपने देश की तवारीख का नाम सुनते ही सिगरेट पीने लगते हैं। हमारी पीढ़ी में यह नही था। हमने इतिहास जिया है, भोगा है, और इतिहास के महान अध्याय की रचना की है ! हमने स्वतत्रता संग्राम'' ।

दूसरा व्यक्ति : **(काटकर)** चुप रहो, यही सब सुनाने के लिए तुम यहां रोज आते हो ?

पहला व्यक्ति : **(उठकर)** और तुम यहा हम पर गुस्सा निकालने आते हो ? **(रुककर)** एक सिगरेट मुझे नही दे सकते। **(लेकर)** हे राम, कितनी तेज सिगरेटें तुम लोग पीते हो ! हमारे जमाने में इस तरह सिगरेट पीने का रिवाज नही था ! हम इस उमर तक सत्याग्रही थे। हमारे सामने एक महान उद्देश्य था···कोई··· कुछ ऐसा था, जो हर क्षण हमें 'इंस्पायर' किये रखता था । **(यह कहता हुआ टेबल से टिककर खड़ा हो जाता है। सिगरेट पीता है। धुआं छोड़कर उसमें देखता हुआ बोलता है।)**

पहला व्यक्ति : धुएं में असख्य लकीरे हैं। सब अलग-अलग बिखरती टूटती हुई वायु-मडल के मुंह में समाती जा रही है। यह परिवेश जैसे एक बहुत बड़ी छिपकली है और यह सारी लकीरों को मुंह से चाटती जा रही है !

दूसरा व्यक्ति : **(सिगरेट मसलता हुआ)** तुम्हें इस तरह 'बोर' करने का कोई अधिकार नहीं !

पहला व्यक्ति : हमने तब सिगरेट नही पी थी। कॉफ़ी का नाम भी नहीं सुना था। 1944 में पहली बार इसका नाम सुना था—हमारे गुराजी गुरु ने तेरह दिन का उपवास तोड़ा था—आत्मशुद्धि का उपवास—अंगरेज कलक्टर ने अपने हाथ से उन्हें कॉफ़ी पिलायी थी।

(बेयरा आता है।)

बेयरा : एक कॉफी—तीन गिलास पानी···।

पहला व्यक्ति : अजीब लोग है—इनको कौन समझाये···इनसे कोई क्या कहे···इनमें इतना बेमतलब गुस्सा आता है···!

दूसरा व्यक्ति : चुप रहो !

(इसकी चिल्लाहट से जैसे सब झनझनाकर एक क्षण के लिए टूट जाता है ।)

दूसरा व्यक्ति : यहां एक और कुरसी थी।

पहला व्यक्ति : थी···यानी यह इतिहास की बात है। और इतिहास में क्या नही है ?

दूसरा व्यक्ति : यहा की वह कुरसी कहां है ?

बेयरा : भीतर है। उस पर एक सज्जन पुरुष बैठे हैं।

दूसरा व्यक्ति : पर वह कुरसी यहा की है।

बेयरा : सर, उस पर एक सज्जन पुरुष बैठे है।

दूसरा व्यक्ति : उस सज्जन पुरुष से कहो···

बेयरा . सर, वह कम सुनते है।

दूसरा व्यक्ति : मै लिखकर देता हू···।

बेयरा : सर, उन्हें बहुत कम दिखायी देता है।

(पहला व्यक्ति कॉफ़ी पी रहा है।)

पहला व्यक्ति : दरअसल आप उस सज्जन पुरुष को नहीं जानते, तभी आप को इतना गुस्सा है। मै उन्हे पिछले पचीस वर्षों से जानता हूं···।

दूसरा व्यक्ति : तो आप उन्हीं के पास जाकर क्यो नही बैठते ?

पहला व्यक्ति : मै यही तो आप से अर्ज़ करना चाहता हूं···आप उस सज्जन पुरुष को नही जानते। यही वह सुराजी गुरु है। अब यह हर वक्त कॉफ़ी पीता है और एक भीड़ से घिरा रहता है।

दूसरा व्यक्ति : मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानना चाहता !

पहला व्यक्ति : यही वह चाहता है !

दूसरा व्यक्ति : यह मेरी इच्छा है।

पहला व्यक्ति : यही उसकी इच्छा है।

दूसरा व्यक्ति : मुझे किसी की परवाह नही।

पहला व्यक्ति : उसे भी किसी की परवाह नहीं।

दूसरा व्यक्ति : मै देखता हूं···।

पहला व्यक्ति : वह हमें देख रहा है।

दूसरा व्यक्ति : मैं उसे जबरन उठा के कुरसी ले आता हूं। वह कुरसी यहां की है। मैं उस पर पिछले छह दिनों से लगातार बैठता रहा हूं।

बेयरा : (रोककर) सर, वह सज्जन यहां पिछले बीस सालों से लगातार बैठे है।

दूसरा व्यक्ति : पिछले छह महीनों से यहां हम बैठते रहे हैं। यहां वह बैठती थी···मै यहां बैठता था।

बेयरा : सही है। छह दिनो तक वह शहर से बाहर थे !

पहला व्यक्ति : **(जिसने अब तक कॉफ़ी समाप्त कर ली है)** भई, मैं छह दिनों मेडिकल चेकअप के लिए अस्पताल मे था। मुझे ब्लड् प्रेशर की शिकायत है। सुबह से दोपहर तक 'लो' और दोपहर से आधी रात तक 'हाई'। मुझे नींद नहीं आती। तब मैं यौगिक-क्रिया द्वारा अपने ब्लड् प्रेशर को बदल देता हूं। सुबह से दोपहर तक 'हाई' और दोपहर के बाद 'लो', फिर मैं सोता हूं।

दूसरा व्यक्ति : बंद करो अपनी यह बकवास !···मुझे यहां बैठकर उससे बातें करनी हैं।

पहला व्यक्ति । बेयरा; साहब क्या कर रहा है ?

बेयरा : साहब अपनी गर्ल फ्रेंड का इंतज़ार करना मांगता है। गर्ल फ्रेंड···!

दूसरा व्यक्ति : **(क्रोध से)** मुझे यहां बैठना है। हट जाओ···छोड़ दो···!

(दोनों व्यक्तियों में कुरसी के लिए युद्ध। बेयरा दौड़कर मेज़ पर से कप-प्लेट, गिलास उठाकर तेज़ी से चला जाता है। मेज़ गिर गयी है। कुरसी अब भी पहले व्यक्ति के हाथ में है। दूसरा व्यक्ति चोट खाकर नीचे गिरा है। बेयरा हाथ में दो गिलास पानी लिये आता है।)

बेयरा : सज्जन पुरुष ने आप लोगों को शीतल जल पिलाने को कहा है। जिसे ज़्यादा चोट आयी हो, वह थोड़ा रुककर पियेगा, जिसे कम आयी हो, वह फ़ौरन पिये !

(पहला व्यक्ति पानी पीता है।)

पहला व्यक्ति : आपके पास सिगरेट होगी···

(दूसरा व्यक्ति सिगरेट का पैकेट उसके मुंह पर फेंकता है। वह लेकर सिगरेट मुंह में लगाता है।)

पहला व्यक्ति : **(उठकर कुरसी पर बायां पांव रखकर)** मैं स्वतंत्रता संग्राम लड़ा हूं। देश को आज़ाद कराने में मेरा योग है, हाथ है, पार्ट है। इंक़लाब ज़िंदाबाद की बोल पर मुझ में खून बरसा है। भारत छोड़ो के एक नारे पर हमने बलिदान दिया है···।

(बेयरा धीरे-से ताली बजाता है।)

दूसरा व्यक्ति : मैं यहां तुम्हारे लिए नहीं आया था। मुझे अगर यह पता

होता कि यहां तुम-जैसे वेहूदा आदमी बैठते हैं तो मैं यहां हर्गिज न आता। यह सच है कि मैं तुम्हारी तरह स्वतंत्रता संग्राम नही लड़ा, पर वह कोई संग्राम भी था ! तुमने वलिदान दिया···जब विद्रोह ही नही तो वलिदान कैसा···!

पहला व्यक्ति : अरे···स्वतंत्रता संग्राम और कैसे होता है। अरे···रे···रे, वाह रे, वाह···मेरे मिट्टी के शेर···!

दूसरा व्यक्ति : स्वतंत्रता संग्राम वह है जो नीचे से लड़ा जाता है···नीचे से ऊपर तक···। ऊपर से नीचे नही। जिसमें मूलभूत परिवर्तन होता है···सुधार नहीं—'पावर का ट्रांसफर' नहीं। शक्ति की नयी सृष्टि, जो आजाद जमीन से पैदा होती है।

पहला व्यक्ति अरे···रे···रे···अरे···बेयरा, इन्हे कॉफी पिला···!

दूसरा व्यक्ति : मेरा मजाक किया तो सिर तोड़ दूगा···।

पहला व्यक्ति : दरअसल अभी आप को अनुभव नहीं है। आप में इतना उत्साह है···यह काबिलेतारीफ है। और मैं इसकी वड़ी इज़्ज़त करता हू।

दूसरा व्यक्ति : मुझे 'पेट्रोनाइज' करने की कोशिश मत करना, तुम-जैसों ने हमारी जिंदगी वरबाद की है।

पहला व्यक्ति . क्या कहा ! क्या···रुको···का···जरा, मुझे समझने दो··· दरअसल मै हाई स्कूल भी पास नहीं हू। 1942 मे नवी कक्षा में पढ़ता था···तभी स्वतंत्रता सग्राम में कूद पड़ा···।

दूसरा व्यक्ति : कूद पड़े या किसी ने धक्का मार दिया !

पहला व्यक्ति . जरा समझने दो···समझने दो, यह वहुत अच्छा विषय है। देखिए न, कॉफ़ी हाउस कितनी उम्दा जगह है। · तो आपने कहा, कि मैंने आप की जिंदगी बरबाद की है। अर्थात मै भी यह कहू, उस सज्जन पुरुष ने मेरी जिंदगी बरबाद की। यह वहुत अच्छा निष्कर्ष है···इस पर एक जोरदार सौ रुपये वाली कहानी लिखी जा सकती है।

(कागज़ पर तेजी से नोट करने लगता है। दूसरा व्यक्ति उस कागज को छीनकर फाड़ता हुआ।)

दूसरा व्यक्ति : तुम्हारे कल की दिलचस्पी केवल निष्कर्ष ढूंढने में थी। उसी प्रक्रिया ने एक ओर सुभाष बोस को देश से वाहर निकाल, दूसरी ओर अरविंद को योगी बनाया।

पहला व्यक्ति : यह सब मुझे लिख लेने दो, नहीं तो मैं भूल जाऊंगा।

(इस बीच बेयरा दौड़ा हुआ अंदर जाता है और तेजी से बाहर आता है।)

बेयरा : सज्जन पुरुष ने आप से विनम्र निवेदन किया है कि आप थोडा जोर-जोर से बोले, ताकि वह आपकी 'स्पीच' सुन सकें। उन्होंने आपके लिए काजू के साथ क्रीम कॉफ़ी का 'ऑर्डर' दे दिया है।

दूसरा व्यक्ति : वह आर्डर उसी के चेहरे पर दे मारो !

बेयरा : वह सचमुच बहुत सज्जन व्यक्ति है। उनमे जरा भी क्रोध नहीं है।

दूसरा व्यक्ति : मुझ में है···जाकर बोल दो उससे !

बेयरा : उन्हे सब पता है। वह सबके कल्याण के लिए हर वक्त चिंतन करते रहते है।

दूसरा व्यक्ति : तू चुप रहता है कि नहीं ?

बेयरा : जब तक वे यहां बैठे रहेंगे, यही खड़े रहने की मेरी 'ड्यूटी' है।

दूसरा व्यक्ति : तो खड़ा रह !

बेयरा : सर, माफ कीजिए, बोलना भी मेरी ड्यूटी में शामिल है।

(इस बीच पहला व्यक्ति अपने 'बैग' से कुछ और 'लेटरहेड', 'पैड पेपर' रसीद-बुक और मोहरदानी निकालता है । कुछ पत्र-पत्रिकाए हैंडबिल भी।)

पहला व्यक्ति : **(सहसा एक हैंडबिल पढ़ता है)** देवियो और सज्जनो ! यह गहरी चिंता और दुख का विषय है कि हमारी राष्ट्रीय चेतना दिनोदिन उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरो पर हमारे चरित्र का क्रमशः पतन हो रहा है। क्या परिवार, क्या घर, क्या दफ्तर, क्या शिक्षण संस्थाएं और क्या सार्वजनिक जीवन क्षेत्र···सर्वत्र एक इंडिसिप्लिन इंडिसिप्लिन···ऐं···इडिसिप्लिन का अनुवाद आप क्या करेंगे ?···

दूसरा व्यक्ति : अपना सिर !

पहला व्यक्ति : अपना सिर···ऐ बेयरा, सज्जन पुरुष ने पूछो—इंडिसिप्लिन का हिंदी अनुवाद क्या होगा ?

(वह तेजी से जाकर आता है ।)

बेयरा : सज्जन पुरुष ने कहा है यही इंडिसिप्लिन चलने दीजिए। उन्हे यह बहुत प्रिय है। इससे उसका मनोरंजन होता है।

पहला व्यक्ति : **(पढ़ता हुआ)** तो हां, सर्वत्र एक इडिसिप्लिन छायी हुई है। इसके लिए यह परम आवश्यक है कि हम जगह-जगह, स्थान-स्थान··· **(सहसा दूसरे व्यक्ति की ओर देखता है)** क्यों, आपने कान क्यों बंद कर रखे हैं ? यह

इश्तिहार कैसा लगा आपको ? यह मैने तैयार किया है। देखिए, मुझे अभी बहुत काम करना है। घर से भागकर इसीलिए सुबह-सुबह मैं यहा आता हूं।

दूसरा व्यक्ति : आप से पहले मैं आया हूं।

पहला व्यक्ति . बधु, नाराज मत हो, हम दोनों की पीड़ा कही समान है। हम दोनो, हमसफर है, हमदर्द है।

दूसरा व्यक्ति : मै तुम से बात नहीं करना चाहता।

पहला व्यक्ति . ऐसा मत कहो, बात ही तो हमारा जीवन है। हम या तो व्यस्त रहते है या खाली रहते है, उसी खाली को भरने के लिए हम यहां आते है। इस तरह चुप मत हो। यह खामोशी मुझे घूरती है···बोलो···बोलो···कुछ बोलो···। तुम तो बहुत अच्छा बोलते हो !

(दूसरे व्यक्ति को स्नेह से छूता है। उपेक्षा करता है।)

पहला व्यक्ति : भई, मुझे बहुत काम करना है। इतना काम कि तुम उसकी कल्पना नही कर सकते। इस तरह मुझे अभी पाच इश्तहार और लिखने हैं। तीन के प्रूफ देखने है, दो के प्रिंट ऑर्डर देने है। ये सारे पैड रखे है न, ये सारी महत्वपूर्ण सस्थाए है, मै किसी का मत्री, किसी का अध्यक्ष, किसी का कोपाध्यक्ष और किसी का सचालक हू, पता नहीं, मुझे कितने-कितने पत्र लिखने है। यह देखो, मेरी आज की डायरी, इतने लोगों से मुझे स्वय मिलना है। इतनी जगहों पर लोग खुद मुझमे मिलने आयेंगे। इतने लोगों को मुझे लोगों से मिलाना है। ···मै कितना व्यस्त हू और कितनी-कितनी जिम्मेदारिया मेरे ऊपर हैं। पूछो इस बेयरा से, यहा नित्य आने वाला वह पहला व्यक्ति मै होता हू और रात के सवा-दस बजे यहां से जाने वाला वह आखिरी व्यक्ति मैं होता हूं···पहला और आखिरी !

(कुरसी पर बैठकर पैड पर लिखने में व्यस्त हो जाता है।)

पहला व्यक्ति : **(लिखते-लिखते सहसा)** क्या कहा···था,···संग्राम···नीचे से होता है···नीचे याने ?

दूसरा व्यक्ति : **(गुस्से में डूबा है)** जूतों की ठोकरों से !

पहला व्यक्ति : **(लिखता हुआ)** जूतो की ठोकरों से। **(फिर रुकता है)** नीचे से ऊपर···और ऊपर से नीचे···इन दोनों में कुछ फर्क है क्या ?

दूसरा व्यक्ति : इस फर्क के अनुमान के लिए आपको शीर्षासन करना होगा।

पहला व्यक्ति : सच ! ···ओह तभी महापुरुष लोग हर सुबह शीर्षासन किया करते थे···ज़रूर इसमे कोई रहस्यशक्ति है। मैं अभी करता हूं।

(शीर्षासन करने का प्रयत्न, बार-बार गिरता है, बेयरा ऊपर टांग संभालता है।)

पहला व्यक्ति · **(घबरा जाता है)** ओह सारी दुनिया उल्टी दिखायी पड़ रही है। जो ऊपर था वह नीचे हो गया, जो नीचे था वह ऊपर हो गया।

दूसरा व्यक्ति : और बीच मे क्या है ?

पहला व्यक्ति : **(त्रस्त)** केवल शून्य···केवल शून्य। छोड़ दो, छोड़ दो मुझे। छोड़ दो। **(घबराकर खड़ा हो जाता है, सांसें फूल रही हैं।)**

पहला व्यक्ति : बेकार की बातें है ये। मुझे इनसे क्या मतलब ! मुझे कितना काम करना है। मैं तुम्हारी तरह बेकार नहीं। मेरे जीवन का अब भी एक लक्ष्य है···मुझे अब भी बहुत आशा है। प्लीज़, एक मिनट सिगरेट दीजिए।

(मुंह में पेंसिल लगा लेता है। इसे सिगरेट समझकर पीता है। और लिखने लगता है।)

दूसरा व्यक्ति : **(बेयरा से)** आज कॉफी हाउस में इस तरह चौगुनी भीड क्यों है ?

बेयरा · सर, आधे लोग तो वही है जो यहा रोज़ बैठते है, शेष लोग नये है। कल से ये लोग भी बैठने लगेंगे। सर, मतलब यह कि···आज दफ्तरों, स्कूल-कालेजों में स्ट्राइक है।

दूसरा व्यक्ति : हम दोनों ने कल यहीं मिल बैठने का वायदा किया था। वह आयेगी तो कहां बैठेगी—? तुम्हें पता होना चाहिए, वह मामूली लडकी नही है।

बेयरा : सर, वह बाहर सड़क पर आकर ही खडी हो गयी होगी।

दूसरा व्यक्ति · वह किसी की परवाह नही करती। उसे किसी का डर नहीं है।

बेयरा : सर, वह कॉफी हाउस के भीतर आने की कोशिश कर रही होगी।

दूसरा व्यक्ति उसे कोई नही रोक सकता !

पहला व्यक्ति : **(चिल्लाता है)** डॉण्ट डिस्टर्ब, देखते नहीं, मै इस वक्त कितना व्यस्त हूं।

बेयरा : पर भीतर वह सज्जन पुरुष तो खाली बैठा है—मुझे उनके लिए बोलना ही होगा। यह नौकरी मुझे उन्हीं की वजह से मिली है।

दूसरा व्यक्ति : वह इधर से आयेगी।

बेयरा : नहीं, इधर से, हाल मे से होती हुई।

दूसरा व्यक्ति : क्यों ?

बेयरा : इधर वह सज्जन पुरुष बैठा है !

दूसरा व्यक्ति . कहां बैठा है ? कौन है वह ? क्या है ? क्यों है ?

बेयरा : **(रोकता है)** सर, नही-नही, आप उधर नहीं जा सकते !

दूसरा व्यक्ति : **(आवेश में)** ज्यादा बकवास की तो उठाकर फेंक दूंगा।

बेयरा : सर, मार-पीट करने के लिए उधर उतना बड़ा हाल है।

(दूसरा व्यक्ति **बायें दरवाजे पर खड़ा होकर हाल की ओर देखता है। हाल में झगड़ा हो रहा है। मार-पीट। एक प्लेट दूसरे व्यक्ति के पेट पर लगती है। वह चीख पड़ता है।**)

दूसरा व्यक्ति : **(दर्द से)** हाय मार डाला ! **(बेयरा से)** बदतमीज, तू यह दरवाजा बंद क्यो नही रखता ?

बेयरा : सर, यह आप ही लोगो का कॉफी हाउस है !

दूसरा व्यक्ति : मुझे खामखाह इतनी चोट लगी है !

(वह दरवाजा बंद करना चाहता है। बेयरा उसे रोकता है।)

बेयरा . मैं कहता हूं सर, यह दरवाजा इसी तरह खुला रहेगा।

दूसरा व्यक्ति : **(क्रोध से)** बदतमीज़, नालायक—!

पहला व्यक्ति : अ ह ह ! मेरा वह तीसरा इश्तहार पूरा हो गया ! **(पढ़ने लगता है)** पालतू कुत्तों की शानदार, भव्य प्रदर्शनी। आइए—आइए—बडी से बड़ी तादाद मे आइए। अपने पालतू कुत्तो को पकड़े हुए आइए।——

दूसरा व्यक्ति : अब दरवाजा बंद होगा या नहीं ?

पहला व्यक्ति : रामलीला मैदान मे करीब ढ़ाई हजार कुत्तों के आने की आशा है।

पहला व्यक्ति : **(पढ़ता हुआ)** कुत्ता वह पहला जानवर है, जो मनुष्य के समीप आया। हजारों वर्ष से यह दोनो जीव साथ-साथ रहते आये है। दोनों ने समान रूप से एक-दूसरे को प्रभावित किया है। कुत्ते का हमारे सांस्कृतिक जीवन मे अत्यधिक महत्त्व है। चंद्रलोक में उतरने वाला वह पहला जीव यही कुत्ता होगा। कुत्ता एक धार्मिक जीव है, यह भौंकता भी है और पूछ भी हिलाता है।

पहला व्यक्ति : **(जैसे कुत्ते को बुलाया जाता है)** जा, एक कप कॉफ़ी ला !

बेयरा माफ कीजिए सर, मैं कुत्ता नहीं हूं।

(बेयरा जाता है ।)

दूसरा व्यक्ति : तुम्हे एक इश्तहार के कितने पैसे मिलते हैं ?

पहला व्यक्ति : वह इस बात पर मुनहसर करता है कि इश्तहार का विषय क्या है ?

दूसरा व्यक्ति : मसलन इसी कुत्ते के विषय का···।

पहला व्यक्ति : इसका पेमेंट तो सबसे ज्यादा है···मसलन यही एक हफ्ते कॉफ़ी हाउस मे आने-जाने का पूरा खर्चा।

(बेयरा आता है ।)

(दूसरा व्यक्ति दरवाजे पर खड़ा उस सज्जन पुरुष को देखता है ।)

बेयरा : हां सर, वहां खड़े-खड़े आप उन्हे बेशक निहारिए·· देखिए··· घूरिए। जो चाहे कीजिए।

दूसरा व्यक्ति : **(नफरत से)** छीः···छी···इस तरह दोसा खा-खाकर अपने चारों ओर घिरे हुए लोगों के बीच बात कर रहा है जैसे चभर-चभर कोई कुत्ता खा रहा हो और कचर-कचर बेसिर-पैर की बाते कर रहा हो !

बेयरा : सर, धीरे-धीरे। वह सज्जन पुरुष इस वक्त 'प्रेस कांफ्रेंस' कर रहे हैं।

दूसरा व्यक्ति : इस तरह चभर-चभर खाते हुए प्रेस कांफ्रेंस ?

बेयरा : हा सर, प्रेस कांफ्रेंस, 'फूड प्राब्लम' पर !

दूसरा व्यक्ति : वह इतने गंदे ढंग से खा-खाकर बातें कर रहा है कि मै आज से अब कभी दोसा नही खा पाऊंगा।

बेयरा : इंकलाब जिंदाबाद !

पहला व्यक्ति : **(सहसा लिखना बंद कर)** क्या कहा, फिर से तो कह, क्या कहा, फिर से तो कह !

बेयरा : हां, क्या कहा। पता नहीं क्या कहा,···अभी मैंने क्या कहा था··· हां, क्या कहा था !

दूसरा व्यक्ति : **(दरवाजे पर)** चला जा यहां से ! भाग जा !

(पृष्ठभूमि में लोगों की हंसी।)

पहला व्यक्ति : **(बेयरा के संग सोचता-सा)** तूने अभी कुछ कहा था। दो शब्द थे। अच्छे शब्द थे, तूने हाथ उठाकर कहा था···तेरे होंठ फड़क पड़े थे···तेरी आखें चमकी थी।

बेयरा : वह दरअसल मैने कल रात फिलिम मे देखा था सर, वही दोनों शब्द कहकर हीरो हिरोइन के सग गाने लगा था !

पहला व्यक्ति : वह गाना क्या था···बता, फिर वह शब्द मुझे याद आ जायेगा।

बेयरा : कुछ इसी तरह था···तन डोलै रे मनु डोलै रे,···।

पहला व्यक्ति : (**सोचने में डूब गया है**) आगे—इसके आगे और क्या है ?

बेयरा : सर, मुझे शरम लगता है।

पहला व्यक्ति : (**जैसे कोई स्वप्न देख रहा है**) उन्नीस सौ बयालिस के वे दिन···हम लोग अपने नेता के साथ जुलूस मे जा रहे थे। वही शब्द आगे··· वही शब्द पीछे···वही आगे-पीछे···पूरे वातावरण मे···वही शब्द। क्या था वह शब्द···तेरे मुह से वही शब्द अभी-अभी निकला था···बता···याद···कर उस शब्द की मुझे सख्त जरूरत है···मुझे अभी लिखना है और उसमें उस शब्द का इस्तेमाल करना है !

दूसरा व्यक्ति : उसकी टेबल पर कई किताबें रखी हुई है। उन किताबो में शायद वह शब्द हो !

बेयरा : नही सर, वे किताबें ज्योतिष और हस्तरेखा की हैं।

दूसरा व्यक्ति : (**आवेश में**) उसकी टेबल उलट दो, तब शायद उसके नीचे वह किताब मिल जाये···जिसमें वह शब्द हो !

पहला व्यक्ति : तुम्हें भी वह शब्द भूल गया ?

दूसरा व्यक्ति : मुझे अब तक याद था···उस पिछले सेकेण्ड तक, जब मैं यहां आकर खड़ा हुआ, पर उसे देखते ही मै सब-कुछ भूल गया···सबके बीच अकेले उस तरह खाना···और खाते-खाते उसका हर क्षण बोलते रहना ! (**रुककर**) एक मिनिट के लिए मुझे उसके पास जाने दो · मै उसका टेबल उलट दूगा···उसे जमीन पर गिराकर उसकी कुरसी छीन लूगा···।

बेयरा : सर, यह नहीं हो सकता।

पहला व्यक्ति : क्या कहा ?···"यह नही हो सकता ?"

बेयरा : हा सर, उस सज्जन पुरुष के पास यह सज्जन साहब नही जा सकते।

दूसरा व्यक्ति : (**चिल्ला पड़ता है**) मेरा नाम सज्जन नही।···मै इस संज्ञा से नफरत करता हूं।

बेयरा : अच्छा-अच्छा, मैं जब तक यहां हूं यह साहब उस सज्जन पुरुष के -पास नहीं जा सकते।

दूसरा व्यक्ति : मैं तेरा सिर तोड़ दूंगा।

बेयरा : सर, वेरी सारी !

दूसरा व्यक्ति : मै यही खामोश कर दूंगा।

बेयरा : सर, वह सज्जन पुरुष यही चाहता है।

पहला व्यक्ति : तभी उसने बीच में तुझे खड़ा कर दिया है।···बीच में यही शून्य है, लोग यहां पत्थर फेंकें···यह चारों ओर आवाज है, लोग इसमें मारपीट कर अपने गुस्से को जलायें। लोग अपना गुस्सा उलटी संज्ञा मे निकालें ऐंटी··· ऐंटी···ऐंटी···।

(बेयरा घूमकर दूसरे व्यक्ति की जगह खड़ा हो जाता है। दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति के संग खड़ा हो जाता है।)

दूसरा व्यक्ति लगता है, यह उसीका आदमी है।

पहला व्यक्ति : उसी वजह से इसे यहां बेयरा की नौकरी मिली है।

दूसरा व्यक्ति . यह किसी तरह पटाया नहीं जा सकता ?

पहला व्यक्ति : मुझे कभी ऐसी जरूरत नहीं पड़ी। बल्कि कभी सोचा ही नही।

दूसरा व्यक्ति : आज तो हम दोनों को ज़रूरत है। उस शब्द को तुम्हे लिखने गे इस्तेमाल करना है, उस शब्द पर मुझे उससे कुछ बातें करनी हैं। उसके यहां पहुंचने से पहले मुझे वह शब्द याद रहना चाहिए।

पहला व्यक्ति : तुम्हारी उस गर्ल फ्रेंड का नाम क्या है ?

दूसरा व्यक्ति : 'दिस इज़ इर्रिलेवेंट' !

पहला व्यक्ति : 'रिलेवेंट' क्या है ?

दूसरा व्यक्ति : वह शब्द ! और वह उस शब्द का प्रतीक है।

पहला व्यक्ति : ओह वंडरफुल ! फिर तो यहां उसके बैठने का इंतजाम होना ही चाहिए !

(इस बीच बेयरा भीतर आकर प्लेट में बची, जूठी चीजें ले आता है।)

पहला व्यक्ति : बेयरा, कही से एक कुरसी का इतजाम करना ही होगा।

बेयरा : इम्पासीबुल सर, बाहर भीड़ बढती जा रही है।

पहला व्यक्ति : कहा जा रहा है ?

बेयरा : सज्जन पुरुष की आज्ञा है, देश में अनाज की कमी है, खाने की चीजें फेंकी न जायें। बाहर भिखारियों की भीड़ खड़ी है।

(बायीं ओर से चला जाता है, उसी क्षण बायीं ओर से शोर उठता है। बेयरा उलटे पांव दौड़ा आता है।)

बेयरा : बाप रे बाप ! इतनी भीड़ !

पहला व्यक्ति : इधर से क्यों नहीं जाता ?

बेयरा : अब इधर से जाना मना है ?

दूसरा व्यक्ति : क्यों ?

बेयरा : अब यही से यह जूठन भिखारियों के पास फेंकना होगा, इस देश में भिखमगों की हालत देखो, खायेंगे तो 'सैंडविचेज़' के ही जूठन खायेंगे। **(फेंकता है)** ले। अरे···रे···रे झगड़ता क्यों है। अरे सालो, आपस में झगड़ने से क्या होगा। ये ले 'हाट डॉग'···सब इम्पोर्टेड है बेटा !···अरे झगड़ना नही···लड़ना नहीं···सज्जन पुरुष अभी भीतर बैठा है···आज बहुत माल निकलेगा। **(फेंकता है)** ये ले 'हैम्बार्गर', यही है अब स्वदेशी···!

पहला व्यक्ति : **(सहसा)** क्या कहा ! तूने अभी क्या कहा ?

बेयरा : दांत से पकड़े हूं···कही उस शब्द की तरह वह भी न भूल जाये···स्वदेशी···स्वदेशी···यानी इम्पोर्टेड···।

पहला व्यक्ति : हम ने तब विदेशी माल में आग लगायी थी **(दूसरे व्यक्ति से)** तुम लिखते जाओ, मैं बोल रहा हूं···मैं बोलता जाऊंगा···रुका कि सब-कुछ भूल जाऊंगा।···स्वदेशी···स्वदेशी···स्वदेश मन है, स्वदेश तन है, स्वदेश···आगे याद नहीं आ रहा है···स्वदेश नाम की तब एक लड़की भी थी।

बेयरा : स्वदेश प्रसाद मेरे पिता का नाम था।

पहला व्यक्ति : तब भारतवर्ष ही स्वदेश था।

(दूसरा व्यक्ति तेजी से लिखता जा रहा है। पैड के कागज भरते जा रहे हैं, वह फाड़-फाड़कर नीचे फेंकता जा रहा है। पहला व्यक्ति बटोरता जाता है··· समेटता है।)

पहला व्यक्ति : हमारे उस स्वदेश में कैसे-कैसे नेता थे। उन्होने कितने-कितने बलिदान दिये। सारा स्वदेश एक महान प्रेरणा में बधा था···चारों ओर एक प्रकाश फूट रहा था···। ओह तुम लिख क्यो नही रहे ? सारा गुड गोबर कर

दिया···यह एक सम्पादकीय था···आज शाम को इसे मैं बीस रुपये में बेच देता···।

दूसरा व्यक्ति : (**उठता हुआ**) तुम इसे केवल बीस रुपये में बेचोगे। और यह देश ?

पहला व्यक्ति : सावधान, मै अपने देश के गौरव के खिलाफ कुछ भी सुनना पसन्द नही करूंगा।

दूसरा व्यक्ति : इस देश की क्या कीमत है, इस का सही-सही हिसाब जोड़ा जा चुका है। बल्कि आधी रकम 'एडवांस' में दी जा चुकी है।

पहला व्यक्ति : तेरी 'गर्ल फ्रेंड' नही आयी अभी तक, तेरा दिमाग कही चढ़ तो नही गया !

दूसरा व्यक्ति : अतर्राष्ट्रीय बाजार में इस का भाव खुल चुका है। सट्टेबाज शेयर मार्केट में चिल्ला रहे है।

(**पृष्ठभूमि में अनेक स्वरों में 'आये राम', 'गये राम', 'आये राम', 'गये राम'।**)

पहला व्यक्ति : (**चीख पड़ता है**) चुप करो···चुप करो।

(**एक ठंडी खामोशी खिच गयी है।**)

बेयरा : सर, भीतर वह आ गयी है !

दूसरा व्यक्ति : वह आ गयी है।

बेयरा : गर्ल फ्रेंड !

दूसरा व्यक्ति : मिनी···।

(**दूसरा व्यक्ति दौड़ता है। दरवाजे पर रुककर देखता है।**)

दूसरा व्यक्ति · (**पुकारता है**) मिनी !

बेयरा : सर, ज़रा धीरे से पुकारिए, सज्जन पुरुष उस से कुछ बात कर रहे है।

दूसरा व्यक्ति : (**गुस्से से**) क्या बकता है ?···मिनी, सुनो मिनी (**रुककर**) ओह ! उसके लिए अब कुरसी का इतजाम करना ही होगा। (**आवेश में**) मैं उसे कुरसी से धक्का देकर अपने दोस्त के लिए कुरसी लाने जा रहा हूं।

(**बेयरा दौड़कर पकड़ लेता है।**)

बेयरा : (**पैर पकड़कर**) नही, नही सर, ऐसा करना गलत होगा। चारो ओर उपद्रव फैल जायेगा।

दूसरा व्यक्ति : अब मेरे बर्दाश्त के वाहर है।

पहला व्यक्ति : (**दौड़कर रास्ता रोकता है**) हा, यह सही कहता है, सज्जन पुरुष को मत हटाओ। नहीं तो महाजुल्म हो जायेगा। चारो ओर 'केथास' फैल जायेगा। यह सारी व्यवस्था भंग हो जायेगी। हमारा यहां रहना गैर-मुमकिन हो जायेगा।

दूसरा व्यक्ति · कौन है तू ?

पहला व्यक्ति मै···मै···मै···मै···एक व्यक्ति हूं।

दूसरा व्यक्ति : तू कुछ और है !

पहला व्यक्ति : मै तुम्हारी ही तरह एक व्यक्ति हूं, इस देश का नागरिक हूं।

दूसरा व्यक्ति : नही तू अग्रेज है। वही अग्रेज, जिससे शायद तू लड़ा था। उस अजीब लड़ाई ने तुझे उलटे वही बनने को मजबूर कर दिया जिससे तू लड़ रहा था। वह इतना आश्चर्यजनक दुश्मन था कि तू उसी के अनुसार सग्राम करने को विवश हुआ। तेरे सग्राम की सारी नीति उसी दुश्मन के हाथ मे थी।

पहला व्यक्ति . तू ने देखा था ?

दूसरा व्यक्ति : देख रहा हू।

पहला व्यक्ति : असम्भव !

दूसरा व्यक्ति · मै तेरा ही वर्तमान हू···जैसे कि तू मेरा भूत है। (**विराम**) यहां की सारी लडाई व्यक्तिगत है · बिलकुल निजी स्तर पर। बहुत छोटी-सी बात को हम बड़े रूप देने के आदी हैं। और बड़ी बात को हम न देख पाने के अभिशप्त है।

बेयरा . सर, तभी आप उस कुरसी के लिए आज इतना परेशान हैं। कल से मैं यहा दो कुरसी रखूगा।

पहला व्यक्ति : रुको, रुको, मुझे याद कर लेने दो···कितनी पते की बात है यह, (**दौड़कर लिखने लगता है**) हम जिस के खिलाफ लडते है, एक दिन वही खुद बन जाते है···और और क्या कहा ? (**सहसा**) ओह · सब-कुछ मै कितनी जल्दी भूल जाता हू···लगता है मेरा 'लिवर' खराब है।

बेयरा : सर, इस उमर मे गेहूं नहीं खाना चाहिए।

पहला व्यक्ति : वह शब्द क्या है, सोच, तू ने क्या कहा था ?

बेयरा : सर, वह फिलिम मे है···जयहिंद टाकीज में वह फिलिम चल रही है।

पहला व्यक्ति . मुझे अभी जरूरत है, अभी, अपने लेख में उसे डालना है, इन्हे गर्ल फ्रेंड से उसी विषय पर बात करनी है।

दूसरा व्यक्ति : तुम लोग मुझे जाने क्यों नही देते ? मै उस सज्जन पुरुष को कुरसी से उलट दूंगा, फिर वह शब्द अपने-आप फूटेगा !

पहला व्यक्ति : (**सोचता है**) कुरसी उलटने से ही वह शब्द फूटेगा। तो मूल वही कुरसी है। (**लिखने लगता है**) यह सारा चक्कर उसी के लिए है। (**दौड़ता है**) नही, नहीं, आप उस सज्जन पुरुष के पास नही जा सकते। कम-से-कम वह आदमी सीधा तो है, मैं उसे इतने दिनो से जानता हूं। अगर तूने उसे कुरसी से नीचे गिराने की कोशिश की तो उसके बाद यहां इस तरह मारपीट, लूट, डाके शुरू होंगे कि तू यहा खड़ा नहीं बचेगा।

दूसरा व्यक्ति : याद करो स्वतंत्रता संग्राम के वे दिन···ठीक ऐसा हो उसने भी कहा था, कि हम स्वेज कनाल पार नहीं कर पायेंगे कि··· (**दोनों मूर्तिवत् चुप हो जाते हैं, जैसे सहसा उन्हें किसी ने गूंगा बना दिया है।**)

बेयरा : (**घबराया हुआ**) कि···कि···कि··· (**सहसा दौड़ता है**) यस सर। (**दायीं ओर जाता है। दोनों व्यक्ति गुस्से से निःशब्द बातें कर रहे हैं। पहला व्यक्ति सत्याग्रही चेष्टाएं करता है, दूसरा व्यक्ति क्रोध-भरी आवेशजन्य मुद्राएं दिखा रहा है। बेयरा थोड़ी देर बाद आता है।**)

बेयरा : सर···ओ···मिस्टर ! ओ बाबू लोग···सज्जन पुरुष बहुत परेशान है, आप लोग इस तरह अचानक चुप क्यों हो गये ? आप लोगो की बातें, आप लोगों का गुस्सा, आप लोगों का सारा व्यवहार उन्हें बहुत प्रिय है। उनका 'प्रेस कांफ्रेंस' खत्म हो गया है। स्ट्राइक वालो का एक 'डेलिगेशन' उनसे मिलने आया है। वह भी थोडी देर में चला जाने वाला है। आप लोग बोल कर बातें कीजिए ओ सर···सर···ओ सर।

(**दोनों व्यक्ति उसी तरह बेयरा को निःशब्द पूछते हैं कि क्या उनके मुंह से बोल नहीं निकल रहा है।**)

बेयरा : अरे, आप लोग बोल नहीं पा रहे है, जी नही, मुझे कुछ नही सुनायी पड़ रहा है। जी···कुछ नहीं···कोई आवाज नही। अच्छा, अच्छा···जरा जोर से हंसिए, शायद कुछ सुनायी पडे।

(**दोनों हंसते हैं, पर वही निःशब्द।**)

बेयरा : अरे खिलखिला कर हंसिए···अरे ठहाका मार कर हंसिए।

(दोनों हंसते हैं।)

बेयरा : **(परेशान)** नहीं कुछ नहीं, कोई आवाज नहीं···कोई एक शब्द भी नहीं···क्या कहा ?···मैं बहरा हूं, जी नहीं, आप दोनों गूंगे हो गये। आपके मुंह से कोई आवाज ही न निकले तो मैं क्या सुनू।···देखिए न, दायी ओर से आवाज़ आ रही है···मै उसे सुनना भी न चाहूं तो मुझे सुनायी दे रही है। **(कान लगाकर सुनता है)** सज्जन पुरुष ने अभी आपके फ्रेंड से कहा है : किसी एक बड़ी नौकरी के लिए। **(फिर सुनता है)** ओह, वह अपने 'फ्यूचर कैरियर' के बारे मे बात कर रही है। **(कान लगाता है)** उसके साथ 'इंटरप्रेटर' बनकर विदेशयात्रा पर जायेगी।

(दूसरा व्यक्ति लगातार प्रयत्न करता हुआ इस बिंदु पर आकर चीख पड़ता है।)

दूसरा व्यक्ति : नहीं, नहीं, नही !

(पहला व्यक्ति निःशब्द बोल रहा है।)

बेयरा : ओह, अब विश्वास हो गया कि मैं, बहरा नही हूं मुझे भी विश्वास था कि आप लोग गूगे नही हो सकते। **(सहसा कान लगाकर सुनता है)** ओह ! सज्जन पुरुष कहता है कि हमें नित्य अपनी डायरी लिखनी चाहिए···**(फिर सुनता है)** और डायरी वह होनी चाहिए, जिसके हर पृष्ठ पर किसी महापुरुष का धर्म-सदेश छपा हो **(सुनता है)** महापुरुष वही है जो अपने व्यक्तिगत विश्वास के लिए लाखों-करोडो आदमियो की जान की ज़रा भी परवाह नहीं करता। **(सुनता है)** भावना प्रधान व्यक्ति ही महान् होता है !

(पहला व्यक्ति भी हम बिंदु पर बोलने लगता है।)

पहला व्यक्ति : नहीं, नहीं, नही उसे कुछ पता नही। वह सब-कुछ भूल गया है। वह अपनी बेहोशी में सो रहा है। अन्याय, अत्याचार का घड़ा मुंह तक भर गया है। लोग अब बर्दाश्त नहीं करेंगे। हर चीज की हद होती है। अब रात बीतने को है। नया सूरज उगने को है। हमारे बीच में से कोई एक सहसा उठ खड़ा होगा···और···और···और···और···।

बेयरा : और···ओर···और···!

(वही निःशब्द हंसी वह स्वयं हंसने लगता है। उसी तरह निःशब्द वह भी बोलता है। न बोल पाने की असमर्थता पर बेहद दुखी होता है। संकेत से कह रहा है उसकी नौकरी चली जायेगी।)

पहला व्यक्ति : अरे तुझे क्या हो गया ?

दूसरा व्यक्ति : बस, इसे इसी तरह गूगा रहने दो। इससे बात मत करो। अच्छा है तेरी नौकरी छूट जाये···तू उसका आदमी था न ! जा अब उसी के पास ···हम से हाथ मत जोड़···मुझे तुझ में कोई हमदर्दी नहीं !

(पहले व्यक्ति के पैर पर गिरता है।)

पहला व्यक्ति : मुझे भी तुम से कोई हमदर्दी नही (**सहसा रुककर**) शायद हम दोनों में भी कोई हमदर्दी नही है। उन दोनो में भी नहीं···। यह (**बेयरा**) महापुरुष है···इसमे अभी कुछ चमका है। यह अपनी गूंगी वाणी में कुछ कह रहा है···उसने हमारे भीतर से एक-दूसरे के लिए हमदर्दी छीन कर हमें अलग-अलग बाट दिया है।

दूसरा व्यक्ति : (**आवेश में**) यह सारा 'फ्रॉड' है, मै उसे खत्म करके रहूगा।

(बेयरा इस बिंदु पर ठहाका मार कर हंस पड़ता है।)

बेयरा : (**उसी हसी में**) तुम दोनों · (**पहले व्यक्ति से**) तुम्हे कोई महा-पुरुष चाहिए। (**दूसरे व्यक्ति से**) और तुम्हे एक 'गर्ल फ्रेंड' चाहिए···और मुझे वही सज्जन पुरुष···जिंदाबाद ··!

(भीतर भागता है।)

पहला व्यक्ति : जिंदाबाद,···इसके पहले वाला शब्द क्या है ?

(तेजी से दौड़ता है, सोचने लगता है। दूसरा व्यक्ति उसे बड़े गौर से देखता है। तभी बेयरा आता है। उसके हाथ में कुछ सामान है।)

बेयरा : देखिए···सुनिए · सज्जन पुरुष ने आप दोनों के लिए यह उपहार दिया है। आप बड़े है, महान् मे विश्वास करते हैं, इसलिए आपको भेट है यह एक महापुरुष की आत्मकथा। (**पहले व्यक्ति को भेंट करता है**) और आप बड़े उत्साही है। आपके विद्रोह-भाव से सज्जन पुरुष बहुत प्रभावित हुए हैं। (**डिब्बा खोलता है**) आपके लिए उन्होंने यह 'मिनी सूट' भेजा है।

दूसरा व्यक्ति : मिनी सूट, यह क्या बत्तमीजी है।

बेयरा : आप के गर्ल फ्रेंड को सज्जन पुरुष ने मिनी साडी प्रेजेण्ट की है।

दूसरा व्यक्ति : (**व्यक्ति फेंकता है**) ले जाओ उसके सिर पर फेंक दो !

बेयरा : सज्जन पुरुष ने कहा है, यदि आप एक मिनिट में इस सूट को पहन कर तैयार हो आयेंगे तो आप भीतर जा सकते है।

(दूसरा व्यक्ति नफ़रत से उस मिनी सूट को पहनने का प्रयत्न करता है।)

बेयरा : (**पहले व्यक्ति से**) आप इस पुस्तक में वही शब्द ढूंढ़िए। यदि एक मिनिट में ढूढ़ लेंगे तो अंदर जा सकते है।

(वह पढ़न रहा है। वह पुस्तक में कुछ ढूंढ़ रहा है।)

बेयरा : जल्दी कीजिए, वह एक मिनिट खत्म हो जायेगा।

दूसरा व्यक्ति : यह मुझ से नही पढ़ना जाता।

पहला व्यक्ति : इस पुस्तक में मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है।

बेयरा : जल्दी कीजिए···।

दूसरा व्यक्ति : इसका पढ़नना असम्भव है।

पहला व्यक्ति : इसके पृष्ठ कोरे हैं।

बेयरा : जल्दी कीजिए, वह एक मिनिट बीतने जा रहा है।

पहला व्यक्ति : मुझे कुछ नहीं सूझता···मैं क्या पढ़ूं ?

बेयरा : ढूढिए···ढूढ़िए। आप पढ़नने की कोशिश कीजिए।

पहला व्यक्ति : यहां सब-कुछ निजी स्तर पर है—ऊपर-नीचे···नीचे-ऊपर···जो जिसका विरोध करता है, वह वही होना चाहता है।

बेयरा : जल्दी···जल्दी···समय खत्म हो रहा है।

(बेयरा यही बोल रहा है। पहला व्यक्ति अपनी बात, एक बिंदु पर पहुंचा कर तीनों मूर्तिवत् रह जाते है।)

(परदा गिरता है।)

चरित्र

उद्‌घोषक
भीड़ का एक व्यक्ति
शासक
वैज्ञानिक
भीड़
सेना

(घटना-काल : **अनिश्चित भविष्य**)

(किसी विशेष राजाज्ञा के समय होने वाली तुरही, शख और नक्कारे की आवाज़। पृष्ठभूमि में एक व्यक्ति भारी आवाज़ से केवल 'सुनोऽऽ ओ सुनोऽऽ' का अलाप भर रहा है।)

उद्घोषक : ओ इंसानो !
ओ मनुराजा की संतानो
सुनो ओ सुनो !
बोल रहा हूं मैं
भविष्य के एक नगर के चौराहे से
बोल रहा हू !
यह भविष्य के अंधकार मे छिपी
सभ्यता की नगरी है,
इस नगरी की देहरी तक पग धरते-धरते
इतिहासो ने कितनी मंजिल तय कर डाली,
और संस्कृति ने कितनी करवटे बदल लीं।
जिसका नकशा रेगिस्तानों की बालू पर
गरम खून से लिखा गया था;
जिसके शिलान्यास मे कितने
नंगे, भूखे, मुर्दा बच्चे दफ़न हुए थे
तब यह नगरी बस पायी थी।
मैं भविष्य के उसी नगर के चौराहे से
बोल रहा हूं !

(चौराहे पर बहुत-से व्यक्तियों का शोर। भय-त्रस्त स्वर, दबी हुई फुसफुसाहट जो कभी-कभी झल्लाहट का रूप ले लेती है। कभी-कभी कोई चीख पड़ता है; छोटे-छोटे बच्चों का क्रंदन, भिखारियों की आवाजें, गाली-गलौज; जो अंत में उसी फुसफुसाहट में खो जाता है।)

आवाजाही, धक्कामुक्की, चीख़-पुकारें
यह जो सारा शोर आपको सुन पड़ता है,
सच तो यह है नगर-डगर मे, गली-गली मे
बहुत भीड उमड़ी पडती है,
और नगर मे तिल धरने को जगह नहीं है;
शोर बहुत बढ़ता जाता है !
जाने क्यों यह सभी लोग हो रहे इकट्ठे
चौराहे पर;
सभी ओर से उमड़ी आती भीड
हज़ारों बच्चे-बूढ़े, पुरुष-स्त्रियां जल्दी-जल्दी
क़दम बढाते चले आ रहे।
लेकिन ये कुछ अजब लोग हैं,
इनके हाथ-पांव छोटे हैं,
माथा धंसा हुआ अंदर को
पेट बढा है आगे निकला,
मास लोथड़ों जैसी दो गंदी-सी पलकें झूल रही है
इनकी गति में शान नहीं है।
गंदे मेढक से कीचड़ मे
फुदक-फुदककर चलते हैं ये !
दल-के-दल ये चले आ रहे
जैसे घृणित प्लेग के चूहे
चले आ रहे हों गलियो मे

(शीशे के फ़र्श पर सैकड़ों चूहों की पगध्वनियों की आवाज़।)

जाने क्या है आज भीड़ बढ़ती जाती है !
इनकी बातों से कुछ नही समझ मे आता
इनकी बोली बदल गयी है !
कहते है सदियों पहले इन इंसानों ने
काला गाढ़ा खून पिया था
सड़े हुए-मुर्दे खाये थे
तब से इनकी आवाजें ही बदल गयी हैं।

(कुछ घुटते हुए सिसकियों जैसे स्वर में भीड़ की आवाज़। उनींदे स्वर में जैसे मंत्र-मुग्ध शिव कह रहे हों, 'कुछ रहस्यमय कलुष अमंगल होने को है।' लगता है यही वाक्य होंठ-से-होंठ तक ध्वनि-प्रतिध्वनि की तरह वर्तुलाकार लहरों फैलता जाता है।)

फिर भी जो कुछ सुन पड़ता है
उससे ज्ञात हो रहा है यह
आज नगर में कुछ रहस्यमय कलुष
अमंगल होने को है
पिछली रात सितारों से रह-रहकर
कुछ ऐसी आवाज़ें आयी थीं ज्यों
कोई ज़िंदा व्यक्ति
आग की लपटों में भूना जाता हो !
और रात से झोंको मे
कुछ भुने मांस की बदबू-सी है !
सारी रात बितायी लोगों ने
भल-विह्वल, आतंकित मन !
सुबह हुई तो देखा पच्छिम के पहाड़ पर
एक आग का जलता बादल टंगा हुआ है !
झुलस गये है जंगल घाटी
चट्टानें तक चटख़ गयी हैं
जगह-जगह पड़ गयीं सभ्यता में दरार है !
घबराये-से लोग घरों से भाग रहे हैं !
चौराहे पर भीड़ जमा है !
कहते है यह महासृष्टि का अंतिम दिन है
आज आत्महत्या कर लेगी सारी धरती !
लोग बहुत घबराये-से हैं,
भाग रहे हैं।
भीड़ हो रही है अनियंत्रित !

(सहसा भीड़ के स्वर को चीरकर फ़ौजी बेंड बज उठता है और शोर को कुचलता हुआ सैनिक घोड़ों की टापों का स्वर आता है।)

सृष्टि का आख़िरी आदमी

—धर्मवीर भारती

लो आ गयी सुसज्जित सेना
जगह-जगह बंदूक हाथ में लिये सिपाही
खड़े हो गये !
लोग सहमकर शांत हो गये !
लेकिन यह क्या ?
उधर दूर पर वहा मच रही है कुछ गडबड !

(**'चुप रहो', 'बोलने दो उसे', 'हां-हां ! क्या करते हो ?' 'मैं कहूंगा मरते दम तक'** आदि, **आवाजें आती हैं, आपस में गुथ जाती हैं, शोर में तबदील हो जाती हैं।**)

उधर दूर पर वहां मच रही है कुछ गडबड़
कई सिपाही एक व्यक्ति को पकड़ रहे है
वह उनके बंधन में
तडप-तडपकर कुछ कहता है
दो सिपाहियो ने उसकी वाहें पकडी हैं
एक हाथ से बद कर रहा है उसका मुह
लेकिन वह भी बिना कहे चुप नही हो रहा है
वह देखो अब सुन पड़ता है।

इस व्यक्ति का स्वर—सुनो भाइयो !
हम भी चूहे, तुम भी चूहे
और सिपाही भी चूहे हैं !
गो कि हाथ में उनके बंदूकें हैं, लेकिन
ये बंदूको वाले चूहे भी हैं, केवल खेल-खिलौने
रंग-बिरंगी वर्दी वाले
नहीं आग के बादल से ये जीत सकेंगे।

(**सैनिक कवायद की ध्वनि, बिगुल की आवाज, बादल की गरज।**)

मार भले लें हमको, लेकिन
महानाश के तूफ़ानों में
ये भी पीले पत्तो जैसे झर जायेंगे
आज सृष्टि का अतिम दिन है
आज सिमटकर आसमान हम पर टूटेगा

सारी रात सितारों में मरघट सुलगा है
तुम्हें दे रहा हूं चितावनी
मैंने रात चंद्रमा पर देखे हैं लाल ख़ून के धब्बे !
आज चांदनी के संग-संग लोहू बरसेगा
यम के अजगर मुंह फाड़ेंगे, सांसें लेंगे
चूहे हैं ! हम चूहे हैं ! मर जायेंगे !

(भीड़ ग़मगीन स्वर में दोहराती है—"हम चूहे हैं, मर जायेंगे ! हम चूहे हैं, मर जायेंगे !" पहले निराशा, दुख और कसक-भरे स्वर में कुछ लोग गाते हैं, फिर और लोग भी स्वर मिला देते हैं। पहले निराशा, अवसाद और मृत्यु से पराजय के पश्चात्ताप का स्वर, फिर अवसाद दृढ़ता में बदल जाता है जैसे चूहे होना और मरना ही उनका भाग्य और जीवन-दर्शन है। पर फिर भी एक घबराहट स्वर में पछाड़ खा रही है। सहसा भीड़ की आवाज़ को चीरकर उसी व्यक्ति का स्वर आता है। लाचारी और नपुंसक गुस्से का स्वर—"हम चूहे हैं, मर जायेंगे !"

गोलियों की धांय-धांय। उसके बाद ख़ामोशी, मरघट का-सा सन्नाटा।)

उद्घोषक : ख़त्म हो गया !
उसे सैनिकों की गोली ने भून दिया है।
काली-काली सड़क ख़ून से लाल हो गयी
उसकी लाश पड़ी है अब तक !
भीड़ महज़ ख़ामोश खड़ी है,
कई भयातुर बच्चे केवल सिसक रहे हैं।
भीड़ महज़ ख़ामोश खड़ी है !
पच्छिम के पहाड़ पर छाये हुए
आग के जलते बादल में
कुछ काली-काली लहरें दौड़ रही हैं।
दूर घाटियों में
अंधी विषभरी हवाएं
सांय-सांय करती चलती है
भीड़ महज़ खामोश खड़ी है।

(सैनिकों का मार्च, बैंड पर शाही गत बजने लगती है।

(भीड़ फिर गाने लगती —"वह चूहा था, मर गया और हम चूहे है, मर जायेंगे !")

सैनिक बांध रहे हैं पातें
भीड़ रास्ता छोड़ रही है
सुनते हैं अब खुद शासक आने वाला है !

(भीड़ का स्वर तेज हो जाता है। "हम चूहे हैं, मर जायेंगे; हम चूहे हैं, क्यों चूहे हैं, क्यों चूहे हैं ?")

(तुरही और नक्कारे की आवाज।)

लो खुद नगरी का शासक दौड़ा आया है।
चौराहे के बीचों-बीच खड़ा होकर
कुछ बोल रहा है !
सैनिक सगीनों से घेरा डाल रहे हैं।
भीड़ और भी बेकाबू होती जाती है
यह शासक का ऊंचा स्वर है।

शासक : शर्म करो ! शर्म करो !
मेरी नगरी के रहने वालो !
आखिर इतनी घबराहट क्यो ?
महज चूंकि तारो में मरघट जले रात-भर।
या कि पच्छिमी पर्वत पर
यह जलता बादल टंगा हुआ है !
ओ कमबख्तो ! भूल गये तुम,
मैंने अपने राज्य-काल में
सोने से मढ़ दीं दीवारें
धरती पर फौलादी चादर चढ़ी हुई है
नदियों पर भी मीलों लंबे बांध बंधे है
फिर मेरे इस प्रजातंत्र में
बिना वोट के नहीं फूल तक खिलता है जब,
क्या मजाल है
बिना वोट के यहां क़यामत झांक सके तो !
लेकिन फिर भी मैं इस बादल को

गोली की बौछारों से
अभी बुझा देने का हुक्म दे रहा हूं !
सेनापति !···

(भीड़ में शोरगुल। फ़ायरिंग। एक के बाद कई राउंड।)

उद्घोषक : सैनिक आसमान पर गोली चला रहे है
लेकिन महाकाल की प्यासी जीभ सरीखा
बादल धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है।

(बादल की गरज।)

कोई दूर-पहाड़ी पर से धीरे-धीरे उतर रहा है।
लंबी दाढ़ी, ढीला चोगा, तीखी आंखें।
कहते हैं वह वैज्ञानिक है, जादूगर है, युगद्रष्टा है।
उसने सात पीढ़ियां देखी हैं अपनी बूढ़ी आखों से।
भीड़ उसे रास्ता दे रही,
राजा तक उसके आदर में खड़ा हो गया।

(दो सैकड तक ख़ामोशी।)

धीरे-धीरे, बढ़ता-बढ़ता
वह उस शव तक पहुंच गया है
पड़ा हुआ जो बीच सड़क पर।

(दो सैकड तक ख़ामोशी।)

झुका हुआ है वह उस शव पर !

(क्रूर अट्टहास।)

उसे देखकर हंसता है वह।
कैसी है खूंखार हंसी यह !
कैसी है खूंखार हंसी यह !
शासक के चेहरे पर है छा गयी सियाही
घबराकर···लो वह क्या बोला—

शासक : बंद करो यह हंसी
बंद करो यह···
बंद करो···
बंद···

वैज्ञानिक : (हंसते-हंसते) आखिर आज प्रलय का पहला अक्षर
तुमने लिख ही डाला !
मैंने अपनी इन आखों से
सात पीढ़िया बनते और बिगडते देखीं
और सुना था
जिस दिन पच्छिम के पहाड़ पर लपटों का बादल छायेगा,
और सड़क पर एक लाश करवट बदलेगी,
उस दिन इस नगरी का अंतिम क्षण आयेगा।
ओ इस अंतिम क्षण तक जिंदा रहने वालो
आज तुम्हारे साथ खत्म हो जायेगी यह
एक सृष्टि की, एक सभ्यता की गंदी बेशर्म कहानी !
यह सोने के महलों में रहने वाले
चूहो की सस्कृति
आज ध्वस्त होने वाली है।

शासक · बंद करो यह राजद्रोह !

वैज्ञानिक : ···यह द्रोह नही है !
तुमने खुद यह मौत बुला ली है अपने पर
देखो अभी करवटें लेगा यह नंगा लावारिस मुर्दा,
और पहाडों को चूमेगा।
यह बादल, यह नदिया, यह कठोर चट्टानें
इसका शासन मानेंगी
यह मुर्दा
पहला शुभ्र चिह्न है महाप्रलय का !

शासक : सेनापति···

वैज्ञानिक : कहने दो मुझको

शासक : सेनापति ! बंदूकें···

वैज्ञानिक : इन बंदूकों से तुम कब तक
अपनी किस्मत को टालोगे ?
यह बदूकें मैने ही खोजी थी जिनसे
आज स्वयं मेरी आवाज दबाते हो तुम !

शासक : सेनापति !
इस पागल की कुछ दवा चाहिये।

(फ़ायरिंग।)

वैज्ञानिक : आ ऽ ऽ !

(भीड़ का शोरगुल। वैज्ञानिक की घायल कराह। भीड़ का फुसफुसाता हुआ स्वर।)

हम चूहे हैं, मर जायेंगे।
यह जादूगर चूहों का है,
यह राजा भी चूहों का है
यह मुर्दा भी चूहों का है
हम चूहे हैं, मर जायेंगे।

वैज्ञानिक : मेरा गला घोंट दो चाहे,
लेकिन कैसे रोक सकोगे
उस भविष्य के बढ़े कदम को ?
यह बादल तो बरसेगा ही
मुर्दे अपना बदला लेंगे।

(पुन: फ़ायरिंग।)

आधी भीड़ : मुर्दे अपना बदला लेंगे !

आधी भीड़ : हम चूहे हैं, मर जायेंगे !

(धीरे-धीरे दोनों आवाज़ें आपस में गुथने लगती हैं। बादल की गरज-बिजली गिरने की तड़प।)

उद्घोषक : वैज्ञानिक की लाश उठाकर
पागल जनता भाग रही है।
गरज रहा है वह लपटों का खूनी बादल
सचमुच, सचमुच करवट बदल रहा है मुर्दा
यह क्या, वह तो खड़ा हो गया
उसकी पलकें डोल रही हैं,
उसके काले सूखे होंठ हिल रहे हैं कुछ
यह क्या, वह तो बोल रहा है !

मुर्दा : भागो मत ! भागो मत !
तुम कब तक भागोगे ?
तुमने खुद मौत बुलायी है, स्वीकार करो
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसकी नीवों में छोटे-छोटे बच्चों की खोपड़ियां है।
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसमें भूखे गीदड़ नारी की लाशों के संग सोते है।
तुम उस नगरी के वासी हो
जिसमें सपने, हत्या से हथकड़ियों से तोले जाते हैं।
तुम उस नगरी के वासी हो
तुम उस नगरी के
उस नगरी के
उस नगरी के
वासी हो
भागो मत, भागो मत !
तुम कब तक भागोगे ?
यह मौत तुम्हारी इमारतों की
ईंट-ईंट से फूटेगी
यह मौत धरा से उबलेगी
यह मौत गगन से टूटेगी।
यह मौत बुलायी है तुमने
स्वीकार करो।
भागो मत, भागो मत !
तुम कब तक भागोगे ?

शासक : (**भयत्रस्त स्वर में**) सेनापति···

(सेनाओं के एलर्ट होने की आवाज ! फ़ायरिंग।)

मुर्दा : यह बंदूकें, यह सेनाए
कुछ काम नही देगी मुझ पर
मै मृत्युलोक से लौटा हू।
मृत्युंजित हूं।

मेरे माध्यम से कोई और बोलता है
मै धरती की, जनता की
प्रभु की वाणी हूं ।
जिसके सीने पर तुमने युद्ध रचाये थे
ये भवन बसाये थे जिसके कंकालो पर !
अब तक मैं चुप था,
बोल रहे थे तुम
अब मै बोलूगा, मेरी बारी है ।
अब तक तुम आगे बढते थे
मै जजीरों से बधा घसिटता था पीछे,
अब मेरे कदम उठे है
धरती कांपेगी ।
अब मेरी बेला आयी है ।
मैं बदला लूगा
ध्वस्त करूंगा यह नगरी
इसकी गलियों में पिघली हुई
आग की नदिया उबलेंगी ।

(जनता के भागने का स्वर ।)

भागो मत !
कब तक भागोगे ?
धरती के हर टुकड़े के नीचे
कोई लाश इसी मौके के इतजार मे लेटी है ।
वह कदम तुम्हारे जकड़
चूस लेगी तुमको ।
तुम जिनको युग से कुचल-कुचल चलते आये
वे अब धरती को फोड़ सतह पर आयेंगे
यह ज्वालामुखि पहाड
युगो से नफरत सीने में दाबे
ख़ामोश खड़ा है ।
लेकिन अब यह धधकेगा

खूंखार दानवों की लोलुप जिह्वा जैसी
अनगिन लपटें
इस नगरी को खायेंगी।
मुर्दे अपना बदला लेंगे !

आधी भीड़ : मुर्दे अपना बदला लेंगे !

आधी भीड़ : हम चूहे हैं, मर जायेंगे !

(भीड़ के भागने के शोरगुल पर ये दोनों आवाज़ें भूखी चीलों के मानिन्द मंडराती हैं और आपस में गुंथ जाती हैं।)

उद्घोषक : भाग रही है भीड़।
नगर में हाहाकार मच रहा है।
वह मुर्दा स्वयं हाथ से घावों को दाबे
फ़ौलादी छाया-सा
डगमग बढता जाता है पच्छिम को।
वह जिधर-जिधर जाता है भगदड मचती है
सड़कों पर सन्नाटा छाता,
गरज रहा है रह-रहकर लपटों का बादल।
वह धीरे पच्छिम के पर्वत पर चढता जाता है।
लोग अभी तक भाग रहे है।
लेकिन कोई राह नहीं है
गलियों से गलियों मे दौड रहे है जैसे
भूलभुलैयों में पागल कुत्ते भटकें।
वह पहुंच गया है पर्वत के उच्चतम शिखर पर
एक बार आग्नेय दृष्टि से
देख नगर की ओर, देख कह रहा है पर्वत से—

मुर्दा : कितनी सदियों से तुम
नगरी के सिरहाने चुपचाप खड़े हो !
जैसे मरने वाले के सिरहाने यम के मृत्युदूत
अपने मौके की ताक देखते हों गुपचुप।
वह मृत्युपर्व अब आया है।
इंसान गली-कूचों में पागल कुत्तों-जैसा रोता है,

चद्रमा खून के छींटों से मुंह धोता है।
तुम भी अपना बदला ले लो।
अनगिन भट्टियां नरक की कब से धधक रही हैं सीने में
कितना जहरीला धुआ युगों से घुटता है !
बस एक परत पत्थर की उस पर जमा हुई है.
जिससे अब तक महा ध्वस बचता आया है।
आज चूमकर उस पत्थर को गला रहा हू।
धधको, ओ भूखे ज्वालामुखि,
अपनी गहन गुफाओं में बदी
जहरीले अग्निदानवों को कर दो उंमुक्त !
धधकती उल्काओ से
जो धरती का जर्रा-जर्रा झुलसा डालें, पिघला डालें।
चूम रहा हू मैं अपने मुर्दा होंठों से काला पत्थर
धधको, ओ भूखे ज्वालामुखि !
ओ भूखे ज्वालामुखि !
धधको, धधको, धधको, धधको !

(हजारों कंठों का 'धधको-धधको' का शबरमंत्र की भांति पाठ। दो क्षण बिलकुल खामोशी।

सहसा गड़गड़ाहट और भयानक विस्फोट। धरती के चटखने, तूफ़ानों के पागल घोड़ों जैसे दौड़ने, इमारतों के ढहने का भयानक शोर। उसी में भागदौड़, चीख़-पुकार, मार्मिक करुण रोदन। लगता है जैसे नरक के निम्नतम कुंड में से यह शोर उबल पड़ता है। धीरे-धीरे हजारों बिल्लियों की रोने की आवाज। फिर शोर दूर चला जाता है और अंत में एक अव्यक्त सिसकी मात्र।)

उद्घोषक : नष्ट हो गया।
सब-कुछ आख़िर नष्ट हो गया।
लाखों बरसों से,
कण-कण तृण-तृण पर जो निर्माण हुआ था
नष्ट हो गया !
गरज-गरजकर बरस रहा है
महानाश का जलता बादल !

पिघली हुई आग की नदियां
नगर-डगर को निगल रही हैं।
छोटे-छोटे बच्चे-बूढ़े,
तरुण औरतें, झुलस रही हैं
भुने मांस की तीखी-कड़वी बदबू से सर घूम रहा है।
ककुआ काला धुआं
झुलसते हुए नगर की
अंतिम चीख-पुकारों का दम घोंट रहा है।
लाशें सड़े हुए कीचड़ में तैर रही हैं।
पिघले सीने की कीचड़ !
हंसता है वह
पर्वत की चोटी पर खड़ा हुआ हंसता है।
दोनों हाथों से नगरी पर
यह पिघली आग उलीच रहा है।
महानाश के वज्रों को वह
उठ-उठाकर फेंक रहा है
आग उसे न जला पाती है,
हवा उसे न डिगा पाती है,
चट्टानें उससे टकराकर टूट रही हैं।
वह ज़िंदा विद्रोह
तरल नफ़रत से पागल
मृत्युंजित वह
आत्म-तुष्टि से वह हंसता है।
उसकी पलकों पर परतें जम गयी राख की।
पिघली हुई आग की कीचड़ में घुटनों तक
धसा हुआ है।
लेकिन उसके माथे पर उल्लास फूल-सा खिला हुआ है।
इस घाटी से उस घाटी पर
राजमहल से चौराहे तक
गलियों से गलियों में

डगमग घूम रहा है
सड़ी-घिनौनी लाशों पर
चलता-फिरता वह घूम रहा है।

(धीरे-धीरे शोरगुल, क्रंदन समाप्त। क्षण-भर सन्नाटा। केवल उसके भारी पांवों की धमक।)

अब कोई जिंदा नही बचा
सारी नगरी लाक्षागृह जैसी पिघल गयी।
अब फैली-फैली धरती पर
कोई भी ज़िंदा हस्ती सांस न लेती है।
इस मुर्दे ने संपूर्ण सभ्यता को चुटकी में मसल दिया।
बस एक हवा का पागल झोंका
भटक रहा है गलियों में
संस्कृति की उखड़ी सांसों-सा।
एक आग की और खून की महानदी
सिर धुनती, लाशों को झुलसाती
आगे बढ़ती जाती है।

(नदी का भयानक घर्र-घर्र और उसमें घुली-मिली सियारों के रोने की आवाज़।)

अब धरती पर इसान नहीं पैदा होगा।
वह शर्मनाक इतिहास न अब दोहरायेगा।
इस धरती की गोद सदा के लिए
आग से झुलस गयी
यह बांझ धरा
कुछ दिन में अब
मुर्दा ग्रह-सी, बिलकुल ठंडी पड़ जायेगी।

(सियारों का रोदन एकाएक थम जाता है।)

लेकिन यह क्या ?
यहां खेत की पगडंडी के पास रुक गया वह,
कुछ झुककर देख रहा है,
अभी आग की नदी यहा न पहुंच पायी है !

देख रहा है क्या वह ?
एक बाल गेहूं की लंबी, दुबली, पतली
मृदुल धूप की चुनरी ओढ़े झूम रही है।
और पास मे एक जंगली फूल खिला है।
मुर्दे की वह
राख सनी भूरी-सी पलकें आर्द्र हो गयीं
उस गेहूं की तरुण बाल को
आशीर्वादों की निगाह से देख रहा है।
लो, उसने तो बदल दिया रुख
हाथ उठाकर
पिघली हुई आग की जलती महानदी से
कहता है कुछ

मुर्दा : ठहरो !
ओ ज्वालामुखि, अपना बंद करो मुख !
धरती के सीने में जहां छिपी थी नफ़रत,
वहीं सृजन का एक बीज यह छिपा हुआ था।
जो प्रलयंकर तूफानों से नहीं डरा
जो चट्टानों की परत तोड़कर उठ आया है।
यह भविष्य की नयी सृष्टि का प्रथम चिह्न है,
इसे प्रणाम करो, ओ आग उगलते सूरज !
रक्त-स्नात ओ चांद !
आग की महानदी ओ ! इसे प्रणाम करो !
इस गेहूं के लघु दाने में
एक नयी सभ्यता छिपी है शरमाई-सी !
इसमें बसी हुई है नव गंधर्व-नगरियां,
इसमें एक नया दर्शन सांसें लेता है।
नयी कल्पना, गीत नया, इंसान नया
इस गेहूं की हरी बाल की
शीतल छाया में पनपेगा।
एक सभ्यता मिटा चुका मैं,

इस गेहूं की और फूल की तरल छांव में
एक नयी संस्कृति का अब निर्माण करूंगा।

(नदी की घर्र-घर्र दुगुनी हो जाती है। सियार फिर रोने लगते हैं।)

उद्घोषक : लेकिन यह क्या ?
पिघली हुई नदी आगे बढ़ती जाती है
भूखे सांपों जैसी लाखों जीभ पसारे
पिघली हुई आग आगे बढ़ती जाती है।
तनकर खड़ा हो गया वह
ललकार रहा है।

मुर्दा : नहीं सुनोगे ?
मैं कहता हूं, ठहरो ओ बहरे ज्वालामुखि !
ओ अंधे तूफान आग के !
अपने कदम न आगे धरना !
खत्म हुआ अब नाश, नया निर्माण हो रहा।
नहीं रुकोगे ?
मैं मृत्युंजित हूं,
तुम मुझे न खा पाओगे
ओ नफ़रत के काले दानव !
तुमसे भी मैं हाथ आज़मा लूंगा हंसकर।
ठहरो, ठहरो, ओ नफरत की पिघली ताकत !
ओ लपटों की सूनी आंधी !
यह गेहूं की बाल
जंगली फूल
नयी दुनिया के पहले चिह्न अनोखे
इन पर अगर आंच आयी तो
चांद-सितारों को धरती पर बिखरा दूंगा।

(नदी की घरघराहट और समीप आती है।)

उद्घोषक : लेकिन आग नहीं रुकती है।
महानदी, भूखी दानवी सरीखी
अपने केश बिखेरे

सौ-सौ तूफ़ानों के बल से बढ़ती जाती
पहुंच गयी लो उसी जगह तक।
उसने गेहूं की बाली को
बांहें फैला घेर लिया है।
वह सीने पर उन लहरों को झेल रहा है
खड़ा गले तक दफ़न आग में, तरल आग में
क़दम उखड़ते हैं पर
तनी हुई लोहे-सी देह
और माथे पर नयी सृष्टि का सपना।

(धीरे-धीरे नदी का शोर घटता है। एक बहुत सुकुमार संगीत गूंजने लगता है और दूर कहीं पर पूजा-वेला की घंटियां बजने लगती हैं।)

पिगली हुई आग की बाढ़
घट रही है अब,
इंद्रधनुष दो-चार उतर आये हैं
उन पर, ज्योतिवृत्त से।
पिघली हुई आग की बाढ़ घट रही है अब।
निर्निमेष पलकों से जाने
किस भविष्य की
नयी सृष्टि को देख रहा है।
किसी नये मानव का सपना
जो इस गेहूं की शीतल छाया में
फूलों-सा पनपेगा।

(नदी का शोर क़तई बंद। घुंघरू की आवाज़ और फिर बिलकुल नीरवता।)

बाढ़ ख़त्म।
धरती फिर ऊपर उभर रही है
एक स्वर्ग-सगीत
घाटियों में घुंघरू-सा नाच रहा है।
जिसकी लय पर एक नया इंसान ढलेगा।
जिसकी लय पर ही,
जीवन के सभी मूल्य फिर से बदलेंगे

जिसकी लय पर
होंठों पर चुंबन आयेंगे
पलकों में आंसू छायेंगे
जिसकी लय पर एक नयी सभ्यता अवतरित होगी फिर से।
जिसकी लय पर,
अब प्रशांत ज्वालामुखि के पीछे से
झांक रहा है
नयी सृष्टि का पहला सूरज,
खिले गुलाबों-सी जिसकी रतनारी आभा
ध्वस्त सृष्टि को फिर से आलोकित करती है।
टूटे-फूटे खंडहर खिले गुलाब सरीखे सुंदर लगते
यह आख़िरी मनुष्य सृष्टि का,
नयी सृष्टि का मनु बनकर आगे बढ़ता है।
यह धरती की नयी परत है
मैं भविष्य के और बाद आनेवाले
        भविष्य के क्षण में,
        बोल रहा हूं।
ओ मनु राजा की संतानो !
सुनो ! ओ सुनो !
बोल रहा हूं
नयी सृष्टि का
उद्घोषक मैं !

(तूर्य-नाद, शंख-ध्वनि, मंगलवादन और किसी नवजात शिशु की प्रथम मुस्कान का सहज, सुंदर, सरल संगीत !)

(परदा गिरता है।)

चरित्र

वृद्ध : पाकिस्तान बन जाने के कारण पश्चिम पंजाब से भारत आने के लिये रवाना हुए एक वयोवृद्ध संभ्रांत सज्जन।
निर्मला . वृद्ध की युवती पुत्री।
मुकंदी : वृद्ध का युवक पुत्र।
ड्राइवर : हवलदार आदि।

[2]

सिकंदर : यूनानी विजेता।
ऐंड्रीओकस : सिकंदर के सहकारी यूनानी सैनिक।

[3]

स्कंदगुप्त : गुप्त साम्राज्य के यशस्वी हूण विजेता।
गुप्त साम्राज्य के नागरिक आदि।

[4]

रणजीतसिंह : पंजाब केसरी और वीर विजेता।
सरदारसिंह : रणजीतसिंह के सहकारी।
चिरागअली : हबीबुल्ला आदि।

[1]

(मोटर-लारियों का एक बड़ा काफ़िला चला आ रहा है। नये और पुराने मोटर-इजिनों की ऊंची-नीची आवाजे लगातार सुनायी दे रही है। बीच-बीच में किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज किसी हल्की पुष्ट भूमि के समान, सुनायी दे जाती है।

लगभग आधे मिनट के बाद एक लारी का ड्राइवर ऊची आवाज़ में पुकार उठता है—"प्यारेंसिघा ! ओ प्यारेंसिघा !"[1]

क्षण-भर को जवाब नहीं आता। इससे पुकार पुन. सुनायी देती है—"प्यारें-सिघा ! ओ प्यारेंसिघा ! निंदर, ते नई आ गयी ?"[2]

"नई यार, ऐत्थे किसी नूं निंदर आ सगदी ए ?"[3]

"अजदी रात किन्नी मनहूस जापदी ए प्यारेंसिघा !"[4]

इसी वक्त चलती लारी में से तीसरी आवाज सुनायी देती है—"हिंदोस्तान अब कितनी दूर है, हवलदार साहब ?")

हवलदार : रावी के उस पार हिंदुस्तान है और रावी तक पहुंचने में अभी एक घंटे का सफ़र बाकी है।

एक बूढ़ी आवाज : अभी घंटा-भर बाकी है रावी तक पहुंचने में ! रावी के उस पार हमारा हिंदोस्तान है ! हमारा प्यारा हिंदोस्तान !

हवलदार : हां, बाबा; अगर परमात्मा ने चाहा, तो घंटा-भर बाद, हम लोग वहां पहुंच जायेंगे।

बूढ़ी आवाज : अगर परमात्मा ने चाहा ? ठीक है भाई, अगर परमात्मा ने चाहा, तो आज रात के इस सन्नाटे में, अबसे सिर्फ़ घंटा भर बाद, हम लोग अपनी थकी-मांदी आवाज़ में मुक्त कंठ से पुकार सकेंगे—'जयहिंद !'

---

1 प्यारेसिंह ! ओ प्यारेसिंह !

2 प्यारेसिंह ! ओ प्यारेसिंह ! नीद तो नहीं आ गयी ?

3 नही यार, यहां किसी को नीद आ सकती है ?

4 आज की रात कितनी मनहूस प्रतीत हो रही है, प्यारेसिंह !

लारी में बैठे स्त्री, बच्चों और पुरुषों की हल्की-सी आवाज़ 'जयहिंद !'

लारी ड्राइवर : ओ प्यारेसिंघा ! हुण कोई खतरे दी थां ते बाकी नई ?[1]

प्यारेसिंह : जब तक अपने नहीं पहुंच जाते, खतरा किस जगह नहीं ? खास तौर से रावी से सिर्फ तीन मील इस तरफ का वह गांव !

एक आवाज : वक्त काटे नही कटता ! खतरे के 55 मिनट 55 बरसों के समान प्रतीत होते है।

हवलदार : वक्त काटे नहीं कटता, तो कोई गाना गाओ। मैं देखूंगा कि कौन तुम्हें गाना गाने से रोकता है ?

प्यारेसिंह : शाबाश हवलदार साहब ! तो फिर दोस्तो, है कोई आपमे से गाने वाला ?

एक आवाज : क्यों न सब मिलकर एक गाना गायें ! हरे भरे पंजाब की याद में पश्चिमी-पजाब के सीमांत पर शायद यह हमारा आख़िरी गाना हो !

ठीक है ! ठीक है !

(सम्मिलित गान (कोरस)। स्त्री और पुरुष एक साथ गा रहे हैं, जिसका भाव है—चांद और सूरज जिस भूमि-भाग के ऊपर आकर बरबस अपनी चाल धीमी कर देते हैं; वह भूमि-भाग हमारा प्यारा पंजाब ही है सुनहले खेत, समतल मैदान हरे-भरे और ऊंचे शीशम और आम्र-कुंज, पांच बड़ी-बड़ी नदियां दिन और रात हमारी इसी मातृभूमि के पवित्र चरणों का प्रक्षालन करती रहती हैं।)

गानं समाप्त होते-न-होते गोलियां चलने की ऊची आवाज सुनायी देने लगती है और गीत की लय अचानक इस तरह टूट जाती है जिस तरह बजते-बजते सितारे का तार अचानक टूट जाये !

"अल्ला हो अकबर !" और "या अली !" के नारों के साथ बहुत निकट से गोलियां चलने की आवाज आ रही है। लारियो के चलने की आवाज़ बद हो जाती है और मुकाबले के नारे सुनायी देते है—"हर हर महादेव !" तथा सतश्री अकाल !"

नारो की आवाजें, बंदूकों की गरज और स्त्री तथा बच्चों की करुणा चिल्लाहटें—एक साथ सुनायी दे रही हैं।

(व्यवच्छेदक—विभेदक संगीत।)

---

1 प्यारेसिंह, अब कोई खतरे का स्थान तो बाकी नही है न ?

एक बहुत घबरायी हुई आवाज : पिताजी ! पिताजी।

क्षण-भर बाद पुन. : पिताजी ! पिताजी !

एक बहुत कमजोर और बूढ़ी आवाज : हूं !

एक लड़की : भैया, पिताजी होश में आये ! पिताजी ! पिताजी !

वृद्ध : बेटी निर्मल ! बेटी मुकंदी !

निर्मला : हां पिताजी, हम लोग आपके पास ही है।

हम लोग कहा है बेटा ?

मुकंदी : हम लोग सड़क से दूर, एक खेत मे छिपकर पड़े हुए हैं पिताजी !

वृद्ध . तुम्हारा भाई देशराज कहां है, बेटा ?

मुकंदी : आपकी रक्षा करते हुए भैया ने अपना जीवन दे दिया, पिताजी !

वृद्ध : ओह, यहां तक ! हे प्रभो, इस बुढापे में तूने मेरे किस अपराध का ंड मुझे दिया है ?

मुकदी : आप हिम्मत से काम लीजिए, पिताजी !

वृद्ध : तुम्हारी मां पुण्यशीला थी, जो यह दिन देखने के लिए जिंदा नही रही।

मुकदी : आपकी तबीयत अब कैसी है, पिताजी !

वृद्ध : हिंदोस्तान अब कितनी दूर है बेटा ?

मुकंदी : हिंदोस्तान की सीमा से हम लोग अब अधिक दूर नहीं है, पिताजी !

वृद्ध : **(बेहोश होती हुई आवाज में)** हिंदोस्तान ! प्यारा हिंदोस्तान ! आजाद हिंदोस्तान !

निर्मला : पिताजी, पिताजी !

वृद्ध : बेटी निर्मल ! बेटा मुकंदी !

निर्मला : क्या है, पिताजी !

वृद्ध : बेटा तुम लोग इसी समय रात के इस सन्नाटे में हिंदोस्तान चले जाओ।

मुकंदी : यह असंभव है, पिताजी ! पूज्य भाई का दाह-कर्म किये बिना और आपको साथ ले जाने का प्रबंध किये बिना हम लोग यहां से जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते, पिताजी !

वृद्ध : मैं अब होश मे हूं बेटा ! अपने बड़े पुत्र का दाहकर्म मै यहां अपने हाथ से करूगा। तुम अपनी बहन को लेकर इसी समय हिंदोस्तान के लिए रवाना हो जाओ, बेटा मुकदी !

मुकंदी : यह कभी नही होगा, पिताजी ! मुझे मालूम है, आपको भारी चोट आयी है। (**भारी आवाज में**) ओह, मुझे आप इतना अधम और कृतघ्न समझते है, पिताजी ?

वृद्ध : अभी-अभी तुमने मुझे हिम्मत से काम लेने को कहा था, बेटा ! सच तो यह है कि हिम्मत से काम लेने के सिवा हमारे पास कोई चारा भी तो नही है। (**जैसे अपने ही से कह रहे हों**) हमारा घर-बार सब लुट गया है। अपनी प्यारी मातृभूमि से, जहां हमने जन्म लिया, जहां हम खेले-कूदे और जिस भूमि के एक-एक कण से जन्म भर हमारा आत्मीयता का संबंध रहा, हम लोग सदा के लिए खदेड़ दिये गये है, और आज प्यारी मातृभूमि के द्वार पर इस घनी अंधेरी रात मे मेरा प्यारा बेटा आततायियो के हाथों मारा गया; तुम्हारा जीवन खतरे में है, मेरी इकलौती बेटी की इज्जत खतरे मे है और 70 वर्ष की आयु मे मैंने अपनी छाती पर छुरे का वार सहा है। हे मेरे प्रभो !…ओह, हम लोग अगर हिम्मत से काम नहीं लेंगे, तो हिम्मत शब्द का गौरव ही नष्ट हो जायेगा !

मुकंदी : ठीक है, पिताजी ! हम लोग अवश्य हिम्मत से काम लेंगे।

वृद्ध : तभी तो बेटा मुकंदी, बेटी निर्मल, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम इसी समय रात के सन्नाटे में मुझे और देशराज की निर्जीव देह को इसी जगह छोड़कर चुपचाप हिंदोस्तान चले जाओ !

निर्मला : यह तो हिम्मत नहीं है, पिताजी ! यह तो हमारी कायरता होगी; एक कृतघ्न कायरता !

वृद्ध : नहीं बेटी ! तुम इसी जगह गलती करती हो। जिंदगी की ऐसी असह्य चोट कितने लोग सहन कर पाते हैं ? मैं सच्चे दिल से प्रार्थना करता हू कि परमात्मा दुश्मन को भी ऐसा दिन न दिखाये, जब कि उसे अपने भाई की लाश और पिता की जीवित देह को इस तरह जंगल में छोड़कर चले जाना पड़े। परतु

हिंदोस्तान जाकर कहना !

—चंद्रगुप्त विद्यालंकार

जब हम पर यह मुसीबत आ ही पड़ी है, तो हमें धैर्य के साथ उसका सामना करना होगा। यह सब देख-सुनकर तुम जीवित रहोगे, तो तुम्हारा जीवन स्वयं अपने में साहस का सबसे बड़ा पैमाना बन जायेगा।

निर्मला : जीवन से इतना मोह किस लिए पिताजी ! हम लोग भी अपने भाई के साथ अपना जीवन दे सकते है।

वृद्ध : यह मुझे मालूम है, बेटी। आखिर देशराज भी तो तुम्हारा ही अंश था।

निर्मला : तो फिर जीवन से इतना मोह किस लिए ?

वृद्ध : (**जरा मुस्कुराकर**) यह जीवन तुम्हारा नही है, निर्मल ! यह तुम्हारे देश का जीवन है। तुम्हे जीवित रहना है बेटा, इसलिए कि तुम्हारे देश को तुम्हारी आवश्यकता है।

मुकंदी : हमारा देश ? पिताजी ! अपने देश से तो हम लोग सदा के लिए खदेड दिये गये है। अभी आपने ही तो कहा था कि अपनी मातृभूमि से हम सदा के बहिष्कृत कर दिये गये है !

वृद्ध : तुम्हारी यह व्यथा मैं ठीक-ठीक समझता हूं, बेटा मुकंदी ! जीवन के 71 वर्ष मैंने मा की गोद के जिस भाग में काटे हैं, जीवन के संध्या-काल मे मुझे बलात् उस भाग से धकेल दिया गया है। लगातार 71 वर्षों तक जिस भूमि को मैंने चांदनी में, दोपहरी में, प्रभात में और साध्य-वेला के नाना रूपों में देखा है, वह सब अब मै और नही देख पाऊंगा (**वृद्ध का गला-भर आता है परंतु यत्न के साथ अपनी आवाज संयत कर वह कहना जारी रखते है**) मगर बेटा मुकंदी, हमारा यह देश उस भूमि तक ही सीमित नहीं है, जहां हम लोगों ने, हमारे पुरखाओं ने जन्म लिया था। हमारा देश बहुत विशाल है ! और फिर देश की विशालता से भी बढ़कर एक और चीज है, बेटा !

निर्मला : वह क्या, पिताजी !

वृद्ध : हमारे पास एक बहुत बडी धरोहर है, जो हमे अपने वंशजों को दी जानी है। इसी धरोहर की खातिर तुम्हें जीवित रहना होगा, बेटा !

मुकंदी : वह धरोहर क्या है, पिताजी !

वृद्ध : हम लोगों की वह धरोहर एक वंश-परंपरागत जिम्मेदारी के रूप में है। हम हिंदोस्तान के सीमाप्रांत के पहरेदार है; हमारे पूर्वज हिंदोस्तान के

सीमाप्रांत की रक्षा करते रहे हैं। आज हमें सीमाप्रांत पर हिंदोस्तान की रक्षा करनी है, हमारे बाद हमारे वंशजों को हिंदोस्तान की रक्षा करनी है और उसके बाद हमारे वंशजों को भी यही पुण्य कार्य करना है और इसी पुण्यकार्य के लिए जीवित रहना है।

निर्मला : परतु देश का वह सीमाप्रांत तो आज हमसे बलात् छीन लिया गया है, पिताजी ! उसकी रक्षा अब हम कैसे कर सकेंगे ?

वृद्ध : (**जरा जोश के साथ**) तुमने मेरे जी का घाव छू दिया है, बेटी ! अपने देश का सीमाप्रात हम लोगों ने इस तरह चुपचाप छोड़ दिया है, यह सच है। मगर यह कुरबानी भी देश की ही खातिर की गयी है। देश के अंग-भग के साथ हमारा घर-बार जरूर चला गया, परंतु हमारा देश तो आज भी जीवित है, और उसी देश का एक अग वलिदान देना पड़ा है।

मुकंदी : (**स्वगत**) देश, मातृभूमि, हिंदोस्तान ! कब से देश की आज़ादी के सपने लेता आ रहा हूं। और आज जब देश आज़ाद हुआ है, हमारा सब कुछ छिन गया है—घर-बार, भाई-बधु सभी कुछ।

वृद्ध : (**और भी उत्साह के साथ**) हा बेटा, सदा की तरह आज भी देश की रक्षा के लिए, मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए, हमीं ने सबसे बड़ी कुरबानी की है। सदा की तरह आज भी हमी ने अपना सभी कुछ देश के निमित्त अर्पण कर दिया है और जो-कुछ बाकी है, वह भी अवसर आने पर मातृभूमि के न्यौछावर कर देना है सदा की तरह, अपने बहादुर पूर्व पुरुषों की तरह।

निर्मला : सदा की तरह कैसे, पिताजी ? ऐसी मुसीबत तो आज तक कभी नहीं आयी थी।

वृद्ध : मैं मानता हूं कि जघन्यता की दृष्टि से जो-कुछ आज हो रहा है वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। फिर भी हमारे पूर्व-पुरुषों पर, जो देश के इस सीमाप्रात पर पहरेदारी का काम करते थे, देश की रक्षा के लिए कम मुसीबतें नही आयी थीं। आज इस ऐतिहासिक अंधेरी रात में, अपने पूर्वपुरुषों की वह यशोगाथा तुम्हें सुनाकर मै अमर हो जाऊंगा, बेटी। (**स्वर कांपने लगता है**) अभी काफी रात बाकी है। मेरी आज्ञा है कि तुम लोग मुझे यही छोडकर भारतवर्ष के लिए रवाना हो जाओ। परंतु जाने से पहले अंतिम बार मेरे मुंह से अपने पूर्वपुरुषों की अमर यशोगाथा सुनते जाओ। उसके बाद हिंदोस्तान चले जाना

और हिंदोस्तान के लोगों से जाकर कहना कि हमारे बूढ़े बाप ने 71 वर्ष की उम्र मे अपनी सबसे बड़ी कुर्बानी अपने प्यारे हिंदोस्तान के लिए ही दी थी ! तो सुनो—

(विभेदक संगीत।)

वृद्ध : (उत्साह के साथ) भारतीय संस्कृति के उत्तर-पश्चिमी विशाल केंद्र—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा; गंधार और कपिशा; पुरुषपुर और तक्षशिला !

(उपनिषद्-काल के ऋषियों का मंत्र-गान—)

असतो मा सद्गमय,
तमसोर्मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतंगमय !

शांति और उन्नति का एक लंबा युग बीत गया। क्रमश: तक्षशिला में बौद्ध धर्म और संस्कृति का निर्माण होने लगा। तक्षशिला की छोटी-छोटी पहाड़ियां गूंज उठीं—

बुद्धं शरणं गच्छामि !
धर्मं शरणं गच्छामि !
ओं मणिपद्मे हुंम् !

वृद्ध : 2273 वर्ष हुए, भारतवर्ष के इसी सीमाप्रांत पर सिकंदर ने आक्रमण कर दिया। तक्षशिला और पौरस राजा को जीतकर वह बितस्ता तक जा तो पहुंचा, परंतु वहां पहुंचकर उसे मालूम हुआ कि भारतवर्ष के सीमाप्रांत की यह विजय उसे किसी भारी पराजय से भी अधिक मंहगी पड़ी है।

(कुछ क्षणों का विभेदक संगीत।)

आज से 2272 वर्ष पहले, बितस्ता नदी के तट पर का एक प्रभात। चारों ओर कोलाहल मचा हुआ है। सिकदर के हजारों विद्रोही सिपाही जमा हैं और वे चिल्ला रहे हैं—"सिकंदर मुर्दाबाद !" "हमे घर वापस जाना है। लौट चलो, लौट चलो !"

इसी समय एक विद्रोही नेता ऊंची आवाज़ में कहने लगता है—"वीरो, शांत होकर मेरी बात सुनो। मै तुम्हारा नेता एंड्रिओकस बोल रहा हूं।"

(सन्नाटा छा जाता है।)

एंड्रिओकस : वीरो ! मित्रो ! मेरी बात ध्यान से सुनो। (**'एंड्रिओकस अमर हो !' 'सिकंदर का नाश हो !' के नारे।**)

एंड्रिओकस : मैं तुमसे अनुरोध करता हूं कि तुम लोग सिकंदर का नाश हो के नारे मत लगाओ। आखिर कुछ भी क्यो न हो, वह हमारे यूनान का गौरव है।

एक सैनिक : सिकंदर स्वार्थी है !

दूसरा सैनिक : सिकंदर पशु के समान स्वार्थी है।

तीसरा सैनिक : वह अपनी महत्वाकांक्षा पर हम सबकी बलि चढ़ाना चाहता है।

पहला सैनिक : सिकंदर ने धमकी दी है कि वह विद्रोहियों को भालों की नोकों से उड़ा देगा।"

एंड्रिओकस : भाइयो, मेरी बात ध्यान से सुनो। इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है कि सिकंदर तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा। मैंने सिकंदर से इस बात का वचन ले लिया है कि वह न सिर्फ तुम्हारी बात ध्यान से सुने, अपितु तुम्हारी इच्छा का पूर्ण रूप से पालन भी करे।

भाइयो, मुझे आपसे भी एक वचन लेना है। मेरे कहने पर, मेरे निमंत्रण पर, वह इसी समय हमारी इस सभा में आ रहा है। मेरा तुमसे अनुरोध है कि जब वह यहा आयेगा तो तुम अपने अतिथि की, यूनान के वीर सेनापति सिकंदर के गौरव की रक्षा करना। इसी में यूनान का गौरव है। हम यूनान के वीर सैनिक

हैं और सिकंदर अभी तक हम सबका वीर नेता रहा है। भविष्य में उसे अपना नेता रखना या न रखना आपके हाथ है, परंतु इस समय हमें उससे वही व्यवहार करना चाहिए, जो एक वीर दूसरे वीर से करता है।

एक सैनिक : सेनापति सिकंदर को हमारी बात माननी होगी।

एंड्रिओकस : मैंने आपसे अभी-अभी कहा है कि इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है। वह देखो, सेनापति सिकंदर आ रहे है। आप शांत भाव से खडे होकर उनका स्वागत करें। (**क्षण-भर के लिए सन्नाटा छा जाता है।**)

सिकंदर : हम देखते हैं कि हमारे सैनिक हमसे अप्रसन्न है। हम इसका कारण जानना चाहते हैं।

(**क्षण-भर चुप्पी रहती है।**)

सिकंदर : अभी-अभी हमने 'सिकंदर का नाश हो' का नारा सुना था। एंड्रिओकस, तुम अब चुप क्यों हो? तुम्हीं बताओ, इसका कारण क्या है?

एंड्रिओकस : महाराज, इसका कारण सुनकर आप प्रसन्न नही होंगे। यदि मैंने इन लोगों से चुप रहने को न कहा होता, तो—

सिकंदर : (**बीच में ही रोककर**) हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, एंड्रिओकस! हमें बताओ कि हमारे वीर सैनिक हमसे क्या चाहते हैं?

एंड्रिओकस : हम लोग अब अपने घरों को वापस जाना चाहते हैं।

सिकंदर : मेरे वीर सैनिकों, तुम्हें आज से छह वर्ष पहले का वह दिन याद है, जब तुमने यूनान की पवित्र भूमि में अपना मस्तक ऊंचा कर यह प्रतिज्ञा की थी कि सिकंदर के अनुशासन में तुम संपूर्ण पृथ्वी पर यूनान का साम्राज्य कायम कर दोगे।

एंड्रिओकस : खूब अच्छी तरह याद है, महाराज!

सिकंदर : इस गरिमाशाली देश को देखते हो, मेरे वीर सैनिको! संसार के इस सबसे अधिक गौरवशाली देश भारतवर्ष पर मैं यूनान का राज्य स्थापित करना चाहता हूं। इसके अनंत विस्तार वाले उपजाऊ मैदानों पर, इस देश की इठलाती नदियों पर, इस महान भारत के बर्फ़ के चमकीले आवरण से ढंके ऊंचे पहाड़ों पर मैं यूनान का झंडा फहराना चाहता हूं। बोलो, इस काम में तुम मेरा साथ दोगे?

एंड्रिओकस : कदापि नहीं, महाराज!

सिकंदर : तुम्हारे मुंह से यह कायर वाणी शोभा नहीं देती, वीर एंड्रिओकस!

एंड्रिओकस : आप आकाश-पुष्प का स्वप्न देख रहे हैं, महाराज !

सिकंदर : मैं तुम्हारा अभिप्राय नहीं समझा।

एंड्रिओकस : मेरा अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट है। आप इस देश को कभी विजय नही कर सकते, महाराज ! इस देश के अनंत विस्तार वाले उपजाऊ मैदानो, इठलाती नदियो और आसमान से ऊंचे पहाड़ों का वर्णन तो आपने किया, महाराज, परतु इस शानदार देश में रहने वाली आर्य-जाति का वर्णन करना आप भूल गये। पिछले 18 महीनों मे हम लोग इस जाति को अच्छी तरह पहचान गये है। अकेला यूनान तो क्या, सारा संसार मिलकर भी भारतवर्ष को विजय नही कर सकता, सेनापति !

सिकंदर : दुनिया जो नही कर सकती, वह यूनान कर सकता है, वह सिकदर कर सकता है ! हम लोग अब तक कम-से-कम दो बडे भारतीय राजाओ को सीधे युद्ध मे हरा चुके है।

एंड्रीओकस : राजा पुरु की हार को आप अपनी जीत मानते है, महाराज ! उस छोटे-से राजा ने भी इतने दिनो तक संपूर्ण यूनानी सेना का प्रवेश बड़ी सफलता से रोके रखा ना, महाराज, हम लोग इस देश के निवासियों को पंचनद के इन वीरों को खूब अच्छी तरह पहचाने गये हैं। जिस देश के सीमाप्रांत के छोटे-छोटे राजाओ मे भी इतनी शक्ति है—

सिकंदर : (**बीच ही में रोककर**) तुम कायर हो, एड्रिओकस !

एंड्रिओकस : ज़बान सभालकर बात करो, सिकदर !

(**एकाएक बहुत अधिक शोर होता है।**)

वृद्ध : और उसके बाद सचमुच ही सिकदर की सेनाएं अपने सिर पर पैर रखकर भाग खड़ी हुई ! यहां तक कि पराजय के इस धक्के को वीर सिकंदर सहन नही कर सका। शीघ्र ही उस वीर का देहात हो गया।

(**विभेदक संगीत।**)

वृद्ध : संवत 507 मे एशिया और यूरोप के दोनो महाद्वीप टिड्डीदल के समान लाखों-करोड़ों हूणों के आक्रमण से भयभीत हो उठे। वोल्गा से लेकर काबुल तक ये हूण सभी जगह छा गये और गांधार के कुशान राजा को मारकर हजारो-लाखों हूणों ने नदी की बाढ के समान भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया। वाल्हीक से शतद्रु तक इन हूणों का अधिकार हो गया और तब सवत 512 में मद्र और पचनद के सैनिको की सहायता से सम्राट् स्कदगुप्त ने उन्हें इस देश से मार भगाया।

भारतवर्ष के इतिहास में प्रथम माघ संवत 512 की सुनहली सांझ ! मगध साम्राज्य का सर्वप्रिय युवराज स्कंदगुप्त हूणों की असख्य सेनाओं को हराकर आज पाटलीपुत्र आया है। संपूर्ण नगर को नवदुलहिन की तरह सजाया गया है बदनवार, पताकाएं, द्वारतोरण और पुष्पमालाएं। सब ओर सुगंध की लपटें उठ रही है।

जगह-जगह मंगल-वाद्य गाये जा रहे है। **(कुछ क्षणों तक मांगलिक संगीत)** सहसा 'रास्ता छोड़ो', 'रास्ता छोड़ो' की आवाजें सुनायी देती है और उसके बाद गगन-भेदी नाद सुनायी देता है—

भट्टारक पादीय युवराज स्कंदगुप्त की जय !

हूण-विजेता महाबलाधिकृत स्कंदगुप्त की जय !

तब नगर-कन्याएं एक गीत गाने लगती है। गीत का भाव है—पाटलीपुत्र के निवासियो ! पहचानते हो, यह कौन आ रहा है ? किसके स्वागत के लिए तुम अपने हार्दिक उद्गार सजाकर बैठे हो ? किसके दर्शनों के लिए तुम्हारी आंखें तरस रही हैं ? हां, हम जानते है। आज हमारा हृदय-सम्राट् स्कंदगुप्त भारतवर्ष के गरिमाशाली इतिहास की एक सबसे बड़ी विजय के बाद हम लोगो के बीच में वापस आ रहा है। उसने क्रूर और दुर्दम हूणों को हराया है—उन हूणो को हराया है, जिनका वेग संसार का और कोई देश नही रोक सका। आज स्कदगुप्त न होता, तो हमारे आर्यावर्त की सस्कृति और वैभव बर्बर हूणों के हाथ नष्ट-भ्रष्ट हो गये होते। आओ, पाटलीपुत्र के नागरिको, अपने इस महान वीर के स्वागत में

अपना हृदय बिछा दो। आज पाटलीपुत्र के गौरवमय इतिहास का एक सबसे अधिक गौरवपूर्ण दिन है !

गीत समाप्त होते ही 'युवराज भट्टारक पादीय स्कदगुप्त की जय !' का गगन-भेदी नारा लगता है और उसके बाद सहसा सन्नाटा छा जाता है।

क्षण-भर के सन्नाटे के बाद युवराज स्कंदगुप्त बोलने लगते है—'पाटलीपुत्र के नागरिको, इस ऐतिहासिक स्वागत के लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूं। अभी-अभी जो गीत तुम्हारी ओर से गाया गया है, उसे सुनकर, ज़िंदगी के इस सबसे बडे गौरव के दिन भी मेरी आखे आंसुओं से भर आयी। तुमने कहा है—आज स्कदगुप्त न होता, तो हमारे आर्यावर्त की संस्कृति और वैभव बर्बर हूणों के हाथ नष्ट-भ्रष्ट हो गये होते ! परंतु मेरे भाइयो, सचाई असल में यह नही है। भारतवर्ष की इस शानदार विजय का वास्तविक श्रेय जिन वीरों पर है, वे आज लौटकर पाटलीपुत्र नही आये। वे कपिशा मे वाल्हीक के किनारे सदा के लिए सो रहे हैं। वे पाटलीपुत्र के गुप्त साम्राज्य के सैनिक तो अवश्य थे, परंतु पाटलीपुत्र में उनमे से बहुतों का जन्म नहीं हुआ था। वे हमारे सीमांत के प्रहरी थे। वे हमारे साम्राज्य के गौरवशाली मुकुट कपिशा, मद्र और पचनद के नागरिक थे। भाइयो, मैंने महाबलाधिपति वीर अग्निगुप्त के नेतृत्व मे उनमें से 5000 सैनिको के मृत शरीरों को देखा है, जो दो लाख हूणों को कपिशा की एक महत्वपूर्ण घाटी में पूरे पाच दिनो तक रोके रहे—तब तक रोके रहे, जब तक उन 5000 वीरों मे से एक भी वीर जीवित था ! मेरे भाइयो, सीमा प्रांत के उन वीरों की याद मे मेरे साथ आप अपना भी शीश झुकाइये।'

हज़ारों तलवारों के शिरस्त्राणों को छूने की आवाज़ आती है।)

(व्यवच्छेद, विभेदक मांगलिक संगीत।)

वृद्ध : युग के बाद युग बीतते गये। भारतवर्ष का आकाश क्रमशः खतरनाक काले बादलो से भर गया और वे बादल इसी पश्चिमोत्तर सीमा से इस देश मे आये। हूणो के बाद कुशान, उसके बाद पठान और मुगल ! सदियां बीत गयी और उनके बाद 19वी सदी के प्रारंभ मे पंजाब का शेर जागा—

(विभेदक संगीत सिर्फ दो क्षणों के लिए।)

महाराजा रणजीतसिह !

(व्यवच्छेद।)

वृद्ध : एक अंधेरी रात। अटक में सिंधु नदी के पश्चिमी किनारे पर पठान सेना का पड़ाव। पठान सैनिक पश्तो का एक तराना गाते हुए डफली की ताल के साथ खुशी का नाच कर रहे हैं। कुछ क्षणों के बाद एक रोबीली-सी आवाज़ आती है—

चिरागअली !

ओह, हुजूर हफ़ीजुल्ला साहेब !

यह खुशी किस बात की मनायी जा रही है, चिरागअली !

तो हुजूर, आपने अभी तक वह खुशखबरी नहीं सुनी ?

कौन-सी खुशखबरी ?

जनाब शाह साहब, हम लोगो ने रणजीतसिंह को हरा दिया।

वह किस तरह ? रणजीतसिंह तो दरिया के पूर्वी किनारे पर अपनी फौजों के साथ डेरा डाले पड़ा है।

उससे क्या हुआ हुजूर ! आज नहीं तो कल उसे दुम दबाकर भाग ही जाना पडेगा।

ऐसा सोचने की वजह ?

हुजूर, रणजीतसिंह के सिपाहियों ने अटक पर जो पुल किश्तियों के लिए बांधा था, उसे आज हमारी फौजों ने न सिर्फ तोड ही डाला बल्कि उसकी सब किश्तियां भी डुबो दीं।

यह तो ठीक है चिरागअली ! मगर रणजीतसिंह क्या और किसी तरीके से दरिया पार नहीं कर सकता ?

यह नामुमकिन है, हुजूर ! इंसान तो क्या, फ़रिश्ते भी अटक के इन दोनों पहाड़ों के बीच में बहने वाले इस खतरनाक सिंध दरिया को पार नहीं कर सकते। यहां पानी इतना गहरा है कि एक के ऊपर एक करके सात हाथी यहां डूब सकते हैं। दरिया की धार इतनी तेज है कि धार के नजदीक पहुंचते भी डर मालूम होता है कि कम्बख्त कहीं साथ ही न बहा ले जाये। यह नामाकूल दरिया हिंदुस्तान का सबसे बड़ा पहरेदार रहा है, शाह साहब !

मगर रणजीतसिंह को तुम नहीं जानते, चिरागअली ! वह इंसान के भेष में जिन है। जो काम फ़रिश्तों से नहीं होता, वह रणजीतसिंह कर लेता है।

चिरागअली : (**ज़रा-सा हंसकर**) मगर अटक के इस दरिया को पार करना इस जिन के लिए भी नामुमकिन है। अगर वह जिंदा या मरकर भी यह दरिया पार करले, तो मै अपने बाप के साथ उसका गुलाम बन जाऊंगा। (**हंसी** ।)

(**विभेदक संगीत** ।)

वृद्ध : अटक ही मे सिंधु नदी के दूसरे किनारे पर महाराज रणजीतसिह अपने बहादुर सिपाहियों के साथ।

(**दो क्षणों का विभेदक संगीत** ।)

महाराज रणजीतसिंह : *तो फिर सगत ने क्या निर्णय किया सरदारसिंह ?*

सरदारसिंह : सरकार निर्णय तो महाराज ही को करना है। सगत की इतनी ही विनती है कि अगर सभव हो तो पंद्रह-बीस दिनो में नयी नावें बनवा ली जाये और अगर यह संभव न हो, तो सौ-दो सौ मील और नीचे जाकर, जहा सिधु का पानी इतनी तेजी से न बहता हो, दरिया पार किया जाये।

महाराज रणजीतसिंह : सगत की दोनों रायें गलत है, सरदारसिह !

(**सरदारसिंह चुप रहता है** ।)

महाराज रणजीतसिंह : देखो, बात यह है, सरदारसिह, कि अभी सिधु नदी के किनारे पर शत्रुओं की सख्या बहुत कम है। शत्रु अभी निश्चित है, क्योंकि वह इस बात को असंभव मानता है कि अटक मे तेजी के साथ बहनेवाली इस महानदी को कोई मनुष्य कभी पार भी कर सकता है। इसी समय यदि हम लोग नदी पार कर सकें, तो हमारी विजय निश्चित है। यदि हमने पंद्रह-बीस दिन नयी नावें बनवाने में लगा दिये, तो शत्रु दूसरे किनारे पर अपनी शक्ति बहुत अधिक बढा लेगा। बाकी रहा किसी और जगह से सिंधु नदी को पार करना, वह तो एकदम निरर्थक है। दरियाखान या उसके आसपास से सिंधु को पार करने के लिए एक तो सैंकड़ों नावों का प्रबध करना होगा। वहा सिंधु नदी का पाट सात मील चौडा है। दूसरे वहां से पेशावर तक पहुचना भी हमारी सेनाओं के लिए असंभव हो जायेगा।

सरदारसिंह : तो फिर सरकार की क्या आज्ञा है ?

महाराज रणजीतसिंह : मेरा तो विचार है कि हमें अपने घोड़ों पर सवार होकर सिंधु नदी को पार कर लेना चाहिए।

सरदारसिंह : (**आश्चर्य से**) घोडो पर सवार होकर !

महाराज रणजीतसिंह : हा, घोडों की पीठ पर और वह भी अभी रात के इसी सन्नाटे में !

सरदारसिंह : (**घबराकर**) हमारी बात तो जाने दीजिए, सरकार। हम लोग नाचीज है, परतु पथ को अभी आपकी आवश्यकता सबसे अधिक है।

महाराज रणजीतसिंह : पंथ को वीर रणजीतसिंह की आवश्यकता है कायर रणजीतसिंह की नही !

सरदारसिंह : जैसी आपकी आज्ञा।

महाराज रणजीतसिंह : साहस के इस कार्य मे आज्ञा देने का प्रश्न ही नही होता, सरदारसिह ! ऐसी अनोखी बाते आज्ञा के बल पर नही, अपनी अंत:प्रेरणा के बल पर ही की जाती हैं।

सरदारसिंह : सरकार, जहा आपका पसीना गिरेगा, वहां पंथ का एक-एक सिपाही अपना खून बहा देगा। परतु मेरी हाथ जोड़कर यह विनती है कि आप इतने बडे खतरे मे अपने बहुमूल्य जीवन को न डालें। पहले हम लोग सिंधु नदी की यह वेगवान धारा पार करने का प्रयत्न करेंगे, और यदि हम लोग उस पार पहुंच गये, तो आप जैसा जी मे आये कीजियेगा।

महाराज रणजीतसिंह : यह असंभव है। तुम तो मेरे बचपन के साथी हो, सरदारसिह ! क्या रणजीतसिंह ने अब तक कभी कोई ऐसी बात तुमसे कही है, जो उसने स्वयं नहीं की ?

सरदारसिंह : उद्धतता क्षमा हो सरकार ! आपको मालूम ही होगा कि आज तक अटक पर सिंधु की वेगवान धारा को पार करना सर्वथा असभव और असाध्य माना जाता रहा है। इस जगह का नाम 'अटक' पड़ा ही इसलिए है कि यहा सिधु नदी की धारा एक ऐसा अटकाव है, जिसे किसी भी दशा में पार किया ही नहीं जा सकता।

महाराज रणजीतसिंह : (**मुस्कुराकर**) देखो सरदारसिंह, मैंने भी 'अटक' नाम का यह किस्सा सुन रखा है, परंतु सच्ची बात तो यह है कि जिसके मन मे अटक है, सो ही अटक रहा।

सरदारसिंह : तो फिर आपकी आज्ञा हमारे लिए सद्गुरु की आज्ञा है।

महाराज रणजीतसिंह : और देखो भाई, अबसे केवल एक घड़ी के बाद हम सब लोग सिंधु नदी में अपने घोड़ों के साथ कूद पड़ेंगे। और सबसे पहले मैं सिंधु की धारा में अपना घोड़ा उतारूंगा। (**महाराज रणजीतसिंह की जय ! और सत् श्री अकाल के नारे।**)

(**दोनों क्षणों का विभेदक संगीत।**)

वृद्ध : और दूसरे दिन के प्रातःकाल से पहले असंभव को सचमुच संभव बनाकर महाराज रणजीतसिंह अपने चुने हुए सिपाहियों के साथ सिंधु नदी को पार कर गये। और सचमुच वे ही सबसे पहले नदी में उतरे और सबसे पहले सिंधु के पश्चिमी किनारे पर पहुंचे। विजय का सेहरा उन्हीं के सिर पर बंधा।

(व्यवच्छेद, विभेदक संगीत।)

(संगीतमय वातावरण में एक अत्यंत गंभीर अमूत ध्वनि।)

अंधेरी रात आधी से अधिक बीत चुकी है। रात के इस अंधकार में तारों के टिमटिमाते प्रकाश के सहारे दो व्यक्ति चुपचाप रावी की ओर बढ़े चले आ रहे है। इनमे एक युवक है और दूसरी युवती। अपने मरते हुए पिता की वेद-मन्त्र के समान पुनीत वाणी इन दोनो का पथ-प्रदर्शन कर रही है। इसी पुनीत आदेश से बंधकर दोनों अपने मरणासन्न देवतुल्य पिता के जीवित और वीर भाई के निर्जीव शरीर एक लहराते हुए खेत में छोड आये हैं, जो खेत अभी कुछ दिन पहले तक हरे-भरे पजाब का एक भाग था, परतु अब वह पाकिस्तान बन चुका है।

वे सभी कुछ खो चुके है—पिता, बड़ा भाई, संबधी, मित्र, मकान, जायदाद सभी कुछ। फिर भी एक अनोखी आशा उन्हे हिंदोस्तान की ओर खीचे ला रही है। अपने ऋषितुल्य पूज्य पिता की आवाज उनके कानो में गूज रही है।

वृद्ध की अत्यंत पवित्र और अत्यंत गंभीर आवाज—हिंदोस्तान जाकर कहना हमारे वृद्ध पिता ने 71 वर्ष की उम्र में देश के लिए हंसते-हंसते अपने प्राण दे दिये। हिंदोस्तान जाकर कहना, हिंदोस्तान जाकर कहना। हम सीमाप्रांत के रक्षक है। हिंदोस्तान जाकर कहना! —

लेखक-परिचय

उदयशंकर भट्ट

भट्टजी का जन्म बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ, किंतु साहित्य-साधना अधिकतर लाहौर (पंजाब) में की। पहले आपकी प्रवृत्ति पूर्ण नाटक लिखने की ओर थी। बाद में आपने नाटकों का लिखना तो जारी रखा किंतु साथ-ही साथ एकांकी भी लिखने आरंभ किये। फिर तो एकांकी-लेखकों में भी आप अग्रणी गिने जाने लगे। नाटक के अतिरिक्त कविता और उपन्यास भी आपने लिखे है। आप पात्रों के मनोभावों का चित्रण बड़ी स्पष्टता से करते हैं। पात्रानुकूल भाषा आपकी अपनी विशेषता है। भाव नाट्य आपकी विशेष देन है। यद्यपि प्राय: आपके नाटकों और एकांकियों के कथानक ऐतिहासिक और पौराणिक होते हैं। तथापि वे आधुनिक युग की समस्याओं का संकेत लिए रहते है।

फरवरी, 1866 में दिल्ली में आपका देहांत हो गया।

प्रस्तुत एकांकी 'दस हज़ार' में कजूस बनिये के मन में होने वाले पुत्र-प्रेम और धन-प्रेम का द्वंद्व बड़े मनोरंजक रूप में दिखाया गया है। आपकी नाट्यकृतियां है—'समर-विजय', 'दाहर', 'अम्बा', 'कमला', 'विश्वामित्र' आदि-आदि 'आदिम युग', 'समस्या का अंत', तथा 'पर्दे के पीछे' आदि एकांकी-संग्रह हैं।

भुवनेश्वर

भुवनेश्वर हिंदी के सच्चे प्रतिष्ठापक थे। हिंदी एकांकी को आधुनिकता का स्वर देने में इनका प्रमुख हाथ था। पाश्चात्य नाट्य-कला की अच्छी पकड़ थी भुवनेश्वर को। उस कला की शक्तिमत्ता का अधिक-से-अधिक प्रभाव इन्होंने अपनी एकांकी-कला में ग्रहण किया था विशेषकर सामाजिक यथार्थ तत्व को।

'कारवां' (1935) इनके छह एकांकियों का प्रतिनिधि संग्रह है। शिल्प की दृष्टि से इन पर बर्नार्ड शॉ के नाट्य-तत्त्वों का गहरा प्रभाव है। 'स्ट्राइक' उनका प्रकृतवादी (नेचुरलिस्टिक) एकांकी है। यथार्थवादी नाट्य-प्रकार में एक प्रमुख रूप और प्रकार। इसमें पाश्चात्य सभ्यता से आक्रांत आडंबरपूर्ण उच्च-मध्य वर्ग के खोखले जीवन का रंग-चित्र है।

डा. रामकुमार वर्मा

हिंदी एकांकी इतिहास में सर्वप्रथम शक्तिशाली एकाकीकार और इस क्षेत्र के मार्गद्रष्टा थे। पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' (1930)। आप सामाजिक और ऐतिहासिक चरित्रों, कथासूत्रों तथा संवेदनाओं के आधार पर अब तक अनेक महत्वपूर्ण एकांकियों के यशस्वी लेखक थे। आपके प्रतिनिधि एकांकी-संग्रह हैं—क्रमश: 'पृथ्वीराज की आंखें', 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा', 'विभूति', 'सप्तकिरण', 'रूपरंग', 'कौमुदी महोत्सव', 'रिमझिम' और सद्य: प्रकाशित संग्रह 'मयूर पंख'।

सामाजिक एकांकियों में 'रेशमी टाई' और रिमझिम' के एकांकी, जहां हमारे समाज के समस्त वर्गों, व्यक्तियों, व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक रंग-दृश्य हैं, वहां 'चारुमित्रा' और 'कौमुदी महोत्सव' संग्रह के ऐतिहासिक एकांकियों में भारतीय संस्कृति के उदात्त उदाहरण और अतीत के दर्शन स्पष्ट है। डा. वर्मा की एकांकी कला हिंदी एकांकी का एक गौरवपूर्ण उदाहरण है, जिसका भाव और शिल्प-स्वर नितांत मौलिक और अपना है। आपके एकांकी रंगमच के सफलतम उदाहरण है, जिनमें आधुनिक रंगमंच अपने समस्त प्रतिमानों के साथ उभरकर सामने आया है।

सेठ गोविंददास

हिंदी के उन नाटककारों में सेठ गोविंददास का नाम महत्वपूर्ण है, जिन्होंने संपूर्ण नाटकों के साथ एकांकियों का भी सफलतापूर्वक प्रणयन किया है । सन 1936 से अब तक इनके लगभग सौ एकाकी प्रकाशित हो चुके हैं। 'सप्तरश्मि', 'पचभूत', 'अष्टदल', 'एकादशी', 'स्पर्द्धा' इत्यादि मुख्य इनके एकांकी संग्रह हैं। सेठजी ने ऐतिहासिक एवं सामाजिक विषयों पर एकांकियों की रचना की थी। इन पर गांधीजी की विचारधारा का बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा था।

इन्होने संपूर्ण नाटकों की भी पर्याप्त रचना की थी। इनके ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटको मे ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों और पात्रों के साथ राष्ट्रीयता नैतिकता, और मानवता का स्वर भी मुखरित होता है। सामाजिक नाटकों में 'नारी जीवन', 'विवाह समस्या', 'प्रेम', 'दांपत्य जीवन' विषयों को इन्होंने नाट्यात्मक रूप प्रदान किया था।

हिंदी में एकपात्री नाटकों का इन्होंने सूत्रपात किया है। 'प्रलय' और 'सृष्टि', 'शाप और वर', 'सच्चा जीवन' आदि सफल एकपात्री नाटक इनके उल्लेखनीय हैं।

उपेंद्रनाथ 'अश्क'

आप का जन्म जालंधर (पंजाब) में हुआ। बी. ए., एल-एल. बी. तक आपने शिक्षा पायी। पहले आप उर्दू में लिखते रहे। बाद में हिंदी में लिखने लगे और शीघ्र ही हिंदी लेखकों में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। आप बहुमुखी प्रतिभावाले कलाकार हैं। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता सभी कुछ लिखा है और सफलतापूर्वक लिखा है।

प्रस्तुत एकांकी 'तौलिये' में आधुनिक शिष्टाचार की कृत्रिमता को दर्शाया गया है, जिसके चलते मधु खुलकर हंस नहीं सकती, बोल नहीं सकती, यहां तक कि अपने पति 'वसंत' के जीवन में भी उसने अपने इस व्यवहार से घुटन पैदा कर

दी है । इस एकांकी से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण हमारे लिए उपयुक्त नहीं। यह हमारी नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर आघात कर जीवन को विषम बना दे रहा है । आप की नाट्यकृतियां हैं—'तूफान से पहले', 'आदि मार्ग', 'कैद और उड़ान', 'छठा बेटा', 'चरवाहे', 'देवताओं की छाया मे', 'स्वर्ग की झलक', 'जय-पराजय' आदि ।

विष्णु प्रभाकर

विष्णु प्रभाकर हिंदी एकांकी जगत् मे मनोवैज्ञानिक स्वर के प्रसिद्ध नाटककार हैं। मानव-मन की भीतरी तहों को समझने और उन्हें उद्घाटित करने में इनके एकांकी हिंदी में पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। आपके एकांकी-संग्रह है—'मां का बेटा' 'इंसान और अन्य एकांकी' ।

'टूटते परिवेश' एक यथार्थवादी एकांकी है। जिसमे एकाकीकार ने हमारे वर्तमान, सामाजिक परिवेश को जीवन से सीधे लिए गये चरित्रों के माध्यम से बड़ी कुशलता से प्रकट किया है । चरित्रों का स्वरूप और एकांकी की रंग प्रकृति सब तरह से यथार्थनिष्ठ है ।

जगदीशचंद्र माथुर

जगदीशचंद्र माथुर हिंदी एकांकी के आधुनिक उन्नायकों में से हैं। इन्होंने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों भाव-क्षेत्रों में एकांकी रचना से समान ख्याति अर्जित की है। एकांकियों में व्यावहारिक और सहज रंगदृष्टि की पकड़ और उससे सतत प्रयोगशील रूप देना, इनकी एकांकी कला की सबसे बडी पहचान है।

आपके एकांकी-संग्रह हैं—'भोर का तारा' और 'ओ मेरे सपने' ।

प्रस्तुत एकांकी 'बंदी' भावना और आदर्श के धरातल पर निर्मित रचना है। इसमे एकांकीकार ने मनुष्य की उदात्त भावना की ओर बड़े सहज ढग से इशारा किया है।

डा. लक्ष्मीनारायण लाल

आप प्रारभ से ही नाटक की अपेक्षा रगमंच की संपूर्ण कल्पना से प्रेरित रहे थे। उनके सामने निश्चित तथा परपरागत रंगमंच भले ही न रहा हो, पर नाटक की रगमंच-संबंधी इस संपूर्ण दृष्टि और संभावना करती थीं। उनको सदा आंदोलित किया था। एक ओर आप ने आज के सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को व्यापक तथा सूक्ष्म स्तर पर ग्रहण किया था, तो दूसरी ओर अपने प्रत्येक एकांकी में रंगमंच को अधिकाधिक प्रत्यक्ष तथा उपलब्ध करने का सफल प्रयत्न भी किया।

आधुनिक रंगमंच-अन्वेषण और उसके विविध रूपो की प्रतिष्ठा में इनका नाम हिंदी एकांकी में परम उल्लेखनीय रहेगा।

इनके एकांकी-सग्रह हैं—'ताजमहल के आंसू', 'पर्वत के पीछे', 'नाटक बहुरंगी' और 'नाटक बहुरूपी'। 'कॉफी हाउस मे इंतज़ार' नये नाटक और रगमंच की दृष्टि से एक शक्तिशाली प्रयोग है और संग्रह के सभी एकांकियों से अलग तथा विशेष है।

'दर्पण', 'कलंकी', 'सूर्यमुख', 'मिस्टर अभिमन्यू' और 'करफ्यू' आप के प्रसिद्ध हिंदी-नाटक है और आधुनिक हिंदी रंगमंच की विशेष उपलब्धियां हैं।

धर्मवीर भारती

नयी पीढ़ी के कृतिकारों में एक परम उल्लेखनीय नाम धर्मवीर भारती का है। अब तक कुल एकांकी आठ-दस ही लिखे होंगे, किंतु प्रत्येक एकांकी का अपना विशेष स्वर और रंग-प्रभाव है। 'नदी प्यासी थी' भारती का पहला एकांकी-संग्रह है।

'सृष्टि का आख़िरी आदमी' छंद-नाटक है। रंगकला नाट्य-तत्त्व, अपने समस्त रूपों में यहां चरितार्थ है। ध्वनि, स्वर और आवाज़, इनके माध्यम से मनुष्य की एक नियति गाथा यहां निर्मित है, जिसे यहां पढ़कर देखा जा सकता है।

भारती का प्रसिद्ध नाटक 'अंधा युग' हिंदी-रंगमंच की एक विशेष देन है।

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

आपका जन्म दिसंबर 4, 1906 को हुआ। आपकी शिक्षा गुरुकुल विश्व-विद्यालय में हुई। प्रारंभ से ही आपकी रुचि विद्याध्ययन और स्वतंत्र लेखन में थी। बाद में संपादन कार्य में आपकी रुचि और अधिक बढ़ गयी। 1931 से 1947 तक लाहौर विश्व साहित्य ग्रंथ-माला, जिसमें सौ के लगभग विश्व तथा भारतीय साहित्य के ग्रंथ प्रकाशित हुए, उनका संपादन तथा संचालन किया। संपादक के रूप में आपकी ख्याति और भी अधिक बढ़ी। लाहौर के 'दैनिक जन्म-भूमि', दिल्ली के 'आजकल', 'विश्वदर्शन' तथा बंबई मे प्रसिद्ध कहानी पत्रिका 'सारिका' का संपादन कार्य किया।

आप कहानीकार और नाटककार के रूप मे भी प्रसिद्ध थे। कहानी संग्रह में 'तीन दिन', 'वापसी', 'पहला आस्तिक' और 'गहरे अंधेरे में' उल्लेखनीय हैं। नाटकों में 'अशोक', 'रेवा', 'देव और मानव', 'न्याय की रात' की चर्चा हुई है। 'हिंदुस्तान जाकर कहना!' इनका उल्लेखनीय एकांकी-संग्रह है।

तरंग प्रिंटर्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित